इकाई–1 : अध्यात्म और विज्ञान

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 अध्यात्म और विज्ञान द्वारा नियमों की खोज
1.3 धर्म और विज्ञान
1.3.1 विज्ञान द्वारा सत्य की खोज
1.3.2 धर्म द्वारा सत्य की खोज
1.3.3 जैन आगम के सूक्ष्म सत्य
1.3.4 धर्म और विज्ञान की महानता
1.4 प्राणशक्ति का आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व
1.4.1 शरीर-शास्त्र
1.4.2 सूक्ष्म का साक्षात्कार
1.4.3 शरीर की शक्तियों का दोहन
1.4.4 अध्यात्म-विज्ञान में शरीर का महत्त्व
1.4.5 कुण्डलिनी : स्वरूप और जागरण
1.4.6 कुण्डलिनी-जागरण के मार्ग
1.4.7 प्राण-शक्ति की विद्युत् का चमत्कार
1.5 आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण
1.5.1 अध्यात्म स्वयं एक विज्ञान
1.5.2 वैज्ञानिक विकास : वरदान या अभिशाप
1.5.3 फिर भी तनाव बढ़े हैं
1.5.4 श्रम को हेय न मानें
1.6 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ विद्यार्थियों को इस बात से परिचित करायेगा कि अध्यात्म का विज्ञान से क्या सम्बंध है? क्या विज्ञान को जानकर अध्यात्म को समझा जा सकता है या फिर अध्यात्म को जानकर विज्ञान को? वस्तुत: दोनों की चरमसीमा सत्य पर आश्रित है इसलिए दोनों का गहर सम्बंध है। विज्ञान और अध्यात्म दोनों सत्य एवं शाश्वत नियमों पर ही चलते हैं इसलिए अपेक्षा यह की जाती है कि व्यक्तित्व अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक बने।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी निम्न उपशीर्षकों का विशेष अध्ययन करके **'अध्यात्म और विज्ञान'** के सम्बंध में विशेष ज्ञान कर सकेंगे।

1.2 अध्यात्म और विज्ञान द्वारा नियमों की खोज

भीतर की गहराइयों में गये बिना सच्चाई को जाना नहीं जा सकता। प्रत्येक देश और काल का अपना मूल्य होता है। आज का देश और काल विज्ञान से बहुत अधिक प्रभावित है। आज का प्रबुद्ध आदमी विज्ञान की भाषा समझता है। बहुत सहजता से समझ लेता है। वह पुरानी भाषा को इतनी सहजता से नहीं पकड़ पाता। अध्यात्म की भाषा पुरानी हो गई, इसलिए उसे पकड़ने में कठिनाई हो रही है। अध्यात्म स्वयं विज्ञान है। विज्ञान और अध्यात्म को बांटा नहीं जा सकता। उनके बीच में कोई भेदरेखा नहीं खींची जा सकती। किंतु आज चलने वाली धारा हजार वर्षों के बाद अनबूझ पहेली बन जाती है।

वर्तमान की धारा लोगों के लिए सुलभ होती है। आज यही हुआ है। आज अध्यात्म को हम भूल गए और विज्ञान हमारी पकड़ में आ गया। गहरे में उतर कर देखें तो अध्यात्म और विज्ञान में अन्तर नहीं लगता। दोनों की प्रकृति एक है। दोनों नियमों के आधार पर चलते हैं।

अध्यात्म ने चेतना के नियम खोजे और विज्ञान पदार्थ के नियमों की खोज कर रहा है। दोनों ने नियमों की खोज की है। जहां नियम की खोज नहीं होती, वहां सच्चाई का पता नहीं चलता।

यह सारा जगत् नियमों के आधार पर चल रहा है। हम नियमों को नहीं जानते, इसलिए वे हमारे लिए चमत्कार बन जाते हैं। इस दुनिया में चमत्कार जैसी कोई बात नहीं होती। जो चमत्कार माने जाते हैं, वे सारे के सारे इस जगत् के नियम हैं। जो नियम से अनभिज्ञ हैं, उसके लिए चमत्कार और जो नियम का ज्ञाता है उसके लिए चमत्कार समाप्त हो जाते हैं।

जब पहली बार आग जली, तब बड़ा चमत्कार लगा। लोगों ने सोचा, यह क्या है? यह कहां से आ गई? उस समय कोई उसे समझ नहीं सका। जैसे-जैसे आग के नियम ज्ञात होते गए, आग जलना कोई चमत्कार नहीं रहा।

एक दिन जब रेलें पटरियों पर दौड़ने लगीं, तब लोगों को बड़ा चमत्कार लगा। अनेक ग्रामीणों ने उसे देवता मान पूजा की। अनेक लोग डर के मारे भाग गये। जब लोग रेल के नियमों को समझ गए, तब रेल न चमत्कार रहा, न भय रहा और न आतंक रहा।

ये जितने जादू के चमत्कार हैं, जितने तंत्र-विद्या के चमत्कार हैं, वे सारे नियमों के चमत्कार हैं। नियम के प्रतिकूल कुछ भी नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि जो नियमों को जानता है, उसके लिए कोई चमत्कार नहीं है और जो नियमों को नहीं जानता, उसके लिए सब चमत्कार है।

चुम्बक लौह को खींचता है। ग्रामीण व्यक्ति के लिए वह चमत्कार है। जो चुम्बकीय नियम को जानता है, उसके लिए चमत्कार जैसा कुछ भी नहीं है।

दोनों ने—अध्यात्म को विज्ञान ने—नियमों को खोजा। इसीलिए एक वैज्ञानिक व्यक्ति आगे चलते-चलते आध्यात्मिक बन जाता है और एक आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी यात्रा करते-करते वैज्ञानिक बन जाता है। यह नहीं हो सकता कि वैज्ञानिक आध्यात्मिक न हो और यह भी नहीं हो सकता कि आध्यात्मिक वैज्ञानिक न हो। यह इसलिए होता है कि दोनों का मार्ग एक है, दिशा एक है, पद्धति एक है और निष्पत्ति एक है। इतना होने पर ये दोनों अलग कैसे रह सकते हैं? भिन्न-भिन्न दिशाओं से आने वाली ये दो धाराएं एक महानदी में मिलकर एक हो जाती हैं। वैसे ही विज्ञान की धारा, अध्यात्म की धारा तथा भिन्न-भिन्न लगने वाली और भी अनेक धाराएं जब सत्य के महासमुद्र में विलीन होती हैं, तब वे सब एक बन जाती हैं।

नियमों को जानना बहुत आवश्यक है। नियमों को जाने बिना कोई व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं बन सकता। नियमों को जाने बिना कोई व्यक्ति वैज्ञानिक नहीं बन सकता। अध्यात्म के अपने नियम हैं और विज्ञान के अपने नियम हैं। आध्यात्कि व्यक्ति को विज्ञान पढ़ना बहुत जरूरी है और वैज्ञानिक को अध्यात्म पढ़ना बहुत जरूरी है। अच्छा यह होगा कि अध्यात्म के प्रकाश में विज्ञान को पढ़ा जाए और विज्ञान के प्रकाश में अध्यात्म को पढ़ा जाए, तब नियमों की पूरी श्रृंखला हमारे सामने आ सकती है।

1.3 धर्म और विज्ञान

धर्म और विज्ञान—ये दो नहीं, वस्तुत: एक ही विषय हैं। धर्म स्वयं विज्ञान है। एक वैज्ञानिक यहां हिन्दुस्तान में बैठा हुआ किसी प्रकार का प्रयोग या अन्वेषण करता है और जो निष्कर्ष उसके प्रयोग का निकलेगा, वही निष्कर्ष अमेरिका में बैठा हुआ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक वैज्ञानिक उसी तरह का प्रयोग करके प्राप्त करेगा। हजार वर्ष पहले किसी वैज्ञानिक ने प्रयोग करके जो फल निकाला था, हजार वर्ष बाद भी आज का वैज्ञानिक वैसे ही प्रयोग से वही फल प्राप्त करेगा। अत: यह स्पष्ट है कि त्रिकालाबाधित सत्य ही विज्ञान है। देश या काल के कारण इसमें कोई अन्तर नहीं आ सकता। यही बात धर्म के लिए भी हम कह सकते हैं। अत: मानना पड़ेगा धर्म स्वयं विज्ञान है। किसी वस्तु को जानने का जो माध्यम है, वह है विज्ञान और उस माध्यम के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, वह है धर्म। विज्ञान वस्तु को जानने की प्रक्रिया है और धर्म आत्मा को पाने की प्रक्रिया है, साधन है।

1.3.1 विज्ञान द्वारा सत्य की खोज

मनुष्य में सत्य की जिज्ञासा और उसकी खोज का प्रयत्न चिरकाल से रहा है। उसका स्थूल रूप हमारे सामने है। मनुष्य केवल स्थूल से संतुष्ट नहीं होता। वह निरन्तर स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान करता है। धर्म की खोज सूक्ष्म तत्त्व की खोज है। आत्मा, परमात्मा, परमाणु, कर्म— ये सभी सूक्ष्म तत्त्व हैं। साधारण जीवन-यात्रा से इनका सीधा सम्बंध नहीं है। इस खोज का माध्यम रहा है— अन्तर्दृष्टि, अतीन्द्रिय चेतना और गंभीर एवं एकाग्र चिंतन।

विज्ञान ने भी सूक्ष्म सत्यों को खोजा है। उसकी खोज का माध्यम है— सूक्ष्मदर्शी उपकरण। वैज्ञानिक जगत् में ये उपकरण प्रचुर मात्रा में विकसित हुए हैं। इनके द्वारा एक सामान्य मनुष्य भी सूक्ष्म तत्त्वों को जान सकता है। किंतु एक वैज्ञानिक के लिए ये उपकरण ही पर्याप्त नहीं हैं। उसके लिए अन्तर्दृष्टि, चिंतन की एकाग्रता और निर्विचारता उतने ही आवश्यक हैं जितने एक ध र्म की खोज करने वाले के लिए।

1.3.2 धर्म द्वारा सत्य की खोज

धर्म भी सत्य की खोज है और विज्ञान भी सत्य की खोज है। जहां सत्य की खोज का प्रश्न है, दोनों एक बिंदु पर आ जाते हैं। पर उद्देश्य की दृष्टि से दोनों के अवस्थित-बिंदु भिन्न हैं। धर्म के क्षेत्र में सत्य की खोज का उद्देश्य है— अस्तित्व और पदार्थ का विकास। विज्ञान ने जीवन-यात्रा के लिए उपयोगी अनेक तत्त्व खोजे हैं। खाद्य, चिकित्सा व सुविधा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है। धर्म ने सुविधा देने वाला कोई तत्त्व नहीं खोजा, पर उसने चेतना के उन आयामों की खोज की जो सुविधा के अभाव में होने वाली असुविधा को सह सकें।

1.3.3 जैन आगम के सूक्ष्म सत्य

जैन आगम-साहित्य में सूक्ष्म सत्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में उन्हें समझने में सुविधा होती है। उदाहरणार्थ यहां कुछ एक महत्त्वपूर्ण बिंदुओं की चर्चा की जा रही है—

1. निगोद वनस्पति के सुई की नोक टिके उतने भाग में अनन्त जीव होते हैं— यह एक धार्मिक सिद्धान्त है। यह सहज बुद्धिगम्य नहीं है, इसलिए चिरकाल तक संदेह का विषय बना रहा। किंतु अब इस सूक्ष्मता में संदेह नहीं किया जा सकता। शरीरशास्त्र के अनुसार शरीर के पिन की नोंक टिके उतने भाग में दस लाख कोशिकाएं हैं। यह विशाल संख्या वनस्पति विषयक संख्या को बना देती हैं।

2. मनोविज्ञान के क्षेत्र में जिस दिन चेतन मन की सीमा को पार कर अवचेतन और अचेतन मन की अवधारणा निश्चित हुई, उस दिन चेतन-जगत की सूक्ष्मता की दिशा में एक अभिनव अभियान शुरू हो गया।

3. लेश्या या आभामंडल का सिद्धांत समझ से परे हो रहा था। प्रत्येक जीव के आस-पास एक आभामंडल होता है। भाव-परिवर्तन के साथ-साथ वह परिवर्तित होता रहता है। मृत्यु के आस-पास वह क्षीण होने लगता है और मृत्यु के साथ वह समाप्त हो जाता है। अथवा इसप्रकार कहा जा सकता है कि उसके क्षीण होने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है।

विज्ञान के क्षेत्र में आभामंडल का सिद्धांत प्रतिष्ठित हो चुका है। किर्लियन दंपति के इस विषय में किये गये प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने पदार्थ और प्राणी दोनों के आभामंडल के फोटो लिये। उन दोनों में एक प्रकाशमय ढांचा बना हुआ था। सिक्के का आभामंडल नियत था, जबकि प्राणी का आभामंडल परिवर्तनशील था।

पहले मृत्यु की घोषणा हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति बंद होने तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं के निष्क्रिय होने पर की जाती थी। अब उसकी घोषण आभामंडल के आधार पर की जाती है। जब तक आभामंडल क्षीण नहीं होता है प्राणी की मृत्यु नहीं होती। इसलिए तथाकथित मृत्यु की घोषणा होने के बाद भी अनेक मनुष्य जी उठते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. कर्म-परमाणुओं के प्रत्येक स्कन्ध में असंख्य संस्कारों के स्पंदन अंकित होते हैं। यह विषय बुद्धिगम्य नहीं है। किंतु क्रोमोसोम (गुणसूत्र) और जीन (संस्कार-सूत्र) की वैज्ञानिक व्याख्या के पश्चात् वह विषय अस्पष्ट नहीं रहा। प्रत्येक जीन में छह लाख आदेश अंकित माने जाते हैं। जीन और कर्म का तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही दिलचस्प विषय है।

5. कर्म के संक्रमण का सिद्धांत—पुण्य को पाप के रूप में और पाप को पुण्य के रूप में बदलने की प्रक्रिया में अब संदेह नहीं किया जा सकता। जेनेटिक इंजीनियरिंग के अनुसार जीन के परिवर्तन के उपाय खोजे जा रहे हैं।

6. खनिज धातु में जीव का सिद्धान्त बहुत विवादास्पद रहा। किंतु अब विज्ञान के चरण उस विवाद के समाधान की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

कुछ भूवैज्ञानिक मानते हैं कि पत्थर और पहाड़ भी बढ़ते रहते हैं। धातु पर प्रहार करने पर उसमें थकान आती है। कुछ समय बाद आराम के क्षणों में वह पूर्ववत् हो जाती है। थकान आना आरम्भ के क्षणों में पूर्व स्थिति में चले जाना—ये जीव के लक्षण हैं, जो खनिज धातु में भी पाये जाते हैं।

7. वनस्पति की चेतना और उसकी संवेदनशीलता चर्चा का विषय बनी हुई थी। उसमें क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ, भय और मैथुन की प्रवृत्ति होती है। इसे स्वीकारना सहज सरल नहीं था। किंतु वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा वनस्पति में इन सबका अस्तित्व प्रमाणित हो जाने पर वह विषय संदेहास्पद नहीं रहा। इस विषय में 'सीक्रेट लाइफ ऑफ प्लान्ट्स' पुस्तक पठनीय है।

8. जैन आगमों की गणना की परम कोटि का उल्लेख है। उसकी संज्ञा है—शीर्ष प्रहेलिका। उसके समक्ष आज की संख्या बहुत छोटी होती है। एक अंक पर दो सौ चालीस शून्य लगाने से वह संख्या बनती है। वह उत्कृष्ट संख्या है। जब विज्ञान ने सूक्ष्म गणित की बातें प्रस्तुत कीं, तब शीर्षप्रहेलिका की सत्यता स्वयं प्रस्थापित हो गई और उसे बहुत महत्त्वपूर्ण खोज माना गया।

9. जैन साहित्य में उल्लेख है कि एक घंटा है अवस्थित। वह एक स्थान पर बजता है। उसकी ध्वनि से प्रकंपित होकर दूर-दूर हजारों-लाखों घंटे बज उठते हैं। असंख्य योजन तक यह घटना घटित होती है। लोगों ने इस उल्लेख को कपोल-कल्पित बताया। किंतु जब विज्ञान ने ध्वनि-तरंगों की द्रुतगामिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, तब यह सत्य भी प्रमाणित हो गया। आज यह ध्वनि-विज्ञान महानतम उपलब्धि माना जाता है।

जब तक व्यक्ति सूक्ष्म पर्यायों की ओर प्रस्थान नहीं करता तब तक सच्चाई को नहीं पा सकता। जब तक अनेकान्त की दृष्टि का विकास नहीं होता तब तक उस दिशा में प्रस्थान नहीं हो सकता।

1.3.4 धर्म और विज्ञान की महानता

आज लोग विज्ञान को केवल दो शताब्दी पुराना ही मान बैठे हैं। इस काल में जो अन्वेषण और प्राप्ति विज्ञान ने की है सिर्फ वही विज्ञान है, ऐसी लोगों ने धारणा बना ली है। लेकिन जो उपलब्धियां सामने हैं, वे विज्ञान नहीं हैं। वे तो उपलब्धियां मात्र हैं। यथार्थ भाव से देखना ही विज्ञान है। आत्मा से भिन्न कोई विज्ञान है ही नहीं।

अणुबम विज्ञान की देन है। लेकिन वह अपने आप कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि वह जड़ है। चेतना की शक्ति ही उसका उपयोग करके विनाश ढहाती है। शक्तियों का विकास कोई दोष नहीं लेकिन उनका उपयोग सही ढंग से हो। जो विज्ञान को बुरा कहते हैं, उन्हें यह भी मानना पड़ेगा कि धर्म भी बुरा है क्योंकि उनको अलग करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। धर्म और विज्ञान त्रिकाला- बाधित सत्य हैं, यही निष्कर्ष है।

अध्यात्म की तरह विज्ञान का क्षेत्र भी अत्यन्त प्राचीन है। विज्ञान के लिए हजारों ने अपने आपको खपाया है। भारत में हजारों वर्ष पहले भी विज्ञान के क्षेत्र में अध्यात्म की तरह ही ऐसे-ऐसे अनुसंधान हुए हैं। आज यदि आपके सामने उनकी उपलब्धि यां रखी जाएं तो आप आश्चर्यचकित हो जाएंगे।

इसी तरह के अनुसंधान अध्यात्म-क्षेत्र में किए गए। अनेक ने गूढ़ साधनाएं कीं, तभी अध्यात्म की अनुभूतियां प्राप्त हुईं। गुस्सा या आवेग जब आता है तो तत्काल दो क्षण के लिए श्वास रोक लें। गुस्सा स्वत: ठंडा पड़ जाएगा। इसी तरह के अनेक प्रयोग किये गये हैं। योगशास्त्र को जानने वाला खोज करके देखें कि प्राचीन आचार्यों ने कितने प्रयोग किये हैं। प्राचीन समय में हजारों कोस दूर बैठा साधु किसी अन्य साधु को सिर्फ याद करके उसका आसन डोला (हिला) सकता था और वह समझ जाता कि उसे याद किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस दृष्टि से धर्म और विज्ञान दो धाराएं या शाखाएं नही हैं, एक ही चेतना-प्रवाह की दो कड़ियां हैं। मूल एक है, टहनियां दो हैं।

जिस तरह विज्ञान की उपलब्धियों का उपयोग विनाशकारी कार्यों में किया गया है, जो सर्वविदित है, उसी प्रकार धर्म का उपयोग भी अनुचित ढंग से किया गया है और कहीं-कहीं तो उसका अत्यधिक दुरुपयोग भी किया गया है। इस तरह हम देखते हैं कि विज्ञान और धर्म का क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए भी मूल एक है और मैं तो कहता हूं यह विशाल नगरों के फ्लैट सिस्टम (Flat System) की तरह है, जहां एक ही मकान में कई फ्लैट होते हैं और उसमें रहने वाले वर्षों से वहां रहते हुए भी एक-दूसरे से अपरिचित से बने रहते हैं।

धर्म से प्रभावित लोग मानते हैं — विज्ञान ने मुनष्य-जाति को संहार के कगार पर पहुंचा दिया है। विज्ञान से प्रभावित लोग मानते हैं — धर्म ने मनुष्य को परम्परावादी या रूढ़िवादी बना दिया है। इस आरोप और प्रत्यारोप में सच्चाई नहीं है। सच्चाई यह है कि धर्म और विज्ञान सत्य को उपलब्ध करने की पद्धतियां हैं। धर्म का रूढ़िवाद से और विज्ञान का संहारक शस्त्रों से कोई संबंध नहीं है।

जैसे धर्म-स्थान धर्म नहीं है, वैसे ही प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) विज्ञान नही है। जिसका उपयोग होता है, उसका दुरुपयोग भी हो सकता है। उपयोग और दुरुपयोग के बीच में कभी भी लक्ष्मणरेखा नहीं खींची जा सकती। दुरुपयोग धर्म का भी हो सकता है और विज्ञान का भी हो सकता है। जो धर्मसत्ता और संपत्ति के साथ जुड़ जाता है, वह घातक बन जाता है। ठीक इसी प्रकार विज्ञान भी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के साथ जुड़कर संहारक बन रहा है। संहार विज्ञान की प्रवृत्ति नहीं है। उसका स्वरूप नहीं है। धर्म और विज्ञान दोनों की प्रकृति है — स्थूल से सूक्ष्म की दिशा में प्रस्थान — जागतिक नियमों की खोज, सामान्यीकरण, सत्य की परिक्रमा।

कुछ धार्मिक नेता कहते हैं — विज्ञान के कारण जनता की धर्म के प्रति आस्था डगमगा गई है। किंतु इसमें सच्चाई नहीं लगती। यदि धर्म से सत्य की खोज होती है, तो कोई दूसरी शक्ति उसके प्रति अनास्था पैदा नहीं कर सकती। उसे पदच्युत नहीं कर सकती।

आईस्टीन महान् वैज्ञानिक था। वह इतना आस्थावान था कि बड़े से बड़ा व्यक्ति भी उतना आस्थावान नहीं हो सकता। वैज्ञानिक और आत्मा परमात्मा के प्रति आस्थावान — यह एक समस्या है। इतना बड़ा वैज्ञानिक और फिर धार्मिक! यह कैसे? यह प्रश्न हमारी ही मूढ़ता के कारण उत्पन्न हुआ है। अपनी विसंगतियों के कारण उत्पन्न हुआ है। अपनी विसंगतियों के कारण हमने ऐसे मूल्य स्थापित कर दिये, ऐसे मानदंड स्थापित कर दिये कि यदि वैज्ञानिक धार्मिक होता है तो आश्चर्य होता है और नहीं होता तो कोई आश्चर्य नहीं होता। बल्कि आईस्टीन ने स्वयं लिखा है —

"Religion without science is blind; science without religion is lame".

इस वैज्ञानिक युग ने मनुष्य जाति का बहुत उपकार किया है। आज धर्म के प्रति जितना सम्यक् दृष्टिकोण है वह 50-100 वर्ष पूर्व नहीं हो सकता था। आज सूक्ष्म सत्य के प्रति जितनी गहरी जिज्ञासा है, उतनी पहले नहीं थी। उसे अन्धविश्वास कहा जाता था। एक ऐसा शब्द है अन्धविश्वास के उसकी ओट में सब कुछ छिपाया जा सकता है। किंतु विज्ञान ने जैसे-जैसे सूक्ष्म सत्य की प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की, वैसे-वैसे अन्धविश्वास कहने का साहस टूटता गया। अब यदि कोई व्यक्ति किसी बात को अंधविश्वास कह कर टालता है तो वह साहस ही करता है। आज विज्ञान जिन सूक्ष्म सत्यों का स्पर्श कर चुका है, दो शताब्दी पूर्व उनकी कल्पना करना भी असंभव था। यह कहा जा सकता है कि विज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान की सीमा के आस-पास पहुंच रहा है। प्राचीनकाल में साधना द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञान का विकास और सूक्ष्म सत्यों का साक्षात्कार किया जाता था। आज के आदमी ने अतीन्द्रिय ज्ञान की साधना भी खो दी और अतीन्द्रिय ज्ञान के विकास करने का अभ्यास भी खो दिया, पद्धति भी विस्मृत हो गई है। अब सिवाय विज्ञान के कोई साधना नहीं है। वैज्ञानिकों ने कोई साधना नहीं की, अध्यात्म का गहरा अभ्यास नहीं किया, अतीन्द्रिय चेतना को जगाने का प्रयत्न नहीं किया, किंतु इतने सूक्ष्म उपकरणों का निर्माण किया, जिनके माध्यम से अतीन्द्रिय सत्य खोजे जा सकते हैं, देखे जा सकते हैं। वे सारे सत्य इन सूक्ष्म उपकरणों से ज्ञात हो जाते हैं। इसका फलित यह हुआ कि आज का विज्ञान अतीन्द्रिय तथ्यों को जानने-देखने और प्रतिपादित करने में सक्षम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आइन्स्टीन ने एक बार कहा था—'हम लोग वैज्ञानिक दावे तो बहुत बड़े-बड़े करते हैं, लेकिन हमारे पास जानने के साधन इन्द्रियां और मन इतने दुर्बल हैं कि हमें अनेक बार भ्रांति में डाल देते हैं।'' यह बिलकुल सत्य है। लोग कहते हैं आंखों-देखी बात झूठी कैसे हो सकती है? लेकिन सत्य यह है कि ऐसा अनेक बार होता है। गाड़ी में बैठे हुए लोग अनुभव करते हैं कि पेड़ दौड़ रहे हैं, गाड़ी नहीं। क्या आंखें धोखा नहीं दे रही हैं? चलते समय मार्ग में हमने देखा लगभग एक मील सीधी सड़क जो कम-से-कम आठ फूट चौड़ी तो होगी ही, साफ दिखाई दे रही है लेकिन अन्त में उसका किनारा सिर्फ एक लकीर-सा दिखाई देता है। फिर हमने देखा आकाश जमीन को छूता हुआ-सा लग रहा है, लेकिन ज्योंही हम चलते-चलते उस स्थान पर पहुंचे तो देखा उस स्थान पर नहीं, और आगे वह जमीन को छू रहा है। यह आंखों का धोखा नहीं तो क्या है? इन्द्रियों की शक्ति अत्यन्त सीमित है। आंख में देखेने की शक्ति है, पर वह एक सीमित दूरी पर रही हुई वस्तु को ही देख पाती है। कान में सुनने की शक्ति है, पर वह निश्चित फ्रीक्वेन्सी वाली शब्द-तरंग ही पकड़ पाता है। हमारे चारों ओर न जाने कितनी ध्वनियां हो रही हैं। वे कानों से टकराती हैं। पर कान उन सारी ध्वनियों को ग्रहण नहीं कर पाता। वे ही ध्वनियां कान में ग्राह्य होती हैं जो कि निश्चित आवृत्ति में आती हैं। शेष ध्वनियां आती हैं, टकराती हैं और चली जाती हैं।

हमारे सामने दो प्रकार का जगत् है—इन्द्रिय-जगत् और इन्द्रियातीत जगत्। हमारा पूरा विश्वास इन्द्रिय-जगत् में है। क्योंकि वह हमारे प्रत्यक्ष है। उससे हमारा सीधा संबंध है। उसके प्रति हमारी इतनी गहरी आस्था बन गई है कि इन्द्रियातीत की कोई बात सामने आ जाती है तो भी उस पर विश्वासनहीं होता। वह समझ में नहीं आती। इन्द्रियों से परे का जगत् बहुत विराट है। इसका पूरा साक्ष्य है आज का विज्ञान। विज्ञान ने सूक्ष्म उपकरणों के माध्यम से ऐसे जगत् को खोजा है जो इन इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। जो चीज आंखों के द्वारा नहीं देखी जा सकती, वह माइक्रोस्कोप के द्वारा देखी जा सकती है। विज्ञान ने इतने सूक्ष्म जगत् का पता लगा दिया है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक सूई की नोंक पर अरबों-खरबों परमाणु समा जाते हैं। यह विज्ञान की बात है। दार्शनिक जगत् की बात तो और सूक्ष्म है। उनके अनुसार सूई कीनोक पर अनन्त जीव समा सकते हैं। अनन्तकायिक वनस्पतियां इसका प्रमाण हैं। यह बहुत सूक्ष्म अन्वेषण है। वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से तथा सूक्ष्म उपकरणों के माध्यम से जो देखा गया वह यह है कि एक कण भूमि में बीस हजार कीटाणु समा सकते हैं। बहुत विराट् है सूक्ष्म जगत्, किंतु इन्द्रिय-जगत् के प्रति हमारे कुछ दार्शनिकों और तार्किकों की इतनी प्रगाढ़ आस्था हो गयी है कि वे इन्द्रियातीत को अवास्तविक मानने लग गये।

1.4 प्राण-शक्ति का आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व

1.4.1 शरीर-शास्त्र

शरीर-शास्त्री नाड़ियों को जानता है, नाड़ी-संस्थान को जानता है, ग्रंथियों को जानता है, शरीर के एक-एक अवयव को जानता है, छोटी-से-छोटी धमनी को जानता है, रक्त के प्रवाह को जानता है, रक्त-संचार को जानता है और रक्त के द्वारा होने वाली क्रियाओं को जानता है।

एक मशीन है—बहुत विलक्षण है। एक साथ 250 फोटो लेती है शरीर का। एक्स-रे के सामने आदमी खड़ा होता है, एक फोटो आता है। उस मशीन से 250 फोटो आते हैं और छोटी-से-छोटी शिरा का फोटा उसमें अंकित हो जाता है। एक मशीन और है जो रक्त की जितनी क्रियाएं, जितने फंक्शन होते हैं, उन सारे कार्यों का विश्लेषण कर देती है। आज का डॉक्टर इतना विलक्षण काम करके दिखाता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इतना जान लेने पर भी, समूचे शरीर को चीर-फाड़कर एक-एक अवयव सामने रख देने पर भी क्या शरीर के पूरे रहस्यों को जान लिया गया? नहीं जाना जा सका। हजारवां भाग भी नहीं जाना जा सका है। लघु मस्तिष्क इतने रहस्यों से भरा है कि उसको हम पूर्ण रूप में अभी तक नहीं जान पाए हैं। पिनियल, पिच्यूटरी ग्लैण्ड के रहस्यों को पूरा नहीं जाना जा सका है। नाड़ी-तंत्र और ग्रंथि-तंत्र में इतने रहस्य हैं कि आज भी उनका कोई पता नहीं चलता।

डॉक्टर लोग जानते हैं, शरीरशास्त्री जानते हैं कि एड्रीनल ग्रंथि का अधिक स्राव होने से उत्तेजना बढ़ जाएगी, गुस्सा बढ़ जाएगा, वासना बढ़ जाएगी और वृत्तियां उभर जाएंगी। इस बात का पता है उनको, किंतु इनके स्राव को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, पिनियल और पिच्यूटरी के स्राव को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, थाइराइड के स्राव पर कैसे कंट्रोल किया जा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सकता है, वे नहीं जानते। योग के आचार्यों ने शरीर के बारे में इतनी सूक्ष्म खोजें की थीं, अध्यात्म के आचार्यों ने इस शरीर को इतनी गहराई के साथ पढ़ा था कि उन्होंने जिन रहस्यों का उद्घाटन किया वे रहस्य आज भी शरीरशास्त्र के माध्यम से उद्घाटित नहीं हो पा रहे हैं।

1.4.2 सूक्ष्म का साक्षात्कार

हम व्यक्त अवस्थाओं को पकड़ते हैं, स्थूल रूपान्तरणों को जानते हैं। उनको हम स्थूल भाषा के माध्यम से स्थूल अभिव्यक्ति देते हैं। किंतु जब सूक्ष्म जगत् को जानें तो वहां का लेखा-जोखा इतना विचित्र है कि वहां भाषा भी समाप्त हो जाती है और सभी शब्दकोशों के सारे शब्द अकर्मण्य बन जाते हैं। उनको अभिव्यक्ति देने वाला कोई शब्द प्राप्त नहीं होता।

इतना होने पर भी हम सूक्ष्म जगत् की चर्चा इसलिए कर रहे हैं कि हम सूक्ष्म परिवर्तनों को जान सकें और सूक्ष्म परिवर्तन की प्रक्रिया को पकड़ सकें।

सबसे पहले हमें यह स्थूल शरीर दिखाई देता है। यह शरीर केवल स्थूल पदार्थों का ही पिण्ड नहीं है। इस शरीर के साथ सूक्ष्म जगत् का घना सम्बन्ध है। हम बाहर की चमड़ी को देखते हैं। हमारा उससे सम्बन्ध जुड़ जाता है और हम वहीं अटक जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति चमड़ी को या अन्य अवरोधकों को पार कर भीतर प्रवेश करे तो उसे ज्ञात होगा कि भीतर में सूक्ष्म जगत् इतना विराट् है कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

जितने पुराने ग्रंथ हैं, उनमें सांकेतिक भाषा बहुत हैं, स्पष्टताएं कम हैं। हमने विज्ञान के माध्यम से जो कुछ बातें समझी हैं, वे बातें पुराने ग्रंथों के आधार पर नहीं समझी जी सकती। फिर चाहे वह पातंजल योग दर्शन हो या अन्य कोई योग का ग्रंथ हो।

शरीर के विषय में ध्यानी योगियों ने बहुत चर्चाएं की हैं, पर वर्तमान शरीर-शास्त्रीय चर्चाओं के परिप्रेक्ष्य में वे चर्चाएं अपर्याप्त-सी लगती हैं। आज शरीर-शास्त्र ने शरीर के इतने तथ्य अनावृत्त किए हैं, जिनका अनावरण प्राचीनकाल में नहीं हुआ था। जब से जीवाणु का सिद्धान्त, जीवन और क्रोमोसोम का सिद्धान्त, डी.एन.ए. आदि रसायनों का सिद्धान्त सामने आया है, उससे सूक्ष्म जगत् की अद्भुत परिकल्पनाएं प्रस्तुत हुई हैं। पच्चीस हजार जीवाणु ज्ञात कर लिए गये हैं। इन जीवााुओं के 'जीन' के माध्यम से विलक्षण कार्य सम्पन्न किए जा सकते हैं।

आज जीवन की ऐसी श्रृंखला ज्ञात कर ली गई है, जिससे आदमी को बदला जा सकता है, स्वभाव और जीवन को बदला जा सकता है, नस्ल को बदला जा सकता है। 'वायोटेकनोलॉजी' और 'जीन- इंजीनियरिंग' के माध्यम से नयी-नयी अवधारणाएं सामने आने लगी हैं। ये जानकारियां प्राचीन ग्रंथों में बहुत कम हैं। यह एक सर्वथा नया क्षेत्र उद्घाटित हुआ है।

जीन के रूपान्तरण का अर्थ होता है पूरे व्यक्तित्व का रूपान्तरण। एक जीन बदलता है और उस आनुवंशिकी यांत्रिकी के द्वारा पूरी जाति का स्वभाव ही बदल जाता है। यह परिवर्तन की बात सर्वथा नयी नहीं है, किंतु उसकी विशद व्याख्या और विशद जानकारी आज हमें उपलब्ध है। इससे हम अधिक लाभान्वित हो सकते हैं। केवल दृष्टिकोण का अन्तर होता है। एक शरीरशास्त्री और मानवशास्त्री परिवर्तन की बात भौतिक सीमा के अन्तर्गत सोचता है और एक अध्यात्मशास्त्री उसे भाव-तरंगों की सीमा में ले जाता है।

यह शरीर कुछेक रसायनों से निष्पन्न पिंड है। प्राचीन भाषा में इसे सप्तधातुमय माना जाता है। आज यह मान्यता बदल चुकी है। आज का शरीरशास्त्री शरीर को धातु, लवण, क्षार और रसायनों से बना हुआ मानता है। इसकी प्रक्रिया बहुत जटिल है, गहरी है। इस शरीर में एंजाइम्स, रसायन, हार्मोन्स काम करते हैं, इनकी सक्रियता से आदमी के व्यक्तित्व का, भाव का और विचार का निर्माण होता है। इस पूरी प्रक्रिया को समझ लेने के बाद साधना की बात ठीक समझ में आ जाती है। कहना यह चाहिए कि जिस व्यक्ति ने शरीर को समझने का प्रयत्न नहीं किया, वह न आत्मा को समझ सकता है और न परमात्मा को समझ सकता है। वह मनुष्य और प्राणी-जगत् के सम्बंध को भी नहीं समझ सकता।

1.4.3 शरीर की शक्तियों का दोहन

हम शरीर की शक्तियों का दोहन नहीं जानते। हमारे शरीर के भीतर कितनी बड़ी शक्तियां हैं! एक आदमी को कहा जाए कि तुम एक आसन में तीन घंटे बैठ जाओ। अरे! कैसे बैठा जा सकता है, कभी नहीं बैठा जा सकता। शरीर के भीतर इतनी ताकत है कि तीन घंटे नहीं, तीन महीने तक एक स्थान पर बैठा जा सकता है। हम अपनी शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते। हमें अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं है। हमें अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैंने देखा, दो वर्ष पहले एक शिविर था। एक भाई हैदराबाद से आया। वह युवक था, पढ़ा-लिखा था। उसने कहा—मैं ध्यान तो कर सकता हूं, पर मेरी कठिनाई यह है कि आधा घंटा भी एक आसन में नहीं बैठ सकता। मैंने कहा—चिंता मत करो। पांच-चार दिन बीते। शिविर का छठा दिन, चैतन्य केन्द्रों का ध्यान किया गया। दर्शन केन्द्र पर ध्यान टिका, गहराई आयी, आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता, दो घंटे बीत गये, उसे पता ही नहीं कि कहां बैठा हूं, कब बैठा हूं। देशातीत, कालातीत और शरीरातीत बन गया। पता ही नहीं चला। ये दो घंटा बीत जाने के बाद एक भाई ने आकर मुझे कहा, वह तो वैसा-का-वैसा बैठा है। मैं गया और जाकर उसको संबोधित किया तब अकस्मात् जैसे वह कोई नींद में से जागा हो, उठा और आकर पैर पकड़ लिए। उसने कहा—मैं तो आज इस स्थिति में चला गया कि दुनिया क्या है और मैं कौन हूं, कुछ भी भान नहीं रहा। अपूर्व स्थित बनी। आनन्दमय, केवल आनन्दमय।

हमारी शक्ति असीम है, यदि हम उसका उपयोग करना जानें। हमारे शरीर में शक्ति के तीन स्थान हैं—गुदा, नाभि और कंठ। एक नीचे, एक बीच में और एक ऊपर। नीचे का लोक, मध्य का लोक और ऊपर का लोक। ये तीन हमारे शक्ति के केन्द्र हैं। होता यह है कि शक्ति ऊपर से नीचे को आ जाती है। जबकि होना यह चाहिए कि शक्ति नीचे से ऊपर की ओर जाए। आचार्यों ने, तीर्थंकरों ने कहा कि इन्द्रियों के विषयों के प्रति आसक्त मत बनो। क्या उन्हें कोई द्वेष था? क्या घृणा थी? क्या कोई बुरा लगता था? भला खाना किसको अच्छा नहीं लगता! इन्द्रियों के सारे विषय बहुत अच्छे लगते हैं, किसी को बुरे नहीं लगते। किंतु उन्होंने देखा कि इन इन्द्रियों के माध्यम से हमारी बड़ी-से-बड़ी शक्ति नीचे के स्रोत से बाहर जा रही है और आदमी शक्ति से खाली हो रहा है और शक्ति-शून्य होकर एक प्रताड़ना का जीवन जी रहा है। इसलिए उन्होंने कहा कि संयम करो। आज संयम को शायद लोग मान बैठे हैं कि यह दमन है, नियंत्रण है। आज का मनोवैज्ञानिक कहता है कि दमन नहीं होना चाहिए। आज का प्रबुद्ध आदमी कहता है नियंत्रण की कोई जरूरत नहीं। अच्छी बात है, दमन की कोई जरूरत नही है। नियंत्रण की कोई जरूरत नहीं है। कुछ भी आवश्यक नहीं तो क्या हम एक ऐसे दरवाजे को खोल दें, ऐसी खिड़की को खोल दें, जिसमें से भीतर में सिमटी हुई सारी शक्ति बाहर चली जाए? मुझे लगता है, यदि हम भीतर के महत्त्व को समझ पाते, शरीर का मूल्य कर पाते तो यह नहीं होता कि नीचे का नाला तो खुला रहे और ऊपर का नाला बंद हो जाए। दो स्रोत हैं हमारे शरीर में। शक्ति और आकर्षण के ये दो केन्द्र हैं। एक है काम की शक्ति और दूसरी है ज्ञान की शक्ति। नीचे के स्रोत में कामनाएं, वासनाएं, इच्छाएं, हिंसा, असत्य, चोरी की भावना—ये सारी वृत्तियां पैदा होती हैं। एक है ज्ञान का केन्द्र हमारे सिर में, जहां सारी निम्न वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। चेतना का विकास, ज्ञान का विकास, बुद्धि का विकास, उदारता, परमार्थ—यह महान् चेतना जहां पैदा होती है, वह है ऊपर का केन्द्र—सिर। आवश्यकता इस बात की थी कि हम शरीर का मूल्यांकन करते और नीचे की शक्ति को ऊपर की शक्ति के साथ मिलाकर महान् बना देते। किंतु ऐसा नही हुआ।

हमारे शरीर में बिजली है। बिजली नहीं होती है तो आदमी शून्य-सा हो जाता है। शरीर निकम्मा, इन्द्रियां निकम्मी, बुद्धि निकम्मी, सब कुछ निकम्मा-सा बन जाता है। बिजली थोड़ी होती है तब टिमटिमाता है दीप और जब बिजली शरीर में पूरी होती है तो आदमी जगमगाने लग जाता है।

हमारे शरीर की विद्युत्, हमारी प्राण-ऊर्जा जितनी शक्तिशाली बनती है, उतना शक्तिशाली बनता है हमारा जीवन। शरीर का आध्यात्मिक मूल्यांकन है उस ऊर्जा की सुरक्षा करना, ऊर्जा को विकसित करना और ऊर्जा के स्रोत को मोड़कर नीचे से ऊपर की ओर ले जाना। साधना की समूची पद्धति, अध्यात्म का समूचा मार्ग ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण का मार्ग है।

शरीर बहुत मूल्यवान् है। मांसपेशियों का भी आध्यात्मिक मुल्य है। रक्त, नाड़ी-संस्थान और ग्रंथियों का भी आध्यात्मिक मूल्य है। ऊपर का स्रोत खुलता है तो प्राणशक्ति का प्रवेश होता है और नीचे का स्रोत खुला रहता है तो प्राणशक्ति का निर्गमन होता है, बिजली बाहर जाती है और आदमी शक्तिशून्य हो जाता है।

1.4.4 अध्यात्म-विज्ञान में शरीर का महत्त्व

जो इस स्थूल शरीर से परे है, वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। किंतु हमारे शरीर में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिसके विषय में चिंतन और अनुभव करते-करते हम अपनी बुद्धि और चित्शक्ति के द्वारा इन्द्रियों की सीमा से परे जाकर सूक्ष्म शरीर की सीमा में प्रविष्ट हो सकते हैं। उनमें एक तत्त्व है—प्राण-विद्युत्। अग्निदीपन, पाचन, शरीर का सौष्ठव और लावण्य, ओज—ये जितनी आग्नेय क्रियाएं हैं, ये सारी सप्त धातुमय इस शरीर की क्रियाएं नहीं हैं। इस स्थूल शरीर के भीतर तेज का एक शरीर और है, वह है विद्युत् शरीर, तैजस शरीर। वह सूक्ष्म शरीर है। वही इस स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संचालन करता है। उस सूक्ष्म शरीर में से विद्युत् का प्रवाह आ रहा है और उस विद्युत्-प्रवाह से सब कुछ संचालित हो रहा है। उस सूक्ष्म शरीर को प्राण शरीर भी कहा जाता है। यह शरीर प्राण का विकिरण करता है और उसी प्राण-शक्ति से क्रियाशीलता आती है।

श्वास, मन, इन्द्रियां, भाषा, आहार और विचार—ये सब प्राणशक्ति के ऋणी हैं। उससे ही ये सब संचालित होते हैं, क्रियाशील होते हैं। प्राणशक्ति तैजस शरीर से निःसृत है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न और होता है कि वह तैजस शरीर किसके द्वारा संचातिल है? वह प्राणधारा को प्रवाहित अपने आप कर रहा है या किसी के द्वारा प्रेरित होकर कर रहा है? यदि अपने आप कर रहा है तो तैजस शरीर जैसा मनुष्य में है वैसा पशु में भी है, पक्षियों में भी है और छोटे-से-छोटे प्राणी में भी है। एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसमें तैजस शरीर, सूक्ष्म शरीर न हो। वनस्पति में भी तैजस शरीर है, प्राण-विद्युत् है। वनस्पति में भी ओरा होता है। आभामंडल (ओरा) उस सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर का विकिरण है। प्रश्न होता है, यह रश्मियों का विकिरण क्या होता है? यदि तैजस शरीर का कार्य केवल विकिरण करना ही हो तो मनुष्य इतना ज्ञानी, इतना शक्तिशाली और इतना विकसित तथा एक अन्य प्राणी इतना अविकसित क्यों? यह सब तैजस शरीर का कार्य नहीं है। तैजस शरीर के पीछे भी एक प्रेरणा है सूक्ष्मतर शरीर की। वह सूक्ष्मतर शरीर है—कर्म-शरीर। जिस प्रकार के हमारे अर्जित कर्म और संस्कार होते हैं, उनका जैसा स्पंदन होता है, उन स्पंदनों से स्पंदित होकर तैजस शरीर अपना विकिरण करता है। तैजस शरीर जिस प्रकार की प्राणधारा प्रवाहित करता है, वैसी प्रवृत्ति स्थूल शरीर में हो जाती है।

तीन शरीरों की एक श्रृंखला है—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मतर शरीर। स्थूल शरीर यह दृश्य शरीर है। सूक्ष्म शरीर है तैजस शरीर और सूक्ष्मतर शरीर है कर्म शरीर, कार्मण शरीर। प्राणी की मूलभूत उपलब्धियां तीन हैं—चेतना (ज्ञान), शक्ति और आनन्द। चेतना का तारतम्य—अविकास और विकास, शक्ति का तारतम्य—अविकास और विकास, आनन्द का तारतम्य—अविकास और विकास—यह सारा इन शरीरों के माध्यम से होता है।

1.4.5 कुंडलिनी : स्वरूप और जागरण

कुंडलिनी-जागरण का प्रश्न शरीरों के साथ जुड़ा हुआ है। तीन शरीरों से जो मध्य का शरीर है, तैजस शरीर (सूक्ष्म शरीर), उसकी एक क्रिया का नाम है 'तेजोलब्धि'। हठयोग तंत्र में इसे 'कुंडलिनी' कहा गया है। कहीं कहीं इसे 'चित्शक्ति' कहा जाता है। जैन साधना-पद्धति में इसे 'तेजोलब्धि' कहा जाता है। नाम का अन्तर है। कुंडलिनी के अनेक नाम हैं। हठयोग में इसके पर्यायवाची नाम तीस गिनाए गए हैं। उनमें एक नाम है 'महापथ'। जैन साहित्य में 'महापथ' का प्रयोग मिलता है। कुंडलिनी के अनेक नाम हैं। भिन्न-भिन्न साधना-पद्धतियों में यह भिन्न-भिन्न नाम से पहचानी गयी है। यदि इसके स्वरूप-वर्णन में की गयी अतिशयोक्तियों को हटाकर इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो इतना ही फलित निकलेगा कि यह हमारी विशिष्ट प्राणशक्ति है। प्राणशक्ति का विशेष विकास ही कुंडलिनी का जागरण है। प्राणशक्ति के अतिरिक्त, तैजस शरीर के विकिरणों के अतिरिक्त कुंडलिनी का अस्तित्व वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं हो सकता। उनके प्रयास में कुंडलिनी का अस्तित्व प्रमाणित होता है, पर होता है वह सामान्य शक्ति के विस्फोट के रूप में। वह कुछ ऐसा आश्चर्यकारी तथ्य नहीं है, जिसे अमुक योगी ही प्राप्त कर सकते हैं या जिसे अमुक-अमुक योगियों ने ही प्राप्त किया है। यह सर्वसाधारण है। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसकी कुंडलिनी जागृत न हो। वनस्पति के जीवों की भी कुंडलिनी जागृत है। हर प्राणी की कुंडलिनी जागृत होती है। यदि वह जागृत न हो तो वह चेतन प्राणी नहीं हो सकता। वह अचेतन होता है। जैन आगम ग्रंथों में कहा गया—चैतन्य (कुंडलिनी) का अनन्तवां भाग सदा जागृत रहता है। यदि यह भाग भी आवृत्त हो जाए तो जीव अजीव बन जाए, चेतन अचेतन हो जाए। चेतन और अचेतन के बीच यही तो एक भेद-रेखा है।

प्रत्येक प्राणी की कुंडलिनी यानी तैजस शक्ति जागृत रहती है। अंतर होता है मात्रा का। कोई व्यक्ति विशिष्ट साधना के द्वारा अपनी इस तैजस शक्ति को विकसित कर लेता है और किसी व्यक्ति को अनायास ही गुरु का आशीर्वाद मिल जाता है तो साधना में तीव्रता आती है और कुंडलिनी का अधिक विकास हो जाता है। वह अनुभव आगामी यात्रा में सहयोगी बन सकता है। बनता है यह जरूरी नहीं है। गुरु की कृपा ही क्यों, मैं मानता हूं कि जिस व्यक्ति का तैजस शरीर जागृत है, उस व्यक्ति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सान्निध्य में जाने से भी दूसरे व्यक्ति की कुंडलिनी को (तैजस शरीर को) उत्तेजना मिल जाती है और वह अर्द्धजागृत कुंडलिनी पूर्ण जागृत हो जाती है। प्रश्न है विद्युत्-प्रवाहों का। 'क' और 'ख' दो व्यक्ति हैं। 'क' के विद्युत्-प्रवाह बहुत सक्रिय हैं। 'ख' के विद्युत्-प्रवाह कमजोर हैं। यदि 'ख' 'क' के पास जाता है तो 'क' के विद्युत्-प्रवाह 'ख' को प्रभावित करेंगे और उसमें एक प्रकार के विद्युत् स्पंदन पैदा हो जाएंगे।

गुरु-कृपा का तात्पर्य है उस व्यक्ति का सान्निध्य जिसका तैजस जागृत है। गुरु का अर्थ परम्परागत गुरु से नहीं है। जिस व्यक्ति की तैजस शक्ति विकसित है, उसके पास जाने से, उसके आशीर्वाद प्राप्त करन से, उसके हाथों का मस्तिष्क पर स्पर्श प्राप्त होने से या पृष्ठरज्जु पर उसका स्पर्श मिलने से कुंडलिनी-शक्ति को जगाने में सहयोग मिलता है। उसको अनुभव होने लग जाता है। वह क्षणिक अनेभव विद्युत्-जागरण जैसा होता है। गुरु-कृपा से मिलने वाला यह क्षणिक अनुभव या जागरण क्षणिक ही होता है, स्थायी नहीं होता। एक क्षण में अपूर्व अनुभव हुआ और दूसरे क्षण में वह समाप्त हो गया। इलैक्ट्रोड लगाने से क्षणिक अनुभव होता है और उसे हटा देने से वह अनुभव भी समाप्त हो जाता है। वैसा ही यह अनुभव होता है। अन्ततः कुंडलिनी का जागरण साधक को स्वयं ही करना पड़ता है। उसे प्रयास करना होता है। गुरु-कृपा का इतना-सा लाभ होता है कि एक बार जब अनुभव हो जाता है, फिर चाहे वह अनुभव क्षणिक ही क्यों न हो, वह आगे के अनुभव को जगाने के लिए प्रेरक बन जाता है।

1.4.6 कुंडलिनी-जागरण के मार्ग

प्रेक्षाध्यान से कुंडलिनी जाग सकती है। उसको जगाने के और भी अनेक मार्ग हैं, अनेक उपाय हैं। संगीत के माध्यम से भी उसे जगाया जा सकता है। संगीत एक सशक्त माध्यम है कुंडलिनी के जागरण का। व्यायाम और तपस्या से भी वह जाग जाती है। भक्ति, प्राणायाम, व्यायाम, उपवास, संगीत, ध्यान आदि अनेक साधन हैं, जिनके माध्यम से कुंडलिनी जागती है। ऐसा भी होता है कि पूर्व संस्कारों की प्रबलता से भी कुंडलिनी जागृत हो जाती है और यह आकस्मिक होता है। व्यक्ति कुछ भी प्रयत्न या साधना नहीं कर रहा है, पर एक दिन उसे लगता है कि उसकी प्राणशक्ति जाग गयी। इसलिए कोई निश्चित नियमनहीं बनाया जा सकता कि अमुक के द्वारा ही कुंडलिनी जागती है और अमुक के द्वारा नहीं जागती। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति गिरा, मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा और कुंडलिनी जाग गयी। उसकी अतीन्द्रिय चेतना जाग गयी। कुंडलिनी जगाने के अनेक कारण हैं। औषधियों के द्वारा भी कुंडलिनी जागृत होती है। अमुक-अमुक वनस्पतियों के प्रयोग से कुंडलिनी के जागरण में सहयोग मिलता है। तिब्बत में तीसरे नेत्र का उद्घाटन में वनस्पतियों का प्रयोग भी किया जाता था। पहले शल्यक्रिया करते, फिर वनौषधियों का प्रयोग करते थे। औषधियों का महत्त्व सभी परम्पराओं में मान्य रहा है। प्रसिद्ध सूक्त है—**अचिन्त्यो मणिमंत्रौषधीनां प्रभाव:**—मणियों, मंत्रों और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। मंत्रों के द्वारा भी कुंडलिनी को जगाया जा सकता है तथा विविध मणियों, रत्नों के विकिरणों के द्वारा और औषधियों के द्वारा भी उसे जागृत किया जा सकता है।

1.4.7 प्राण-शक्ति की विद्युत् का चमत्कार

एक अंगुली हिलती है। कितना बड़ा चमत्कार है एक अंगुली का हिलना, किंतु इसे चमत्कार मानते ही नहीं हैं। क्योंकि यह बेचारी रोज हिलती है। अगर कभी-कभी हिलती तो यह भी बड़ा चमत्कार होता। इसे कोई चमत्कार नहीं मानते, किंतु जानने वाले जानते हैं कि एक अंगुली को हिलाने के लिए कितने बड़े तंत्र का सहारा लेना पड़ता है। इतना बड़ा तंत्र शायद सरकार का भी नहीं है। पहले सोचते हैं, मस्तिष्क के ज्ञानतंतु सक्रिय होते हैं और फिर वे क्रियावाही तंतुओं को निर्देश देते हैं। वह निर्देश वहां तक पहुंचता है तो अंगुली हिलती है। बहुत छोटी-सी बात है, मैंने थोड़े में, एक मिनट में कह दी। पर प्रक्रिया इतनी बड़ी है कि करने बैठें तो हजारों-हजारों कर्मचारी भी जीवन में पूरी नहीं कर सकते। मस्तिष्क की रचना बहुत विचित्र है। कोई वैज्ञानिक हमारे मस्तिष्क जैसे सूक्ष्म अवयवों का कम्प्यूटर बनाना चाहे तो आज की पूरी पृथ्वी भर जाए—इससे भी शायद ज्यादा बड़ा होगा। एक अंगुली के हिलने में कितनी क्रिया होती है, हम समझ ही नहीं पाते।

कायोत्सर्ग का मूल्य समझ में नहीं आता किंतु जो शरीर की क्रिया को जानता है, वह व्यक्ति समझ सकता है कि कायोत्सर्ग कितना मूल्यवान् है? कायगुप्ति का कितना मूल्य है? शरीर को स्थिर करने का कितना मूल्य है? हम इसको इस संदर्भ में समझें कि एक अंगुली हिलती है, इसका मतलब है मन की शक्ति खर्च होती है, चित्त की शक्ति खर्च होती है और पूरे शरीर में जो काम करने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वाली विद्युत है, ऊर्जा है, प्राणशक्ति है, वह खर्च होती है। कायोत्सर्ग करने का अर्थ होता है कि बिजली खर्च नहीं होती, मन की शक्ति खर्च नहीं होती, शरीर की शक्ति एवं मस्तिष्क की शक्ति भी खर्च नहीं होती, सब भंडार में रिजर्व रह जाती है।

बहुत बार ऐसा होता है कि बल्ब लगे रहते हैं किंतु प्रकाश गायब हो जाता है। हम शरीर को देखते हैं, शरीर की भी यही हालत है। शरीर पड़ा है, आंखें, कान, नाक पूरे-के-पूरे अवयव हैं, किंतु बिजली गायब हो गई।

पढ़ा होगा आपने, कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं कि चिता में जलाने के लिए शव को लिटा दिया, वह बीच में ही खड़ा हो गया। पोस्टमार्टम के लिए रोगी को सुलाया गया और डॉक्टर पोस्टमार्टम करने बैठा। अस्त्र लगा, वह खड़ा हो गया। आपको आश्चर्य होगा कि यह कैसे हो सकता है? बिजली गायब हो गई थी, फिर कोई ऐसा बटन दबा, बिजली आ गई और वह जी गया। लोगों ने समझ लिया कि यह तो भूत हो गया। यह बहुत बड़ा चमत्कार है हमारे प्राण की शक्ति का। आंख में देखने की ताकत नहीं, कान में सुनने की शक्ति नहीं, जीभ में रसास्वाद की अनुभूति नहीं, यह सब जो करता है, भरता है शक्ति को, वह है प्राण। एक प्राण का प्रकाश आता है, सब अपना-अपना काम करने लग जाते हैं।

मूल प्रश्न है प्राण का। प्राण सबसे बड़ा चमत्कार है। दुनिया में जितने चमत्कार होते हैं वे सब प्राण के द्वारा होते हैं। यदि प्राण की शक्ति न हो तो दुनिया में कोई चमत्कार नहीं। आज विद्युत् का युग है, वैज्ञानिक युग है। कहना चाहिए विद्युत् है इसलिए विज्ञान है। सब कुछ चल रहा है बिजली के आधार पर। वास्तव में विद्युत् का युग है। इतने बड़े चमत्कार आज की दुनिया में चलते हैं कि कमरा बन्द है, आदमी आया। जैसे ही कमरे में पैर रखा, दरवाजा अपने आप खुल जाता है। जैसे ही भीतर गया, कुर्सी पर बैठा, पंखा अपने आप चलने लग गया। कोई बटन दबाने की जरूरत नहीं। बल्ब जल उठा। यह तो आज की बात है। कुछ समय के बाद ऐसा होगा कि आदमी भोजन की टेबल पर जाकर बैठेगा, अपने आप भोजन आ जाएगा। खा लिया, हाथ अपने आप धुल जाएंगे, रूमाल आ जाएगा, कुछ भी करने की जरूरत नहीं। बस पचाना पड़ेगा। बाकी सारा होगा बिजली के द्वारा।

हम इतने निकट हैं और हमारी प्राणशक्ति, प्राण-विद्युत् इतनी निकट है कि हम सही मूल्यांकन नहीं कर पाते। एक अवयव में से बिजली चली जाए, प्राण सिकुड़ जाए, तब पता चलता है कि क्या होता है? यह लकवा क्या है? प्राणशक्ति सिकुड़ गई, प्राणशक्ति चली गई तो लकवा हो गया। बिजली चली गई, बस! लकवा जब पूरे शरीर पर हो जाता है, व्यक्ति सारा नियंत्रण खो बैठता है। व्यक्ति बिना मतलब रो देता है, बिना मतलब हंसता है, शरीर काम नहीं करता। एक प्रकार से मृत की भांति बन जाता है। इतना ही नहीं, यह तो केवल बाह्य व्यक्तित्व की चर्चा है। भीतर के व्यक्तित्व की चर्चा करें तो लगता है कि प्राण-शक्ति और विद्युत् एक बहुत बड़ा चमत्कार है। एक व्यक्ति बहुत अच्छा है और एक व्यक्ति बड़ा गुस्सैल है। एक व्यक्ति इतना सहनशील है कि हर बात सहन कर लेता है। एक व्यक्ति ईमानदार है तो दूसरा बड़ा बेईमान है। यह सारा क्यों होता है? यह प्राणशक्ति का खेल है। प्राणशक्ति के इतने दांव-पेच हैं कि वह सारे अनुभव कराती है। हमें सुख का अनुभव भी बिजली से होता है और दु:ख का अनुभव भी बिजली से होता है। मनुष्य राजी भी बिजली से होता है और नाराज भी बिजली से होता है। वासना से लिप्त भी बिजली से होता है और वासना से मुक्त भी बिजली से होता है। यदि हमारी भीतर की सारी विद्युत् की गतिविधियों को, प्रवृत्तियों को हम जान लें और उनका ठीक नियोजन करना जान जाएं तो बहुत सारी समस्याएं हल हो जाती हैं।

साधना का अर्थ है—अपनी प्राण-विद्युत् को जान लेना और उसका सही उपयोग करना।

विज्ञान की भाषा में एड्रीनल ग्रंथि विकृत हो गई, आदमी चोर बन गया, अपराधी बन गया। आवश्यकता इस बात की है कि ज्ञान और विद्युत् दोनों साथ-साथ रहें। ज्ञान ऊपर रहता है और बिजली नीचे जाती है तो ज्ञान भी लज्जित होता है और आदमी अपराधी बन जाता है। ज्ञान का मूल्य तभी है कि ज्ञान और प्राण—दोनों साथ रहें, ज्ञान और प्राण का योग बराबर बना रहे।

प्रश्न है इस विद्युत् को कैसे बदला जाए? धर्म की पूरी प्रक्रिया, साधना की पूरी प्रक्रिया, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद—ये सारे उस बिजली के बदलने की पद्धति बतलाते हैं। कैसे बदला जाए? किस प्रकार बदला जाए? किस प्रकार का आचार, किस प्रकार का व्यवहार, किस प्रकार का चिंतन, किस प्रकार का दर्शन हो, जिससे वह बिजली, प्राण-धारा बदले और प्राण-धारा चेतना के जागरण में सहयोगी बने—ये सब ज्ञातव्य हैं।

पांचों इन्द्रियों की शक्तियां, बोलने की शक्ति, सोचने की शक्ति, चलने-फिरने की शक्ति, श्वास लेने की शक्ति और जीने की शक्ति—ये सारी शक्तियां एक ही शक्ति के विभिन्न रूप हैं। मूलत: एक है—प्राणशक्ति। यदि शक्ति नहीं है तो चेतना का उपयोग नहीं होता। सुख-दु:ख का अनुभव तो वास्तव में शक्ति का ही अनुभव है, बिजली का ही अनुभव है। हमारी प्राणशक्ति, जो निरन्तर हमारे जीवन को संचालित करती है, वह पैदा होती है और खपती रहती है। हर कोशिका बिजली को पैदा करती है और काम चलाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ज्ञान का विकास तब होता है जब प्राणशक्ति बढ़ जाती है। एक विशिष्ट ज्ञानी, जिसे परिभाषा में चतुर्दशपूर्वी कहा जाता है, वह 48 मिनट के भीतर इतनी बड़ी ज्ञान-राशि का केवल कुछ मिनटों में पुनरावर्तन कर लेते हैं। प्राणशक्ति की विशिष्टता के कारण ऐसा संभव हो सकता है। प्राण की शक्ति जैसे-जैसे सूक्ष्म होती है, उसकी शक्ति बढ़ती जाती है। जो गणित एक आदमी अपने पूरे जीवन में कर सकता है वह गणित कम्प्यूटर कुछ क्षणों में कर लेता है। चतुर्दशपूर्वी तो बड़ा कम्प्यूटर है। सबको इतना जल्दी दोहरा लेता है कि हर आदमी तो कर ही नहीं सकता। वह प्राणशक्ति को इतना विकसित कर लेता है कि उसमें अपूर्व शक्ति पैदा हो जाती है।

प्राण-शक्ति जैसे-जैसे सूक्ष्म होती चली जाती है, वैसे-वैसे उसकी क्षमता और कार्यशक्ति भी बढ़ती चली जाती है। ध्यान की साधना प्राण-शक्ति को सूक्ष्म करने की साधना है। श्वास की संख्या जितनी बढ़ती है, शक्ति उतनी ही खर्च होती चली जाती है। श्वास की संख्या जितनी कम होती है, उतनी ही शक्ति बढ़ती चली जाती है।

ध्यान करने वाला व्यक्ति, महाप्राण की साधना करने वाला व्यक्ति श्वास को सूक्ष्म करता चला जाता है। एक मिनट में 12, 10, 8, 6, 4, 2, 1 । एक मिनट में एक श्वास और दो मिनट में एक श्वास चला चले। चलते-चलते यह स्थिति आएगी कि पन्द्रह दिनों में एक श्वास, एक महीने में एक श्वास।

मूल बात है शक्ति का भंडार होना चाहिए, शक्ति का संचय होना चाहिए। जो प्राण की साधना को नहीं जानता, वह शक्ति का संग्रह नहीं कर सकता। शक्ति आती है और चुक जाती है, संचय कभी होता ही नहीं।

शक्ति-संचय की बात को अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में भी सोचें। अहिंसा प्राणशक्ति का आध्यात्मिकीकरण है। अगर अहिंसा नहीं है तो व्यक्ति शक्तिशाली कैसे बनेगा? अहिंसा नहीं है तो जो शक्ति आयी वह हिंसा के द्वारा खर्च हो जाएगी। हिंसक व्यक्ति सोचता है कि दूसरे की शक्ति को खर्च कर दूं, किंतु उसकी अपनी शक्ति चुक जाती है। दूसरों की निंदा करने वाला, चुगली करने वाला, ईर्ष्या करने वाला, जलने वाला, मन में दाह रखने वाला व्यक्ति अपनी शक्ति के भंडार को विकसित नहीं कर सकता। दूसरों के प्रति बुरे विचार रखने वाला कोई भी अपनी शक्ति के संग्रह को बढ़ा नहीं सकता। ये सारे शक्ति के चुकने के कारण हैं, न होने के कारण हैं। अहिंसा इसलिए जरूरी है कि उससे हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है।

अब्रह्मचर्य के द्वारा शक्ति समाप्त होती है। ब्रह्मचर्य का उपदेश इसलिए दिया गया कि व्यक्ति की शक्ति खर्च न हो। शक्ति का अर्जन और शक्ति का विसर्जन भी चलता रहे। यह कैसे हो? अर्जन और विसर्जन के बीच तीसरी बात होती है सुरक्षा की, रक्षण की, संरक्षण की। ब्रह्मचर्य का सिद्धांत इसीलिए प्रतिपादित किया कि व्यक्ति शक्ति को खर्च न करे। कुछ लोग बहुत उलझ जाते हैं। आज के डॉक्टर भी उलझ जाते हैं। वे कहते हैं—वीर्य का कोई मूल्य नहीं हमारी दृष्टि में। वीर्य का मूल्य नहीं होगा उनकी दृष्टि में, उन्होंने उसका रासायनिक विश्लेषण किया होगा। किंतु इस बात का तो मूल्य है कि प्रत्येक अब्रह्मचर्य की घटना के साथ बिजली भी खर्च होती है। बिजली बाहर जाती है, बिजली खर्च होती है और आदमी बिजली से शून्य होता है।

सबसे बड़ी सुरक्षा करनी है—प्राण-विद्युत् की। हमारी बिजली कम खर्च हो, उसका संग्रह कर सकें, उसका सही दिशाओं में प्रयोग कर सकें।

विद्युत् के बिना चेतना के केन्द्रों को सक्रिय नहीं किया जा सकता और चेतना के केन्द्रों को सक्रिय किए बिना कोई भी विशिष्टता प्राप्त नहीं की जा सकती।

प्राण की ऊर्जा को संग्रहीत करना और उस ऊर्जा का आध्यात्मिकीकरण करना, यह अपेक्षित है। आध्यात्मिकीकरण का अर्थ है—नीचे के केन्द्रों में ऊर्जा का न रखना, उस ऊर्जा को ऊपर के केन्द्रों में ले जाना। यह आध्यात्मिकीकरण की प्रक्रिया है। ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के दो मुख्य साधन हैं—

1. श्वास लेने की समुचित प्रक्रिया का अभ्यास।

2. चित्त को लम्बे समय तक एक बिन्दु पर टिकाए रखने का अभ्यास।

जो सांस लेना ठीक ढंग से नहीं जानता, वह प्राण को विकसित नहीं कर सकता। प्राण की शक्ति सांस के साथ नथुनों के द्वारा ही बाहर आती है। जो सांस को ठीक लेना नहीं जानता, वह प्राण का संग्रह कर नहीं सकता।

जिस व्यक्ति ने मन को एकाग्र करना सीख लिया, श्वास का संयम करना सीख लिया, वह फिर जहां चाहे वहां प्राण-ऊर्जा का उपयोग कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोई साधक चाहे कि भृकुटि के बीच प्राण-ऊर्जा को टिकाना है तो उसका मन भी टिक जाएगा, प्राण-ऊर्जा भी टिक जाएगी और वहां पूरी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी, अपने आप वहां का चैतन्य-केन्द्र सक्रिय हो जाएगा।

प्राण की प्रक्रिया, प्राण-ऊर्जा के विकास की प्रक्रिया, प्राण का आध्यात्मिकीकरण, बिजली को आध्यात्मिक बना देना, यह साधना का रहस्य है। जिस दिन प्राण की आध्यात्मिक बनाने की प्रक्रिया हमारी समझ में आ जाएगी। हम उसका अभ्यास शुरू करेंगे, प्राणशक्ति का संग्रह शुरू करेंगे और फिर उसका जीवन के ऊर्ध्वगमन में, ऊंचे-ऊंचे स्थानों के विकास में उपयोग करेंगे, नाभि से ऊपर के केन्द्रों को विकसित करने में उस शक्ति को लगाएंगे तो एक अनुपम आनन्द, निर्मल चेतना, शक्तिशाली प्रज्ञा हमारे व्यक्तित्व में जागेगी और ऐसे व्यक्तित्व तैयार होंगे जिनकी आज के इस कलह-प्रधान, क्रोध-प्रधान, अधैर्य-प्रधान मानवीय सभ्यता में सबसे ज्यादा अपेक्षा है।

आज के युग में निरन्तर हिंसा, मार-काट, हत्याएं, आत्महत्याएं और नाना अपराधों का विकास हो रहा है, नींद कम होती जा रही है, स्मरण-शक्ति होती जा रही है, आंतरिक शक्तियां और सहिष्णुता की शक्ति कम होती जा रही है, धैर्य का लोप होता जा रहा है। इस प्रकार के युग में यदि समस्याओं का समाधान पाना है तो प्राणशक्ति का विकास और उसका आध्यात्मिकीकरण हमारे लिए नितांत अनिवार्य है।

1.5 आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण

श्रद्धा और तर्क, नया और पुराना, अध्यात्म और विज्ञान, पूर्व और पश्चिम—ये बहुत सारे द्वन्द्व हैं। जीवन के लिए दोनों की ही उपयोगिता है। कहीं यदि श्रद्धा होती है तो इतनी प्रगाढ़ होती है कि तर्क बेचारा विवश हो जाता है। 'नया' जीवन पर हावी होता है तो इस तरह से होता है कि आदमी 'पुराने' से बिलकुल टूट जाता है। 'विज्ञान' आदमी के नजदीक होता है तो 'अध्यात्म' आदमी से बहुत दूर हो जाता है। 'पूर्व' एक छोर पर होता है तो 'पश्चिम' दूसरे छोर पर होता है। दोनों में एक अलंघ्य फासला दिखाई देता है।

1.5.1 अध्यात्म स्वयं एक विज्ञान

इसमें कोई संदेह नहीं कि अध्यात्म एक अनुत्तर विज्ञान है और वह जीवन को आनन्द प्रदान करता है। पर इसमें भी कोई संदेह नहीं कि विज्ञान भी सत्य की खोज का एक मार्ग है और ढेर सारी सुविधाएं प्रदान करता है। पूर्ण रूप से अध्यात्म में जीने वाले व्यक्ति के लिए अपने आपमें ही वह मिल जाता है। उसे विज्ञान के सामने अपना भिक्षा-पात्र फैलाने की आवश्यकता नहीं रहती। विज्ञान के ताने-बाने में बुने जाने वाले वस्त्र में जीवन को अमाप्य ऊंचाइयां देने की क्षमता है। पर आज कठिनाई यही है कि अध्यात्म जहां ऊपरी क्रियाकांडों से उलझ गया है, वहां विज्ञान केवल भौतिक प्रवृत्तियों से प्रतिबद्ध हो गया है।

वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक दृष्टि अपेक्षित है। शांतिपूर्ण जीवन के लिए आध्यात्मिकता भी अनिवार्य है। आध्यात्मिकता+ वैज्ञानिकता=आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व।

विज्ञान से मनुष्य ने इतना सामर्थ्य अर्जित किया है कि उससे पूरी धरती पर सुख की फसल उगाई जा सकती है। पर आज तो वही दुनिया का सबसे बड़ा सिरदर्द बन रहा है। भले ही शस्त्रास्त्रों का युद्ध स्तर पर उपयोग करने में राजनैतिक स्वार्थ मुख्य मोहरे बनते हों, पर विज्ञान यदि राजनीति के हाथों में नहीं खेलता तो वह विनाश का सर्जनहार नहीं बनता।

अब भी समय है कि आदमी संभले। अध्यात्म के संभलने का अर्थ है लिखे-लिखाए शब्दों की लीक पर चलने से पूर्व उन पर प्रायोगिक परीक्षा करें। प्रेक्षाध्यान विज्ञान के प्रकाश में योग को प्रायोगिक स्वरूप प्रदान कर रहा है जो आज के चिकित्सा-शास्त्र को भी मान्य हो रहा है। सामान्यतया जनभावना में अध्यात्म के प्रति जो एक उदासीनता दीख रही थी, उसमें जो ठहराव आ गया था वह टूटता हुआ प्रतीत हो रहा है। युवकों में प्रेक्षाध्यान के प्रति बढ़ता हुआ उत्साह इस तथ्य का प्रकट निदर्शन है।

आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण का तात्पर्य केवल इन दोनों विषयों का तुलनात्मक अध्ययन ही नहीं है अपितु उस चेतना का जागरण है जो शाश्वत सत्यों और प्रयोग—दोनों की सत्ता को एक स्वीकार करे। तुलनात्मक अध्ययन तो इसका सतही स्तर है।

1.5.2 वैज्ञानिक विकास : वरदान या अभिशाप

आज मनुष्य के पास बोझ ढ़ोने के अनेक साधन हैं। ट्रकें, ट्रॉलियां, ट्रेन आदि ऐसे अनेक भीमकाय भारवाही वाहन निकल गए हैं। उसके पास इतने तीव्र गति वाले यान-वाहन आ गए हैं कि सन् 1938 में प्रतिघंटा बीस मील चलने वाला आदमी आज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

40,000 मील प्रतिघंटा भी यात्रा आराम से कर सकता है। कोलम्बिया शटल के कार्यरत हो जाने से न केवल धरती पर ही अपितु अंतरिक्ष में भी मनुष्य का बेरोक-टोक आवागमन शुरू हो गया है।

यंत्रों, कम्प्यूटरों तथा रोबोटों का आविष्कार हो जाने से न केवल मनुष्य का श्रम ही बच गया है अपितु उसे बहुत सारी चीजें उपलब्ध होने लगी है। आज दत्सून जैसे औद्योगिक ईकाई में केवल अठारह आदमी ही प्रतिदिन दो हजार कारों का उत्पादन करने लगे हैं। टेक्सास इंटूमेंटस तथा हेलविट एण्ड मैकार्ड जैसे प्रतिष्ठानों में तो आदमी का कोई बच्चा भी काम नहीं कर रहा है। आभियांत्रिकी के संबोध से आज हर चीज मनुष्य को घर बैठे उपलब्ध होने लगी है। वह अपने कमरे में बैठा हमारी दुनिया के ही नहीं अपितु अन्य ग्रहों के लोगों से भी न केवल बातचीत ही कर सकता है अपितु उनसे साक्षात्कार भी कर सकता है। भविष्य में विज्ञान की यह गति और भी अधिक बढ़ जाने वाली है तथा मनुष्य के पास सुख-सुविधाओं का अम्बार लग जाने वाला है। शक्ति-स्रोतों के विविध उपादानों के साथ-साथ अणु-शक्ति ने भी मनुष्य को अकल्प्य रूप में विस्तृत कर दिया है।

1.5.3 फिर भी तनाव बढ़े हैं

पर बड़े बड़े रिएक्टर, हाईड्रोइलेक्ट्रिकपावर हाऊस तथा अणु बिजलीघरों का खतरा भी कम गहरा नहीं हुआ। औद्योगिक प्रदूषण से पूरी दुनिया के संतुलन को खतरा पैदा हो गया है। आदमी आज मशीन का इतना दास बन गया है कि उसके तनावों का भी कोई पार नहीं है। यद्यपि तनाव हमेशा मनुष्य का पीछा करते हैं पर आज मनुष्य जिस रूप से तनावग्रस्त है, उससे उपरोक्त सारी प्रगति पर एक प्रश्नचिन्ह लग गया है।

1.5.4 श्रम को हेय न मानें

विश्राम की मनोवृत्ति के साथ-साथ आज श्रम को हेय समझने की मनोवृत्ति का भी इतना विकास हो गया है कि अपने आपको सभ्य मानने वाला मनुष्य जरा-सा श्रम करते हुए भी हिचकिचाता है। ऐसी स्थिति में हमें फिर से मुड़कर देखना होगा। ऐसा नहीं है कि आदमी विज्ञान की उपलब्धियों की अनदेखी कर दे पर उसे यदि आनन्दपूर्ण जीवन जीना है तथा दूसरों के आनन्द को नहीं छीनना है, तो यह आवश्यक है कि न केवल वह स्वयं ही श्रम से जी न चुराए अपितु अन्य लोगों के श्रम को छीनकर उन्हें दर दर भटकने देने का भागीदार भी न बने। आज बहुत सारे विकसित देशों ने अपने उद्योगों के द्वारा बहुत सारे अविकसित देशों के सामने समस्याएं खड़ी कर दी हैं, जिनसे निपटना बड़ा कठिन हो गया है। सबसे बड़ी आवश्यकता तो यह है कि मनुष्य श्रम को हेय न समझे। सचमुच में मानव-मात्र की हित-चिंता तथा अपने तनावों से मुक्त होने की यह टेक्नीक आदमी को विज्ञान से नहीं अध्यात्म से सीखनी होगी। वैसे विज्ञान ने भी अध्यात्म के इस सत्य पर अपनी मुहर लगाना शुरू कर दिया है कि श्रम के बिनाआदमी का अपना जीवन भी आनन्दमय नहीं बन सकेगा। वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रकाश में आज अध्यात्म की पुस्तक पढ़ना आवश्यक हो गया है।

समय की यह बहुत बड़ी मांग है कि व्यक्ति को एकांगी सोच वाला नहीं होना चाहिए। बड़े-बड़े विचारकों आध्यात्मिक पुरुषों ने विज्ञान को उसके सच्चे अर्थों में समझा है तथा उन्होंने कभी दूरी नहीं रेखी। वस्तुत: अध्यात्म स्वयं मेंएक बहुत बड़ा विज्ञान है। अध्यात्म का विशिष्ट अंग है आत्मतत्त्व। आत्मतत्त्व के ज्ञाता या उसके साक्षात्कर्त्ता के सम्मुख दुनिया का कोई भी ज्ञान पिहित नहीं रहता। आत्मतत्त्व का यह रहस्य किसको विस्मित नहीं करता कि आत्मा के एक बार शरीर को छोड़ देने के बाद दुनिया के महानतम डॉक्टर्स के द्वारा भी आत्मा शरीर में वापस नहीं लौटाई जाती है। आत्मा के अतिरिक्त प्रत्येक चीज को प्रत्यर्पित प्रत्यारोपित करने में वैज्ञानिकों को कोई भी कठिनाई नहीं होती। कृत्रिम हृदय प्रत्यारोकपत करने में मनुष्य को सफलता मिल गयी है। पाठ में इस बात को बताया भी गया है कि अल्बर्ट आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक को आध्यात्म में पूर्ण आस्था थी। धर्म का भी उनकी दृष्टि में ऊंचा स्थान था। इसीलिए उन्होंने कहा है—"Religion without science is blind; Science without religion is lame." यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि लोग धर्म की सही व्याख्या से दूर हो जाते हैं। धर्म सम्प्रदाय के घेरे तक ही सीमित रह गया है। धर्म वस्तुत: एक धरातल पर एक जैसा होगा, भिन्न-भिन्न नहीं होगा। धर्म को जैनदर्शन ने आत्माशुद्धि के साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। अध्यात्म को यदि साध्य कहें तो धर्म उसे उपलब्ध कराने वाला साधन है। जिस प्रकार धर्म और अध्यात्म के बीच में साधन और साध्य का सम्बंध है वैसे ही विज्ञान और धर्म वस्तुत: दो नहीं, एक ही विषय हैं। जैसाकि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रस्तुत पाठ में भी बताने का प्रयास किया गया है। वस्तु को जानने का जो माध्यम है वह है विज्ञान और उस माध्यम के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता हे वह है धर्म।

1.6 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. धर्म और विज्ञान के अन्तर्सम्बंधों को विस्तार से समझाइए। धर्म और विज्ञान की महानता पर प्रकाश डालिए।
2. प्राणशक्ति के आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व को विस्तार से समझाइए।
3. आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. विज्ञान द्वारा सत्य की खोज पर टिप्पणी लिखिए।
2. धर्म के द्वारा सत्य की खोज के सम्बंध में स्पष्टीकरण दें।
3. जैन आगम के सूक्ष्म सत्यों का उद्घाटन करें।
4. "Religion without science is blind; Science without religion is lame." कथन किसका है और क्यों?
5. सूक्ष्म साक्षात्कार के सम्बंध में कुछ चर्चाएं प्रस्तुत करें।
6. शरीर की शक्तियों का दोहन कैसे होता है?
7. कुण्डलिनी के स्वरूप और उसके जागरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालें।
8. प्राण-विद्युत पर सार्थक टिप्पणी करें।

संदर्भ पुस्तकः

1. जैनदर्शन और विज्ञान—संकलक मुनि महेन्द्रकुमार जेठालाल, एस. झबेरी, जैनविश्वभारती संस्थान, लाडनूं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : जैनदर्शन और परामनोविज्ञान

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 आत्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद
- 2.2.1 जैनदर्शन का दृष्टिकोण
- 2.2.2 अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद
- 2.2.3 जाति स्मृति ज्ञान आदि
- 2.2.4 विभिन्न धर्म-दर्शनों में पुनर्जन्मवाद
- 2.2.5 परामनोविज्ञान
- 2.2.6 पुनर्जन्म पर परामनोविज्ञान में अनुसंधान : इतिहास
- 2.2.7 ब्राजील में अढाई-वर्ष की बालिका को पूर्व-जन्म की स्मृति
- 2.2.8 गवेषणा-पद्धति
- 2.2.9 विस्मृति
- 2.2.10 आनुवंशिक स्मृति
- 2.2.11 अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण शक्ति
- 2.2.12 भूतावेश

2.3 अतीन्द्रिय ज्ञान : दूरबोध एवं परिचित बोध
- 2.3.1 जैनदर्शन का दृष्टिकोण
- 2.3.2 समाधान : अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के सन्दर्भ में
- 2.3.3 चैतन्यकेन्द्र क्या है?
- 2.3.4 समूचा शरीर ज्ञान का साधन है
- 2.3.5 संभिन्न-स्रोतोलब्धि
- 2.3.6 मन की क्षमता
- 2.3.7 पूर्वाभास अतीन्द्रिय ज्ञान है?
- 2.3.8 अतीन्द्रिय चेतना का प्रकटीकरण
- 2.3.9 विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र
- 2.3.10 प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया
- 2.3.11 केन्द्र और संवादी केन्द्र
- 2.3.12 परामनोविज्ञान में अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण
- 2.3.13 विचार-संप्रेषण
- 2.3.14 अतीन्द्रिय चेतना : विकास की प्रक्रिया
- 2.3.15 भावतंत्र का परिष्कार

2.4 अतीन्द्रिय शक्ति–योगज उपलब्धियाँ एवं मन:प्रभाव
- 2.4.1 जैन दर्शन का दृष्टिकोण
- 2.4.2 सही दिशा
- 2.4.3 लब्धियों की विचित्र शक्ति

2.5 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.0 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों जैनदर्शन अध्यात्मवादी दर्शन है। अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि का मार्ग जैन जीवनशैली के आधार पर पुष्ट होता है। जैन जीवन शैली की विशेषता है कि इसमें आत्मवाद, पुनर्जन्मवाद, जातिस्मृति ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शक्ति, योगज उपलब्धियां एवं उन उपलब्धियों का मन पर प्रभाव इसका इसमें सहज व सुलभ अध्ययन किया जाता है प्रस्तुत पाठ का मुख्य उद्देश्य है कि लोग जैनदर्शन की इन तार्किकताओं से परिचित हो सकें।

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी निम्नलिखित उपशीर्षकों का विशेष अध्ययन करके 'जैनदर्शन और परामनोविज्ञान' के सम्बंध में विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 आत्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद

2.2.1 जैनदर्शन का दृष्टिकोण

जैनदर्शन आत्मवादी, कर्मवादी एवं पुनर्जन्मवादी दर्शन है। जैनदर्शन के अनुसार संसार का प्रत्येक प्राणी अपने आप में एक आत्मा है और कर्मों से बद्ध है, आवृत्त है। कर्म पुनर्जन्म का मूल कारण है। तत्त्व-मीमांसा की दृष्टि से आत्मा का अस्तित्व अनादिकालीन है, स्वतंत्र है और एक द्रव्य या वस्तु के रूप में है। आत्मा या जीव अस्तिकाय है। प्रत्येक आत्मा असंख्य ''प्रदेश'' का पिण्ड है। प्रदेश यानी अविभाज्य अंश — जिसके दो विभाग न हो सके। जैसे पुद्‌गल द्रव्य परमाणुओं के संघात से बनता है, वैसे जीव असंख्य प्रदेशों के संघात से नहीं बनता, किंतु आत्मा के असंख्य प्रदेश सदा संघात रूप में रहते हैं, कभी पृथक् नहीं होते। जितने स्थान का अवगाहन एक परमाणु करता है,उतने ही स्थान का अवगाहन एक प्रदेश करता है। आत्मा सावयवी या सप्रदेशी होते हुए भी ये आत्मा से कभी अलग नहीं होते, कभी टूटते नहीं।

प्रत्येक आत्मा-प्रदेश के साथ कर्म पुद्‌गलों का संयोग होता है और कर्म के द्वारा उत्पन्न प्रभाव से आत्मा एक जन्म से दूसरे जन्म में गमन करती रहती है। कर्म अपने आप में जड़ है, फिर भी आत्मा के साथ बद्ध होने से उनमें आत्मा को प्रभावित करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। कर्म को हम ''चैतसिक-भौतिक बल'' (Psycho-physical force) के रूप में मान सकते हैं। यही बल आत्मा को पुनर्जन्म लेने के लिए बाध्य करता है। अनादिकाल से प्रत्येक जीव (आत्मा) जन्म-मृत्यु की श्रृंखला से गुजरता हुआ अपना अस्तित्व बनाए रखता है। यही जैनदर्शन का आत्मवाद और पुनर्जन्मवाद का सिद्धांत है।

2.2.2 अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद

आस्तिक या अध्यात्मवादी एवं नास्तिक या भौतिकवादी दर्शन पुनर्जन्म के सम्बंध में भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। सभी अस्तित्ववादी या आस्तिक दर्शन आत्मा को चैतन्यशील, जड़ पदार्थ से सर्वथा स्वतंत्र एवं अनश्वर अर्थात् मृत्यु के पश्चात् भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने वाला, स्वीकार करते हैं, जबकि भौतिकवादी या नास्तिक दर्शन आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते तथा मृत्यु के पश्चात् उसके अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। न्यायशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के ग्रंथों में इन दोनों मतों के प्रतिपादकों के पारस्परिक वाद-विवाद की विस्तृत चर्चाएं उपलब्ध होती हैं। ये चर्चाएं तर्क, अनुमान आदि प्रमाण के आधार पर की गई हैं। दोनों पक्षों की ओर से अपने-अपने मत को स्थापित कर विपक्ष को खण्डित करने की चेष्टा की गई है।

पुनर्जन्म की अवहेलना करने वाले व्यक्तियों की प्राय: दो प्रधान शंकाएं सामने आती हैं —

1. यदि हमारा पूर्वभव होता, तो हमें उसकी कुछ-न-कुछ स्मृतियां होतीं।

2. यदि दूसरा जन्म होता, तो आत्मा की गति एवं आगति हम क्यों नहीं देख पाते?

पहली शंका का हम बाल्यजीवन की तुलना से ही समाधान कर सकते हैं। बचपन की घटनावलियां हमें स्मरण नहीं आतीं, तो क्या इसका अर्थ होगा कि हमारी शैशव-अवस्था हुई नहीं थी? एक-दो वर्ष के नव-शैशव की घटनाएं स्मरण नहीं होतीं, तो भी अपने बचपन में किसी को संदेह नहीं होता। वर्तमान जीवन की यह बात है, तब फिर पूर्वजन्म को हम इस युक्ति से कैसे हवा मे उड़ा सकते हैं? पूर्वजन्म की भी स्मृति हो सकती है, यदि उतनी शक्ति जागृत हो जाए। जिसे 'जाति-स्मृति ज्ञान' (पूर्वजन्म-स्मरण) हो जाता है, वह अनेक जन्मों की घटनाओं का साक्षात्कार कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूसरी शंका एक प्रकार से नहीं के समान है। आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता। उसके दो कारण हैं—

1. वह अमूर्त्त है, इसलिए दृष्टिगोचर नहीं होता।

2. वह सूक्ष्म है, इसलिए शरीर में प्रवेश करता हुआ या निकलता हुआ उपलब्ध नहीं होता।

नहीं दिखने मात्र से किसी वस्तु का अभाव नहीं होता। सूर्य के प्रकाश में नक्षत्र-गण नहीं देखा जाता। इससे इसका अभाव थोड़े ही माना जा सकता है? अंधकार में कुछ नहीं दिखता, क्या यह मान लिया जाए कि यहां कुछ भी नहीं है? ज्ञान-शक्ति की एकदेशीयता से किसी भी सत्-पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार न करना उचित नहीं होता।

अब हमें पुनर्जन्म की सामान्य स्थिति पर भी कुछ दृष्टिपात कर लेना चाहिए। दुनिया में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जो अत्यन्त असत् से सत् बन जाए—जिसका कोई भी अस्तित्व नहीं है, वह अपना अस्तित्व बना ले। अभाव से भाव एवं भाव से अभाव नहीं होता, तब फिर जन्म और मृत्यु, नाश और उत्पाद, यह क्या है? परिवर्तन। प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन होता है। परिवर्तन से पदार्थ एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था में चला जाता है, किंतु न तो वह सर्वथा नष्ट होता है और न सर्वथा उत्पन्न भी। दूसरे-दूसरे पदार्थों में भी परिवर्तन होता है, वह हमारे सामने है। प्राणियों में भी परिवर्तन होता है।वे जन्मते हैं, मरते हैं। जन्म का अर्थ अत्यन्त नयी वस्तु की उत्पत्ति नहीं और मृत्यु से जीव का अत्यन्त उच्छेद नहीं होता। केवल वैसा ही परिवर्तन है, जैसे यात्री एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में चले जाते हैं। यह एक ध्रुव सत्य है कि सत्ता से असत्ता एवं असत्ता से सत्ता कभी नहीं होती। परिवर्तन को जोड़ने वाली कड़ी आत्मा है। वह अन्वयी है। पूर्वजन्म और उत्तरजन्म—दोनों उसकी अवस्थाएं हैं। वह दोनों में एकरूप रहती है। अतएव अतीत और भविष्य की घटनावलियों की श्रृंखला जुड़ती है। शरीरशास्त्र के अनुसार सात वर्ष के बाद शरीर के पूर्व परमाणु च्युत हो जाते हैं, सब अवयव नये बन जाते हैं। इस सर्वांगीण परिवर्तन में आत्मा का लोप नहीं होता। तब फिर मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व कैसे मिट जाएगा?

2.2.3 जाति-स्मृति ज्ञान

जैनदर्शन की ज्ञानमीमांसा में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान—ये दोनों इन्द्रियज्ञान के भेद हैं। जाति-स्मृति का अर्थ है—पूर्वजन्म की स्मृति।

पूर्वजन्म की स्मृति (जाति-स्मृति) 'मति ज्ञान' का ही एक विशेष प्रकार है। इससे पिछले अनेक समनस्क जीवनों की घटनावलियां जानी जा सकती हैं। पूर्वजन्म में घटित घटना के समान घटना घटने पर वह पूर्व परिचित-सी लगती है। ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करने से चित्त की एकाग्रता और शुद्धि होने पर पूर्वजन्म की स्मृति उत्पन्न होती है। सब समनस्क जीवों को पूर्वजन्म की स्मृतिनहीं होती, इसकी कारण-मीमांसा करते हुए आचार्य ने लिखा है—

''जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो।
तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ न अप्पणो।।''

—व्यक्ति 'मृत्यु' और 'जन्म' की वेदना से सम्मूढ हो जाता है, इसलिए साधारणतया उसे जाति की स्मृति नहीं होती।

एक ही जीवन में दुःख-व्यग्रदशा (सम्मोह-दशा) में स्मृति-भ्रंश हो जाता है तब वैसी स्थिति में पूर्वजन्म की स्मृति लुप्त हो जाए, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

पूर्वजन्म के स्मृति-साधन मस्तिष्क आदि नहीं होते, फिर भी आत्मा के दृढ़-संस्कार और ज्ञान-बल से उसकी स्मृति हो आती है। इसलिए ज्ञान दो प्रकार का बतलाया है—इस जन्म का ज्ञान और अगले जन्म का ज्ञान।

जाति-स्मरण ज्ञान की अगणित घटनाएं जैन साहित्य में उपलब्ध है। इसमें विशेषतः मेघकुमार (जो मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बिसार का पुत्र था) को भगवान् महावीर द्वारा जाति-स्मरण ज्ञान कराने की घटना उल्लेखनीय है। मेघकुमार को अपने पिछले जन्म में हाथी के जन्म की स्मृति हुई। उससे प्रेरित हो मेघकुमार प्रतिबुद्ध हुए।

2.2.4 विभिन्न धर्म-दर्शनों में पुनर्जन्मवाद

प्रागैतिहासिक मानव सम्बंधी खोजों से ज्ञात हुआ है कि आज से लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व भी निअडंरथाल-मानव के मस्तिष्क में आत्मा की अमरता के बारे में कुछ अस्पष्ट से विचार अवश्य थे। मृतक को आदरपूर्वक खाने-पीने की अनेकानेक वस्तुओं सहित दफनाया जाता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुछ पाश्चात्य विद्वानों जैसे—वेबर, मैकडोनल व विंटरनिट्स आदि का मत है कि जन्म-जन्मांतर का ऋग्वेद में कहीं उल्लेख नहीं किया गया है वह इस विचार का प्रवेश हिंदू-धर्मदर्शन में परवर्ती युग में हुआ है। किंतु ऋग्वेद के अधिक गहन अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा की अमरता व जन्मांतर आदि के बारे में मंत्रभाग में बीज रूप में जो विचार हैं वे ही ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषदों में जाकर विकसित रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। पुराणों, स्मृतियों, रामायण व महाभारत आदि ग्रंथों में तो पुनर्जन्म संबंधी अनेकानेक विस्तृत उल्लेख मिलते ही हैं। बौद्ध धर्म में भी पुनर्जन्म के विषय में 'जातक' साहित्य उपलब्ध है।

विश्व के अन्य दो प्रमुख धर्मों—ईसाई व इस्लाम के अनुयायी प्राय: पुनर्जन्म में आस्था नहीं रखते, किंतु यह उल्लेखनीय है कि बाइबिल व कुरान आदि ग्रंथों में पुनर्जन्म-समर्थक विचारों की ओर अनेक आधुनिक विद्वानों ने ध्यान आकर्षित करते हुए यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि वास्तव में ये धर्म भी पुनर्जन्म के विचार के विरोधी नहीं हैं।

अपनी एक पुस्तिका 'द केस फार रिइंकारनेशन' में लेखक श्री लेस्ली डी वेदरहेड ने ईसाई मत के संदर्भ में इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ईसा ने यद्यपि पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादन नहीं किया है, किंतु साथ ही उन्होंने कभी इसका विरोध भी नहीं किया। वस्तुत: उनके समय में यहूदी धर्म में यह विचारधारा पहले से ही प्रचलित थी। प्राचीन चर्च पुनर्जन्म का समर्थक था—ईसा से 553 वर्ष बाद 'कांस्टनटिपोल' की सभा के बाद ही 2 के विरोध में 3 मतों से इसको अस्वीकार किया गया। ओरिजेन, संत आगस्तीन व असीसी के संत फ्रान्सिस ने फिर भी अपने ग्रंथों में इस विचार का समर्थन ही किया है।

इसी तरह, कुरान की निम्न आयतों में भी पुनर्जन्म के विचार का समर्थन देखा गया है: "क्यों कुफ्र करते हो साथ अल्लाह के और थे तुम। मुर्दे पस जिलाया तुमको, फिर मुर्दा करेगा तुमको, फिर जिलाएगा तुमको, फिर उसके फिर जाओगे।" (सू.रू. 3, आयत 7)

'अल्लाह वह है जिसने पैदा किया तुमको, रिज्झ दिया तुमको, फिर जिलायेगा तुमको।" (सू.र. 3, रू. 4 आयत 13)

श्री ई.डी. वाकर ने अपनी पुस्तक 'रिइंकारनेशन' में लिखा है, "अरब दार्शनिकों का यहएक प्रिय सिद्धांत था और अनेक मुसलमान लेखकों की पुस्तकों में इसका उल्लेख अभी भी देखा जा सकता है।"

प्राचीन यूनानी विचारक-विद्वान पाइथागोरस, सुकरात, प्लेटो, प्लूटार्क, प्लाटीनस आदि के विचारों में भी हमें 'पुनर्जन्म' की आस्था की स्पष्ट झलक मिलती है। पाश्चात्य विद्वानों ने पुनर्जन्म के लिए रिबर्थ, मैटमसाइकोसिस, ट्रांसमाइग्रेशन, पोलिजेनिसिस व रिएम्बाडीमेंट आदि विभिन्न शब्दों का कभी-कभी एक ही—कभी कुछ भिन्न-से अर्थों में प्रयोग किया है। पुनजंन्म में विश्वासप्रकट करने वाले अन्य अनेक दार्शनिकों, लेखकों व कवियों में स्पिनोजा, रूसो, शैनिंग, इमर्सन, ड्राइडन, वर्ड्सवर्थ, शैली व बाऊनिंग आदि की गणना की जा सकती है। जोसेफहीड व क्रेंसटन ने सवा तीन सौ पृष्ठ की एक पुस्तक 'रिइंकारनेशन' में विश्व के विभिन्न धर्मों में व्याप्त दार्शनिकों, कवियों व वैज्ञानिकों आदि के पुनर्जन्म संबंधी विचारों का संकलन प्रस्तुत किया है।

वस्तुत: इतिहास के प्रत्येक युग में विश्व-भर के सभी दर्शनों-धर्मों में व जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शीर्षस्थ स्थान रखने वाले व्यक्तियों के विचारों में पुनर्जन्म को महत्त्व दिया गया है।

तार्किक आधारों पर खण्डन-मण्डन का क्रम प्राचीन काल में ही नहीं, आधुनिक दार्शनिकों में भी चला है। आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक डॉ. मेकटेगार्ट जहां पुनर्जन्म के पक्षधर हैं, वहां पिंगल-पेटिसन आदि उनके विपक्षी हैं। डॉ. टी.जी. कलघटगी ने तो इसके तार्किक प्रामाण्य को असंभव और अनपेक्षित माना है। उनके अनुसार यह विशिष्ट द्रष्टाओं के परम ज्ञान और अनुभूति के द्वारा व्यक्त सिद्धांत है। पर डॉ. मेकटेगार्ड ने पुनर्जन्म की वास्तविकता को तार्किक आधारों पर प्रमाणित करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार यदि यह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान जीवन के पूर्व और पश्चात् भी जीवन है, तो पूर्वजन्म के साथ अनश्वरता का सिद्धांत भी अपने आप सिद्ध हो जाता है। पुनर्जन्म के विपक्षियों द्वारा सबसे प्रबल तर्क यही दिया गया है कि पूर्वजन्म की कोई स्मृति हमें नहीं है। पिंगल-पेटिसन ने डॉ. मेकटेगार्ट की इस मान्यता को कि—"आत्मा एक शाश्वत द्रव्य है जिसमें त्रैकालिक अस्तित्व सदा अमर बना रहता है", समर्थ तर्काधारित मानने से इसलिए इनकार किया है कि पूर्वजन्म की स्मृति के अभाव में आत्मा की सततता की अनुभूति नहीं होती। यदिपूर्वजन्म की स्मृतिवास्तविक तथ्य के रूप में प्रमाणित हो जाती है, तो पूनर्जन्म का सिद्धांत स्वत: सिद्ध हो जाता है। डॉ. कलघटगी ने पूर्वजन्म की स्मृति के प्रमाण के पुनर्जन्म की मान्यता को सिद्ध करने के लिए यथार्थ माना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पूर्वजन्म स्मृति वास्तविक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अस्तित्ववादी (आस्तिक) दर्शन के लिए एक ऐसा सबल एवं प्रत्यक्ष प्रमाण बन जाता है जिसके लिए फिर तर्क या अनुमान की आवश्यकता नहीं रह जाती।

वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर 'पुनर्जन्मवाद' का प्रामाण्य दो बातों पर आधारित हो जाता है— 1. पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाएं वास्तविक हैं या नहीं, इसे प्रमाणित करना। 2. यदि ये घटनाएं वस्तुत: ही घटित हैं, तो इन घटनाओं की व्याख्या करने में पुनर्जन्मवाद की परिकल्पना ही केवल सक्षम है, इसे प्रमाणित करना। यदि इन दोनों बातों को सिद्ध कर दिया जाता है, तो आत्मा का स्वतंत्र एवं शाश्वत अस्तित्व एक वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्थित हो जाता है।

2.2.5 परामनोविज्ञान

पुनर्जन्म के विषय में वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य परामनोविज्ञान के क्षेत्र में किया गया है। इससे पूर्व कि परामनोविज्ञान के क्षेत्र में इस सम्बंध में क्या कार्य हुआ उसकी चर्चा करें, हम परामनोविज्ञान के इतिहास के विषय में पहले संक्षिप्त चर्चा कर लें ताकि वैज्ञानिक क्षेत्र में पुनर्जन्म, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शक्ति आदि परासामान्य विषयों के अनुसंधान के क्रमिक विकास से हम परिचित हो सकें।

परासामान्य घटनाओं के वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रारंभ ''प्रेतात्मा'' या ''भूतावेश'' सम्बंधी घटनाओं के अध्ययन से होता है। सन् 1957 में The Book of the Spirits का प्रकाशन हुआ।

प्रेतात्माओं के अस्तित्व, उनसे वार्तालाप करने की संभावना आदि आस्थाओं के आधार पर अनेक नैतिक मान्यताओं व आचारों का प्रतिपादन करते हुए एक नये आंदोलन—प्रैतिकवाद (स्प्रिच्युअलिज्म) का प्रादुर्भाव हुआ और शनै: शनै: इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई।

प्रेतत्व संबंधी प्रघटनाओं के विस्तार, प्रभाव व उनके प्रति जागृत अभिरुचियों ने अनेक दार्शनिकों, विद्वानों व वैज्ञानिकों को झकझोर डाला। इन सभी घटनाओं के पीछे वास्तव में सत्य क्या है व उसे कैसे जाना जा सकता है? क्या कोई ऐसा प्रयास किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के विवाद-रहित, सुनिश्चित उत्तर सर्व-सुलभ हो सकें?

लगभग इसी समय विद्वानों, विचारकों व वैज्ञानिकों को कुछ अन्य मिलती-जुलती-सी प्रघटनाओं की अव्याख्येयता की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इन प्रघटनाओं का सम्बंध मूलत: मन की एक विशिष्ट अवस्था से था जिसे आज 'सम्मोहन' (हिप्नोटिज्म) कहा जाता है।

वैसे तो 1779 में मैस्मर द्वारा रोगियों के उपचार के लिए इस पर आधारित एक नई पद्धति का आविष्कार कर लिया गया था। उसके अनुसार ''ब्राह्माण्डीय मण्डल, पृथ्वी व जीवित प्राणी परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।'' यह प्रभव एक सर्वव्यापी द्रव्य के माध्यम से पड़ता है। यह द्रव मनुष्य के शरीर में स्नायु तत्त्वों द्वारा प्रसारित रहता है जो मनुष्य के शरीर को चुम्बकीय विशेषताएं प्रदान करता है। मैस्मर का विचार था कि यदि इस द्रव को निश्चित प्रकार से निर्दिष्ट किया जाए, तो उससे सभी प्रकार के रोगियों का उपचार संभव है।

इस समय मैस्मर के उपचार की धूम मची हुई थी। पर इस बात पर विवाद उत्पन्न हो गया कि उपचारों की प्रभावोत्पादकता किसी जैविक चुम्बकत्व (एनीमल मैगनेटिज्म) के कारण है अथवा मानसिक कल्पनाशक्ति के कारण। दोनों मतों के बीच विवाद आज तक पूर्णत: सुलझा नहीं है।

मैस्मर के रोगी यद्यपि हिस्टीरिया के लक्षण यथा, संज्ञाशून्यता, ऐंठन व अतिउत्साह आदि प्रदर्शित करते रहते थे, लेकिन उनमें अभी तक कोई परासामान्य लक्षण नहीं उभरा था। 1874 के करीब मैस्मर का एक शिष्य मारक्विस डी. प्यूसेगर एक बार कुछ किसानों का उपचार कर रहा है। उपचार के दौरान उसने देखा कि उसका एक 23 वर्षीय किसान एक विचित्र प्रकार की निद्रा में लीन होकर हंसने, बोलने व अन्य दैनन्दिनी क्रियाओं को पूर्व की अपेक्षा और भी अधिक बुद्धिमत्ता से सम्पन्न करने लगा है। और, सबसे विचित्र बात तो यह थी कि उसने स्वयं ही अपने रोग का पूरा विवरण और उपचार बताया। धीरे-धीरे अन्य रोगी भी ऐसा करने लगे। अब वे स्वयं अपने चिकित्सक ही नहीं हो गये, वे उपचारकर्त्ता के विचारों को भी पढ़ने लगे। छुपाई हुई वस्तुओं को ढूंढ निकालने लगे— यहां तक कि सही-सही भविष्यवाणियां भी करने लगे। अन्य कई और व्यक्ति प्यूसेगर की विधि से रोगियों को इसी तरह की स्थिति में, जिसे बाद में 'सोमनाम्ब्यूलिज्म' (निंद्राचार) कहा गया, लाने लगे। एक व्यक्ति ने इस अवस्था में पेट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से सुनने व अंगुलियों के पोरों से देखने की शक्ति प्रदर्शित की। जागृत 'सोमनाम्ब्यूलिज्म' की खोज बड़ी आकर्षक रही। शीघ्र ही स्थान-स्थान पर इस तरह के प्रयोग किये जाने लगें कुछ चिकित्सकों ने 'चुम्बकीय-निद्रा' के दौरान रोगियों पर वेदनारहित शल्य-चिकित्सा भी की। आज तो यह आम बात है किंतु उस समय इन बातों से वैज्ञानिक क्षेत्रों में बड़ी उथल-पुथल हुई।

1841 के लगभग मैनचेस्टर के एक डॉ. जेम्स ब्रेड ने बहुत प्रयोग करके यह विचार रखा कि मैगनेटिज्म, सोमनाम्ब्यूलिज्म व सुझाव-ग्रहणशीलता तीनों में मन की एक समान विशिष्ट अवस्था विद्यमान रहती है। ब्रेड ने ही सर्वप्रथम 'हिप्नोटिज्म' शब्द का प्रयोग प्रारंभ किया।

उन्नीसवी शताब्दी की ही तीसरी प्रमुख विचारात्मक शक्ति जिसे हम 'परासामान्य' के अध्ययन की मुख्य प्रेरक शक्तियों में से एक मान सकते हैं वह है भौतिक विद्वानों द्वारा विकसित विश्व-संदर्भ (वर्ल्ड परस्पेक्टिव)। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त व गति के तीन नियमों के आधार पर भौतिक शास्त्रियों व गणितज्ञों को शीघ्र ही यह लगने लगा कि सृष्टि का हर रहस्य उन्होंने उद्घाटित कर लिया है। सम्पूर्ण सृष्टि एक विशाल यंत्र या मशीन की भांति है। उसके मूल तत्त्व हैं छोटे-छोटे अणु, विलियर्ड गेंद की भांति एकदम ठोस। ये अणु एक सर्वव्यापी ईथर में चक्राकार गति से घूमते रहते हैं। अणुओं की सभी गतियां पूर्णत: कार्यकारण के नियमों से नियमित रहती हैं। भौतिक-गणितीय संदर्भ में कुछ भी विसंगत, अव्यक्त, अव्यवस्थित या अतार्किक नहीं था। जगत् में सभी कुछ व्याख्येय था। प्रकृति के सभी नियम स्पष्ट व अटूट हैं। सभी कुछ एन्द्रियानुभविक (इम्पीरिकल) था। बिना इन्द्रियों के किसी अन्य भविष्य- बोध आदि की बातें केवल मूर्खतापूर्ण बकवास ही हो सकती थी। पर सामान्य को विज्ञान के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं था। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी तक विज्ञान के विविध अन्वेषकों ने यह लगभग सिद्ध ही कर दिया था कि सारी सृष्टि सम्पूर्ण प्रकृति मात्र कुछ भौतिक शक्तियों की ही एक व्यवस्था है।

अस्तु, एक ओर प्रैतिकवाद के उदय के साथ ही आत्मा, प्रेतात्मा, अतिजीवन, मृतात्मा-आह्वान व उनसे संदेह-प्राप्ति आदि से संबंधित घटनाओं की बाढ़ और उसके साथ ही साथ जैविक चुम्बकत्व, सम्मोहन, सुझावग्रहणशीलता आदि के प्रयोग में अभिव्यक्त अतीन्द्रिय बोध के लगभग अकाट्य प्रमाणों का अभ्युदय, इन दोनों का विज्ञान की भौतिकवादी मूल स्थापनाओं से सीधा टकरा, परिणामस्वरूप जगह-जगह संवेदनशील विचारकों को यह सोचने को बाध्य होना कि यथार्थ को निश्चित रूप से कैसे जाना जाए। मान्यताओं में विवाद चाहे जितना भीषण रहा हो, इस बारे में अब लगभग मतैक्य था कि विवाद का निपटारा किस मार्ग से संभव है। यहमार्ग है—प्राक्कल्पनाओं (हाइपोथीसिस), प्रेक्षणों (आवजर्वेशन) व प्रयोगों (एक्सपेरीमेन्ट्स) का यानी विज्ञान का। परिणामस्वरूप हुआ—एक नवीन विज्ञान का उद्भव—सभी प्रकार की परासामान्य प्रघटनाओं का पूर्वाग्रह-मुक्त दृष्टि से वैज्ञानिक विधियों द्वारा अध्ययन करने वाले विज्ञान—परामनोविज्ञान का।

1934 में ही कुछ ऐसे प्रयोग किए गए, जिनसे कि 'मन:प्रभाव' (साइकोकाइनेसिस) यानी मन द्वारा पदार्थ को प्रमाणित करने की क्षमता की जांच की जा सके। अनेक वर्षों तक किए गए प्रयोगों के आधार पर यह भी लगभग सिद्ध कर दिया गया कि व्यक्तियों में मन:प्रभाव की शक्ति भी होती है।

1948 में जब डॉ. राइन ने 'रिच ऑफ द् माइंड' नामक पुस्तक प्रकाशित की तब तक परामनोविज्ञान स्पष्टत: एक विज्ञान के रूप में उभरकर आने लगा था। इसका अपना ही एक विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र उभरा जिस पर अन्य किसी विज्ञान का दावा नहीं था। इस क्षेत्र की स्पष्ट सीमाएं भी थीं और इसकी अध्ययन-वस्तु को वर्गीकृत भी किया जा सकता था। विभिन्न प्रकार की वर्गीकृत श्रेणियों के अध्ययन हेतु उपयुक्त पद्धति-विज्ञान (मेथडोलॉजी) के भी विकसित कर लिया गया है।

1962 में डॉ. राइन ने ड्यूक विश्वविद्यालय से अलग एक प्रतिष्ठान की स्थापना करके उसके तत्त्वा- वधान में कार्य करना प्रारंभ किया। इस प्रतिष्ठान को नाम दिया गया 'फाउंडेशन फॉर रिसर्च इन्टू द् नेचर ऑव मैन'।

इस शताब्दी के छठे दशक में अमेरिका में व्यावसायिक परामनोवैज्ञानिक शोधकर्त्ताओं के एक संगठन 'पैरासाइकोलॉजीशन एसोसिएशन' की स्थापना की गई। इस संगठन ने तीन बार यह प्रयत्न किया कि अमेरिका में विज्ञान की सबसे बड़ी संस्था 'अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द् एडवान्समेंट ऑव साइंस' द्वारा परामनोविज्ञान को एक विज्ञान के रूप में मान्यता प्रदान की जाए, लेकिन इस दावे को सदा अस्वीकार किया गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1969 में पैरासाइकोलॉजिकल एसोसिएशन ने मान्यता-प्राप्ति हेतु पुन: प्रयत्न किया। अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द् एडवांसमेंट ऑव साइंस जो अमेरिका का सर्वोच्च वैज्ञानिक प्रतिष्ठान है के द्वारा परामनोविज्ञान को मान्यता मिल गई।

आज विश्व के लगभग सभी देशों में सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा परामनोवैज्ञानिक शोध कार्य किया जा रहा है।

2.2.6 पुनर्जन्म पर परामनोविज्ञान में अनुसंधान : इतिहास

पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में भी श्री फील्डिंग हॉल ने उनके द्वारा वर्मा में अध्ययन किये गये 6 पुनर्जन्म वृत्तांतों को प्रकाशित किया था, किंतु गंभीर एवं व्यवस्थित ढंग से पुनर्जन्म की साक्षियों की जांच प्रारंभ करने का श्रेय भारत के रायबहादुर श्यामसुंदरलाल को, जो कि किशनगढ़ (राजस्थान) के दीवान रहे, दिया जा सकता है। सन् 1922-23 में आपने अपने एक साथी श्री रामगोपाल मिश्र के सहयोग से पुनर्जन्म के वृत्तांतों की खोजबीन हेतु एक 'फार्मर लाइफ रिसर्च एसोसिएशन' का गठन किया।

पाश्चात्य देशों में भी यदा-कदा उभर आने वाली पूर्वजन्म की स्मृतियों के वृत्तांतों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होने लगा। श्री गेब्रियल डिलेनी ने 1924 में अपने परिचित व स्वयं के अध्ययन किये हुए कुछ पुनर्जन्म की स्मृतियों के वृत्तांत एक पुस्तक में प्रकाशित किये। कुछ वर्ष पश्चात् एक अन्य विद्वान श्री रॉल्फ शिर्ले ने कुछ डिलेनी द्वारा वर्णित व कुछ स्वयं अध्ययन किये हुए पूर्वजन्म की स्मृतियों के विवरण 'द् प्राब्लम ऑफ रिबर्थ' नामक पुस्तक में प्रकाशित किये।

भारत में केकयी नन्दन-सहाय, एस.सी. बोस, हेमेन्द्र नाथ बनर्जी, कीर्ति स्वरूप रावत आदि द्वारा इस दिशा में विशेष प्रयत्न किए गए।

सौभाग्य से पिछले 15 वर्षों से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। विश्व के वैज्ञानिकों का ध्यान काफी अर्से से इन घटनाओं की ओर खिंच चुका था। विश्व में अनेक स्थानों पर परामनोविज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति से शोध कार्य करने के लिए जो शोध-संस्थान स्थापित हुए हैं, उनमें इन पूर्व-जन्म-स्मृति घटनाओं का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जा रहा है। पैंसिलवेनिया विश्वविद्यालय, क्लार्क विश्वविद्यालय (बोरसेस्टर मेसेच्यूसेट्स), स्टेण्डफोर्ड विश्वविद्यालय, हारवार्ड विश्वविद्यालय, ड्यूक विश्वविद्यालय, लिंडन विश्वविद्यालय, उट्रेस्ट विश्वविद्यालय (हॉलेण्ड), केम्ब्रीज विश्वविद्यालय, फ्राईबर्ग विश्वविद्यालय (प. जर्मनी), पिट्सवर्ग विश्वविद्यालय, सेंट लोसफ्ज कॉलेज (फिलाडेलफिया), वेलेण्ड कॉलेज (प्लेनव्यू, टैक्सास), नेशनल लिटोरल विश्वविद्यालय (रोजारियो, आर्जेन्टीना), लेनिनग्राड स्टेट विश्वविद्यालय (यू.एस.एस.आर.) किंग्स कॉलेज विश्वविद्यालय (हेलिफैक्स) तथा विर्जीनिया विश्वविद्यालय के अन्तर्गत विश्व के बीसों चोटी के वैज्ञानिक, मनश्चिकित्सा एवं मनोविज्ञानविद् परामनोविज्ञान के क्षेत्र में शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य कर रहे हैं।

पूर्व-जन्म-स्मृति या ऐसी अन्य परा-सामान्य घटनाओं का सर्वेक्षण, सत्यता की जांच, तथ्यों का विश्लेषण, संबंधित शाक्षियों का परीक्षण आदि का निष्पक्ष एवं वस्तु-सापेक्ष (ऑब्जेक्टिव) अध्ययन किया जा रहा है।

उदाहरणस्वरूप हम वर्जीनिया विश्वविद्यालय के अंतर्गत चल रहे कार्य की चर्चा यहां कर रहे हैं। विर्जीनिया विश्वविद्यालय के अंतर्गत ''स्कूल ऑफ मेडिसिन'' में सायक्याट्री विभाग का ''परामनोविज्ञान संभाग'' व्यवस्थित रूप से इस शोध कार्य में लगा हुआ है। डॉ. ईयान स्टीवनसन, एम.डी. स्वयं एक सुप्रसिद्ध मनश्चिकित्सक हैं तथा ''कार्लसन प्रोफेसर ऑफ सायक्याट्री'' के रूप में इस विभाग का निदेशन कर रहे हैं। डॉ. स्टीवनसन एवं उनके निदेशन में शोधरत दल विश्व के विभिन्न देशों में घटित पूर्व-जन्म-स्मृति की घटनाओं के सर्वांगीण अध्ययन एवं शोध में संलग्न हैं। भारत के अतिरिक्त सिलोन, के अभिनव विश्लेषणों और सिद्धांतों के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उनका समग्र अध्ययन एक गहरी और पैनी दृष्टि लिए हुए है।बर्मा, थाईलैण्ड, लेबनान, ब्राजील, अलास्का आदि देशों से उक्त प्रकार की घटनाओं की जानकारी उन्हें प्राप्त हुई हैं तथा इस सिलसिले में अनेक बार इन देशों की यात्राएं की हैं। डॉ. स्टीवनसन मनोविज्ञान (सायकोलोजी) के अभिनव विश्लेषणों और सिद्धांतों के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उनका समग्र अध्ययन एक गहरी और पैनी दृष्टि लिए हुए है। घटनाओं के जांच-कार्य में उनमें वकील का चातुर्य और तर्क की प्रबलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। विभिन्न देशों की संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल आदि से संबंधित अपेक्षित ज्ञान की मौलिक एवं पूर्ण जानकारी भी वे रखते हैं।

डॉ. स्टीवनसन द्वारा लिखित ''दी एविडेंस फार सरवाइवल फ्रोम क्लेइम्ड मेमोरीज ऑफ फोर्मर इनकारनेशनस'' सन् 1960 में जर्नल ऑफ अमेरिकन सोसायटी ऑफ सायकिकल रिसर्च में प्रकाशित होकर 1961 में पुस्तक-रूप में इंग्लैण्ड में प्रकाशित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हुआ। इसके बाद सन् 1966 में बीस घटनाओं के सम्पूर्ण एवं समीक्षात्मक अध्ययन पर आधारित उनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ''ट्वेण्डी केसेज राजेस्टीव ऑफ रिइनकारनेशन'' प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् भी समय-समय पर इस विषय में उनके लेख एवं पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं। इस दिशा में निरंतर कार्य हो रहा है। घटनाओं में भी काफी वृद्धि हुई है। सन् 1969-70 में दो वर्षों के अन्दर ही भारत में 108 एवं बर्मा में 80 घटनाएं प्रकाश में आई। उदाहरणस्वरूप ब्राजील की एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है—

2.2.7 ब्राजील में अढाई-वर्ष की बालिका को पूर्व-जन्म की स्मृति

सन् 1918 अगस्त की 14 तारीख को ब्राजील देश में डोमा फेलिसियानो नामक एक छोटे गांव में रहने वाले एक परिवार में एक बालिका का जन्म हुआ। पिता एफ.व्ही. लौरेंज तथा माता ईदा लौरेंज ने उसका नाम मार्टा रखा। मार्टा जब अढाई वर्ष की हुई थी—एक दिन वह अपनी बहिन लीला के साथ घर से थोड़ी दूर एक नाले पर गई थी। यहां से वापिस घर लौटते समय उसने लीला से कहा—''मुझे गोद में उठाकर ले चलो। जब पहलू तूं छोटी थी और मैं बड़ी थी तब मैं तुझे गोद में उठाकर घुमाती थी।'' छोटी बहिन के मुंह से इस प्रकार की बात सुनकर बड़ी बहिन को हंसी आ गई। उसने पूछा—तुम बड़ी कब थी?

मार्टा ने कहा—उस समय मैं घर में नहीं रहती थी। मेरा घर यहां से काफी दूर था। वहां अनेक गाय, बैल आदि हमारे घर पाले हुए थे तथा नारंगी के पेड़ थे। वहां कुछ बकरे जैसे पशु भी पाले हुए थे पर वे बकरे नहीं थे।

मार्टा ने तुरन्त उत्तर दिया—उस समय आप हमारे माता-पिता नहीं थे, वे दूसरे थे।

छोटी बच्ची की पागल की-सी बातें सुनकर उसकी एक अन्य बहिन ने मजाक में ही मार्टा से पूछा तब फिर तुम्हारे घर एक छोटी हब्सी नौकरानी (लड़की) भी थी, जैसे अपने घर में अभी है!

मार्टा इस मजाक से बिल्कुल भी बेचैन नही हुई। उसने कहा—ना, हमारे घर में जो हब्शी नौकरानी थी, काफी बड़ी थी। एक रसोईयन भी हब्शी थी तथा वहां दूसरा एक हब्शी लड़का भी काम करता था। एक बार वह लड़का बेचारा पानी लाना भूल गया था, तब मेरे पिता ने उसे बहुत पीटा था।

पिता (एफ.व्ही. लौरेंज) बोले—मेरी प्यारी बेटी, मैंने तो कभी हब्शी बच्चे को नहीं पीटा है।

मार्टा बोली—पर वह तो मेरे दूसरे पिता थे। ज्योंही उस लड़के को पिताजी ने पीटना शुरू किया वह लड़का मुझे बुलाता हुआ चिल्लाने लगा—अरे सिह्ना जिह्ना! मुझे बचाओ। मैंने तुरन्त पिताजी से निवेदन किया—उसे छोड़ दो और फिर वह पानी भरने चला गया।

एफ.व्ही. लौरेंज ने पूछा—तो क्या वह नाले पर पानी भरने चला गया?

मार्टा ने कहा—ना पिताजी! वहां आसपास में कहीं नाला नहीं था, वह कुंए से पानी लाता था। पिता ने पूछा, बेटी वह सिह्ना जिह्ना कौन थी। मार्टा ने कहा—वह तो मैं ही थी। मेरा दूसरा नाम भी था। मुझे मारिया भी कहते थे और एक नाम और भी था जो कि मुझे याद नहीं है।

इसके पश्चात् तो मार्टा ने और भी अनेक बातें अपने पूर्व जन्म के संबंध में बताई। उसने यह भी बताया कि ''मेरी इस जन्म की माता ईदा लौरेंज पूर्व जन्म में मेरी सखी थी। मैं (सिह्ना-जिह्ना) अपनी सखी के घर आती-जाती रहती थी और इस दौरान मैं लीला को खिलाती थी तथा उसे गोद में उठाकर घुमाती थी। एफ.व्ही. लौरेंज के पुत्र कार्लोस की मैं (सिह्ना-जिह्ना) धर्म-माता बनी थी। जब ईदा मेरे आती तो मैं उसके लिए कॉफी बनाती और फोनोग्राफ बजाती। मेरे पूर्वजन्म के पिता आयु में एफ.व्ही. लौरेंज से बड़े थे। लम्बी दाढ़ी रखते थे तथा बड़े कर्कश आवाज में बोलते थे। मेरी शादी नहीं हुई थी। पर मैं जिस पुरुष से प्रेम करती थी, मेरे पिताजी उसे पसन्द नहीं करते थे। उस पुरुष ने आत्महत्या कर ली। इसके बाद एक दूसरे व्यक्ति से मेरा प्रेम हो गया। उसे भी मेरे पिताजी पसन्दनहीं करते थे। इससे मैं बहुत दु:खी और निराश हो गई। मेरे पिता ने मुझे खुश करने के लिए समुद्रतटीय प्रदेश में घूमने-फिरने का कार्यक्रम बनाया, जहां मैंने अपने शरीर के प्रति लापरवाह होकर ठण्डी और नम हवा में अपर्याप्त वस्त्रों के साथ घूमना शुरू किया और उसके परिणामस्वरूप मुझे टी.बी. की बीमारी हो गई। इस बीमारी के बाद कुछ ही महीनों में मेरी मृत्यु हो गई। जब मैं मृत्यु-शैय्या पर थी, मेरी प्यारी सखी ईदा मेरे पास थी। उस समय मैंने ईदा से बताया कि मैं जान-बूझकर बीमार हुई थी, मैं मरना चाहती थी। मरने के बाद मैं तुम्हारी पुत्री के रूप में पुन: जन्म

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लूंगी और बोलने जितनी उम्र होने पर पूर्व जन्म की बातें तुम्हें बताऊंगी, जिससे तुम्हें विश्वास हो जाएगा कि मैं (सिह्ना-जिह्ना) ही तुम्हारी पुत्री बनी हूं।''

सिह्ना-जिह्ना की मृत्यु सन् 1917 के अक्टूबर में हुई थी, जिसके लगभग दस महीने पश्चात् अर्थात् 14 अगस्त 1918 को मार्टा का जन्म हुआ था। मार्टा ने लगभग 120 बातें अपने पूर्व जन्म के संबंध में बताई जिनमें से कुछ बातें तो ईदा (मार्टा की माता) और एफ.व्ही. लौरेंज जानते थे। कुछ बातें ऐसी भी थी जिनका इनको पता नहीं था पर उसकी पुष्टि सिह्ना-जिह्ना के अन्य पारिवारिक सदस्यों ने की। सन् 1962 में जब डॉ. ईयान स्टीवनसन ने मार्टा से भेंट की उस समय भी उसे अपने पूर्व जन्म की अनेक बातें याद थीं।

ऐसी एक दो या दस बीस नही, बारह सौ से भी अधिक घटनाएं विश्वभर में विभिन्न देशों में प्रकाश में आई हैं।

डॉ. कलघटगी ने भी एक सन्त सद्गुरु केशवदासजी के द्वारा बताई गई दो घटनाओं का उल्लेख किया है। एक में एक इटली के डेन्टिस्ट डॉ. गेस्टोन द्वारा अपना पूर्व जन्म भारत में कांचीपुरम स्थित किसी मंदिर के पुजारी के रूप में बताया तथा मंदिर की सम्पूर्ण पूजा-विधि का ज्ञान होने का दावा किया तथा दूसरी घटना में न्यूयार्क में एक नीग्रो व्यक्ति ने स्वामी केशवदासजी की सभा में अपनी पूर्व जन्म की स्मृति के आधार पर ''ललित सहस्रनाम'' कण्ठस्थ रूप से सुनाना प्रारंभ किया तथा उसने भी अपना पूर्व जन्म भारत में बताया।

अहमदाबाद में एक बालक मनोज द्वारा अपने पूर्व जन्म के समग्र परिवार को पहिचानने की बात सामने आई। मनोज ने, जो कि सातेक वर्ष का बालक था, अपने पूर्व जन्म की पत्नी तथा दो बच्चों के विषय में जानकारी दी तथा उन्हें इस जन्म में पहिचान लिया। मनोज के शरीर पर गोली के चिह्न भी थे, जो उसके बयान के अनुसार उसके पिछले जन्म में लगी थी। मनोज का एक हाथ बड़े आदमी की तरह पूरी तरह मोटा और विकसित था तथा दूसरा हाथ साधारण बच्चे की तरह था।

जयपुर की एक लड़की अमिता (उम्र लगभग 10 वर्ष) अपनी छोटी उम्र से ही अपने को महारानी गायत्रीदेवी कॉलेज की एम.ए. की पोलिटिकल साइन्स विषय की छात्रा बताती थी। उसने अपने पुराने घर और परिवार को खोज निकाला तथा छत पर से गिरने के कारण अपनी मृत्यु का बयान दिया, जो जांच करने पर सही पाया गया।

पूर्वजन्म संबंधी अनेक ऐसे वृत्तांत पाये गये हैं जिनमें लिंग-परिवर्तन वर्णित किया गया है। ब्राजील केपोलो लारेंज का यह वृत्तांत इसी तरह के वृत्तांतों में से एक है

''मां, अब तुम मुझे अपने पुत्र के रूप मे लो, अब मैं तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लूंगी।'' श्रीमती इडा लोरेंज नामक एक महिला को तीन बार मृतात्मा-आह्वान संबंधी बैठकों (सियान्स) में यह संदेश मिला। संदेश देने वाली कोई और नहीं, उन्हीं की पुत्री इमिलिया की कथित मृतात्मा थी।

इमिलिया लोरेंज एफ.बी. लोरेंज व इडा लोरेंज की दूसरी संतान व सबसे बड़ी पुत्री थी। उसका जन्म 4 फरवरी 1902 को हुआ था। उसका नाम 'इमिलिया', उससे पूर्व उत्पन्न एक पुत्र—जिसकी कुछ वर्ष पूर्व शैशवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी—'इमिलियो' पर रखा गया था।

सभी प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात हुआ कि अपने छोटे-से जीवन में इमिलिया सदा अत्यन्त दु:खी रही। वह हमेशा स्वयं को इस बात के लिए ही कोसती रही कि वह लड़की क्यों है, लड़का क्यों नहीं। अनेक बार उसने अपने भाई-बहिनों से कहा कि यदि वास्तव में पुनर्जन्म होता है तो वह अगले जन्म में पुरुष ही होगी। उससे विवाह हेतु अनेक प्रस्ताव आये, लेकिन उसने सभी को ठुकरा दिया। हीन व निराशापूर्ण भावनाओं से ग्रसित उसने अनेक बार आत्महत्या करने का प्रयास किया। एक बार विष खा भी लिया, लेकिन उसे बहुत-सा दूध पिलाकर बचा लिया गया। किंतु अंत में 12 अक्टूबर, 1921 को उसने एक बहुत तेज जहर लेकर आखिर अपने जीवन का अंत कर ही दिया।

इमिलिया की मृत्यु से लगभग डेढ़ वर्ष बाद 3 फरवरी, 1923 को श्रीमती लोरेंज ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम भी उन्होंने इमिलिया ही रखा, लेकिन बाद में सब उसे 'पोलो' कहकर ही पुकारने लगे।

मृत इमिलिया व पोलो की अनेक प्रवृत्तियों व रुचियों में समानताएं पाइ गईं। इमिलिया को यात्रा करने का बड़ा शौक था। वह अक्सर ही कहा करती थी कि यदि वह पुरुष होती तो खूब नये-नये स्थानों की सैर करती। (उस जमाने में वहां स्त्रियों को घूमने-फिरने की सुविधाएं नहीं थीं।) पोलो को भी भ्रमण का बहुत शौक था—अपनी छुट्टियां वह प्राय: फिरने में ही व्यतीत करता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। इमिलिया सिलाई में बहुत निपुण थी और पोलो में, जब वह चार वर्ष के लगभग का ही था — बिना सीखे सिलाई में निपुणता पाई गई। इमिलिया वायलिन सीखने की इच्छुक थी, किंतु प्रयत्न करने पर भी सीख नहीं पाई। पोलो ने भी बहुत प्रयास किया किंतु असफल ही रहा। इमिलिया में डबलरोटी के कोने तोड़ने की एक विचित्र-सी आतद थी — ठीक यही आदत पोलो में भी पाई गयी।

पोलो के वृत्तांत में पुनर्जन्म में लिंग-परिवर्तन की विशेषता के अनेक प्रभाव स्पष्टत: देखे गये हैं। पोलो की बहिनों ने बताया कि जब वह छोटा था, तो उसकी बातें प्राय: लड़कियों जैसी ही हुआ करती थीं। एक दिन वह बोला :"क्या मैं सुंदर नहीं हूं? अब मैं लड़कियों की तरह ही रहा करूंगा। मैं लड़की जो हूं।" लड़का होते हुए भी उसे लड़कियों के साथ गुड़ियों से खेलना बहुत प्रिय था। प्रथम चार-पांच वर्षों तक तो उसने लड़कों के वस्त्र पहने ही नहीं — सदा तीव्र प्रतिरोध करता रहा। जब वह पांच वर्ष का था तो इमिलिया की एक पुरानी स्कर्ट को काट-छांटकर उसके लिए एक पैंट बना दी गई। इसे पहनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसके बाद से लड़कों के वस्त्र पहनने के विरूद्ध उसका प्रतिरोध समाप्त हो गया। 13-14 वर्ष की आयु तक उसमें यदा-कदा स्त्रीत्व के लक्षण दृष्टिगोचर हो जाते थे।

1962 में, जब पोलो 39 वर्ष का हो चुका था, उसके व्यक्तित्व में इस उम्र में अन्य पुरुषों की अपेक्षा नारी-तत्त्वों की अधिक प्रमुखता पाई गई। और अपनी बहिनों के अतिरिक्त उसका किसी अन्य स्त्री से कोई लगाव नहीं था। उसने विवाह तक नहीं किया।

पोलो के व्यक्तित्व की और गहरी जांच हेतु मानव शरीर के चित्र बनाने संबंधी उसका एक परीक्षण किया गया। इस परीक्षण में परीक्षार्थी को मानव शरीर का तीन बार चित्र बनाने को कहा जाता है। पहला चित्र वह किस लिंग का — स्त्री या पुरुष का — बनाये, इसके लिए उसे छूट होती है। दूसरा चित्र उसे विपरीत लिंग का बनाने को कहा जाता है और तीसरे चित्र के बारे में पुन: छूट होती है। परीक्षा का परिणाम इस बात से आंका जाता है कि परीक्षार्थी पहला व तीसरा चित्र किस लिंग का बनाता है और इस बात से कि उसने वे तीनों चित्र कैसे बनाये हैं। पोलो ने पहली और तीसरी दोनों 'छूटों' में स्त्री के चित्र बनाये।

उक्त घटना के एकदम विपरीत ऐसे भी अनेक दृष्टांत प्राप्त हुए हैं जिनमें वर्तमान जन्म की लड़की ने अपना पूर्वजन्म लड़के के रूप में वर्णित किया।

पूर्वजन्म के वृत्तांतों में कभी कभी ऐसे वृत्तांत भी मिल जाते हैं, जिनमें मात्र पिछले एक ही नहीं उससे भी पहले के और जन्मों की स्मृतियों का विवरण प्राप्त होता है।

2.2.8 गवेषणा-पद्धति

परामनोवैज्ञानिक या तो स्वयं घटना-स्थल पर जाता है या अपने किसी सहायक अन्वेषक को वहां भेजकर और विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

सभी प्रकार की सूचनाएं एकत्रित कर लेने के बाद परामनोवैज्ञानिक निम्न बातों को ध्यान में रखकर सारे केस का मूल्यांकन करता है —

1. सभी प्राप्त सूचनाएं कहां तक विश्वसनीय हैं?
2. क्या तथाकथित पूर्वजन्म की स्मृतियों में निहित तथ्यों की जानकारी सम्बंधित व्यक्ति के लिए सामान्यत: प्राप्त कर पाना संभव था?
3. सम्बंधित व्यक्ति द्वारा परासामान्य ज्ञान शक्तियों से यह सूचनाएं प्राप्त करना कहां तक संभव था?
4. क्या सम्बंधित व्यक्ति ने इन स्मृतियों का वर्णन किसी विशेष अवस्था जैसे तन्द्रा या अचेतनावस्था में ही वर्णित किया था, आदि?

सामान्य रूप से पूर्व जन्म की स्मृति छोटे बच्चों में होती है। अढ़ाई तीन वर्ष की अवस्था से लेकर आठ-दस वर्ष की अवस्था के बच्चे ही आम तौर पर इस क्षमता के धनी पाये गये हैं। कहीं-कहीं तो दस महीने की आयु में भी बच्चा यत्किंचित अभिव्यक्ति देना शुरू कर देता है। आयु बढ़ने के साथ साधारणतया यह क्षमता क्षीण होती जाती है। अपवाद रूप में बड़ी आयु वालों में भी पूर्व-जन्म-स्मृति उपलब्ध होती हुई पायी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आमतौर से पूर्व जन्म स्मृति वाला बच्चा जब बोलना सीख जाता है, तब वह अपने पूर्वजन्म के विषय में कुछ-कुछ बातें बताना शुरू कर देता है। प्राय: तो माता-पिता ऐसी बातों पर ध्यान ही नहीं देते या उसे केवल प्रलाप या बकवास समझ लेते हैं। पर, जब वह अपनी बात को दोहराता ही रहता है या बल देता रहता है, तब माता-पिता या पारिवारिक लोगों का ध्यान उस ओर केन्द्रित होता है। बहुत बार तो वे स्वयं ही पूर्व जन्म के घटना स्थल पर पहुंच जाते हैं तथा बालक द्वारा बताई गई बातों की सत्यता जांच करते हैं। कभी-कभी ऐसा नहीं हो पाता। गवेषक लोगों तक जब ऐसी बात पहुंचती है, तब वे जांच हेतु बालक के घर पहुंच जाते हैं। वहां वे उसका पूरा बयान ले लेते हैं तथा माता-पिता, पारिवारिकजन, अड़ौसी-पड़ौसी आदि के भी बयान लेते हैं। इसके अतिरिक्त भी जिन व्यक्तियों का सम्बंध घटना से होता है, उन सबके बयान ले लिये जाते हैं। फिर जिस स्थान में बालक अपना पूर्व जन्म आदि बताता है, वहां जाकर उन परिवार वालों के बयान लिये जाते हैं। बयानों के साथ-साथ गवेषक लोग प्रश्नों और प्रतिप्रश्नों के द्वारा भी तथ्य एकत्रित करते हैं। बयानों और साक्षियों के परीक्षण के पश्चात् जो तथ्य उभरते हैं, उन पर चिंतन किया जाता है।

चिंतन के लिए कई सम्भावनायें की जाती हैं। सबसे पहले तो धोखाधड़ी या पूर्व-नियोजित होने की संभावना को लेकर तथ्यों पर चिंतन किया जाता है—सारे बयान, साक्षियों के उत्तर, घटनास्थलों की भौगोलिक परिस्थिति आदि के आधार पर यह निश्चित करना कठिन नहीं होता कि घटना वास्तविक है या धोखा देने के लिए घड़ी हुई है। अब तक जिन घटनाओं की जांच की गई है, उसमें धोखाधड़ी की घटनाएं नगण्य संख्या में पाई गई है। उन अनेक वृत्तांतों जिनमें कि दोनों व्यक्तियों के निवासों में सैकड़ों या हजारों मील की दूरी रही हो, किसी प्रकार आर्थिक लाभ होना सम्भव न रहा हो और पूर्वजन्म की स्मृतियां वर्णित करने वाला कोई अबोध बालक ही रहा हो— जैसा कि प्राय: होता है, यह मानना उचित नही लगता कि वे सभी वृत्तांत मनघड़ंत किस्से ही हैं। जिन वृत्तांतो मे दोनों के जन्म के व्यक्तियों में कुछ समान योग्यताएं या शारीरिक निशान आदि पाये गये हैं, उनकी भी व्याख्या इस उपकल्पना द्वारा सम्भव नही है।

दूसरी संभावना यह की जाती है कि दोनों परिवारों के बीच प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी प्रकार का सम्बंध है या नहीं। जहां इस प्रकार की संभावना होती है, वहां पूर्व जन्म सम्बंधी बातों को इस कसौटी पर कसा जाता है कि ये बातें वस्तुत: पूर्व जन्म स्मृति पर आधारित है या वर्तमान जन्म में ही किसी माध्यम से ज्ञात की गई है। जहां दोनों परिवारों में सामान्य मित्र, सम्बंधी आदि होते हैं वहां इस बात को बहुत सूक्ष्मता से तोला जाता है।

2.2.9 विस्मृति

ऐसे वृत्तांतों में यह सम्भावना भी की जाती है कि वास्तविक स्रोत की विस्मृति के कारण बालक अपने पूर्वजन्म के अनुभव के रूप में उसे मानने लगा हो।

यह सम्भावना भी ऐसे वृत्तांतों के लिए ही अधिक महत्त्वपूर्ण है जिनमें कि बालक या उसके परिवार वालों के लिए वर्णित मृतक के बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त करना सम्भव रहा हो। कुछ ऐसे वृत्तांतों जिनमें कि दोनों व्यक्ति एक ही सम्भव है किंतु सुदूर स्थिति एक अत्यन्त सामान्य-सा जीवन व्यतीत किये हुए व्यक्ति के बारे में बहुत-सी जानकारी (व्यक्तिगत व अन्य प्रकार की) प्राय: किसी को नही होती। जिनमें जानकारी संभव रही हो उन वृत्तांतों के भी व्यवहार सम्बंधी तथ्यों की व्याख्या इस उपकल्पना द्वारा नहीं की जा सकती। इस तरह के वृत्तांतों ही अधिक हैं जिनमें यह कहा गया है कि पूर्वजन्म वाले परिवार से इस जन्म के परिवार वालों का किसी भी तरह का परिचित था ही नहीं।

कई बार ऐसा हुआ है कि बालक ने अकस्मात् ही किसी पूर्वजन्म सम्बंधी व्यक्ति को भीड़ में से पहचान लिया और उसे नाम लेकर पुकार लिया, या कि जब किसी ने बालक ने पूछा—अच्छा बतलाओ मैं कौन हूं? उसने सही उत्तर दे दिया। ऐसे दृष्टांतों के लिए भी विस्मृति की उपकल्पना उपयुक्त नही बैठती।

2.2.10 आनुवंशिक स्मृति

इस उपलकल्पना द्वारा भी दो प्रकार के वृत्तांतों की व्याख्या ही संभव है—एक तो वे वृत्तांत जिनमें कि वर्तमान व पूर्वजन्म के दोनों व्यक्ति एक ही परिवार के व भिन्न-भिन्न पीढ़ी के हों। ऐसे वृत्तांतों वास्तव में हैं ही बहुत कम। दूसरे वे वृत्तांत जिनमें कि दोनों जन्मों के बीच समय का बहुत लम्बा अन्तराल सदियों तक का रहा हो। इस प्रकार के वृत्तांतों और भी कम बिरले ही होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

फिर भी यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आनुवंशिक रूप में स्मृतियों का हस्तांतरण इस सीमा तक तो वैज्ञानिकों द्वारा नहीं खोजा जा सका है।

जिन घटनाओं में उक्त संभावना का भी कोई स्थान नहीं रह जाता, वहां यह भी एक संभावना की जाती है कि अतीन्द्रिय ज्ञान या टेलीपेथी (विचार-संप्रेषण या दूरज्ञान) की सहायता से कोई दूसरा व्यक्ति के जीवन की बात बताता हो।

2.2.11 अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण शक्ति

किसी व्यक्ति के अतीन्द्रिय ज्ञान की शक्ति के द्वारा किसी मृत व्यक्ति सम्बंधी जानकारी प्राप्त करके उसे पूर्वजन्म की स्मृति के रूप में वर्णित करने की सम्भावना महत्त्वपूर्ण तो है और कदाचित् कुछ वृत्तांतों की व्याख्या इस उपकल्पना द्वारा भी की जा सके — किंतु निःसंदेह बहुत से ऐसे वृत्तांत हैं, जिनकी पूर्णतः व्याख्या इस उपकल्पना द्वारा नहीं की जा सकती।

बालक द्वारा वर्णित सूचनाओं का आधार अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति द्वारा माना जा सकता है, किंतु उसके द्वारा किया जाने वाला भावपूर्ण व्यवहार का आधार अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति से प्राप्त सूचनाओं को नहीं माना जा सकता।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि यदि ये सूचनाओं अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति द्वारा ही प्राप्त की गई हैं, तो बालक इनका वर्णन पूर्वजन्म की स्मृतियों के रूप में क्या करता है? अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति से प्राप्त सूचनाओं का सभी व्यक्ति पूर्वजन्म की स्मृतियों के रूप में तो वर्णन नहीं करते। अर्थात् कुछ व्यक्ति तो अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति से प्राप्त सूचनाओं का वर्णन पूर्वजन्म की स्मृतियों से देते हैं और कुछ व्यक्ति इस रूप में नहीं, ऐसा क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में कभी-कभी यह कहा जाता है कि ऐसा सांस्कृतिक प्रभावों के कारण होता है अर्थात् वे समाज जिनकी संस्कृति पुनर्जन्म की मान्यता में आस्था रखती है अतीन्द्रिय शक्ति से प्राप्त ये सूचनाएं पूर्वजन्म की स्मृतियों का रूप लेती हैं और जिन समाजों में इस तरह की आस्था नहीं है, वहां ऐसा रूप नहीं लेता। यह सत्य है कि पूर्वजन्म की स्मृतियों के दृष्टांत व सांस्कृतिक आस्था में काफी महत्त्वपूर्ण सहसम्बंध पाया गया है फिर भी हम यह देखते हैं कि उन समाजों में जिनकी संस्कृति में पुनर्जन्म में किंचित् भी आस्था नहीं पाई जाती। पुनर्जन्म के कई दृष्टांत पाये गये हैं। अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड व अनेक अन्य ऐसे देश हैं, जिनमें पुनर्जन्म-विरोधी संस्कृति प्रचलित है और जहां कि बहुत से व्यक्ति पुनर्जन्म के बारे में कुछ जानते ही नही हैं या जो थोड़े-बहुत लोग जानते हैं वे इसे एशियावासियों का मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वास मानते हैं, उनमें भी पुनर्जन्म के दृष्टांत मिलते हैं। मुसलमानों तक में इस तरह के दृष्टांत पाये गये हैं।

कभी-कभी तो ऐसा ही हुआ है कि जब इस तरह की सूचनाएं मस्तिष्क में इस तरह उभरने लगी क मानो वे पहले की कोई स्मृतियां हो तो व्यक्ति ने उन पर अविश्वास करके इन्में स्मृतियों के रूप में स्वीकार न करने की चेष्टा भी की, किंतु उन्होंने बार-बार उसी रूप में पाया, जिसमें कि अतीत के अनुभवों के बिम्ब मस्तिष्क में उभरते हैं।

अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि ऐसे कुछ ही बालकों में जिन्होंने कि पुनर्जन्म की स्मृतियों का वर्णन किया, अतीन्द्रिय ज्ञान की शक्ति थी। अधिकांशतः बालकों में यह शक्ति बिल्कुल नही पाई गई।

2.2.12 भूतावेश

किसी व्यक्ति में यदि कोई मृतात्मा प्रवेश कर जाये, तो वह व्यक्ति भी मृत व्यक्ति से सम्बंधित सही-सही जानकारी प्रस्तुत कर सकता है और उसके व्यवहार में भी मृत व्यक्ति के अनुरूप परिवर्तन परिलक्षित हो सकते हैं, लेकिन कुछ कठिनाइयां इस उपकल्पना के साथ भी हैं।

पहली बात तो यह कि पूर्वजन्म की स्मृतियों का वर्णन करने वाले व्यक्तियों में प्रायः ही यह पाया गया है कि जब उन्हें मृतक के गांव, मकान या स्कूल आदि स्थानों पर ले जाया गया, तो उनको पूर्वजन्म की और नई-नई बातें याद आने लगीं। शुक्ला, प्रकाश, स्वर्णलता, प्रमोद आदि अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कि, जब उन्हें पूर्वजन्म के स्थानों पर ले जाया गया, तो उन्होंने बहुत से लोगों व स्थलों को पहचाना और ऐसी घटनाएं बतालाईं जिनके बारे में उन्होंने पहले कुछ नहीं कहा था। स्मृति का भी यह एक सामान्य नियम है कि पूर्व परिचित स्थानों को देखने से हम में उनसे संबंधित अनेक स्मृतियां और उभरने लगती हैं। अस्तु, बालक द्वारा वर्णित बातों को स्मृति के रूप में मानने पर तो इस तरह की घटनाओं का समाधान भी सहज ही है लेकिन यदि हम यह मानें कि बालक ने सूचनाएं उसमें प्रविष्ट किसी मृतात्मा के प्रभाव से दी हैं, तो स्पष्टतः कठिनाई आती है। मृतात्मा के प्रभाव से ही जब बालक सूचनाएं देता है तो स्थान बदलने से क्यों अन्तर आना चाहिए? मृतात्मा को क्या फर्क पड़ता है, इसमें कि बालक किसी अन्य स्थान पर है अथवा मृतक के गांव में?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसी तरह अनेक वृत्तांतों में ऐसा पाया गया है कि व्यक्ति ने मृतक के जीवनकाल में कोई स्थान या भवन कैसा था इसी का वर्णन किया—न कि उसकी मृत्यु के बाद में हो जाने वाले उसके परिवर्तित रूप का। ऐसा कई बार हुआ है कि बालक को जब उसके पूर्वजन्म के गांव या घर ले जाया गया, तो वह वहां हो जाने वाले परिवर्तनों से चौंक गया। यदि मृतात्मा जो कि व्यक्ति के मृत्यु के बाद भी रही, उसी ने प्रवेश किया, तो उसे तो परिवर्तनों की भी जानकारी रहनी चाहिए।

एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि इन वृत्तांतों में वर्णित मृतकों की आत्माओं ने आखिर इन्हीं व्यक्तियों में प्रवेश क्यों किया? इनका ऐसा करने में क्या प्रयोजन रहा होगा? मृतात्मा प्रवेश के जो अन्य दृष्टांत मिलते हैं उनमें प्राय: कोई न कोई प्रयोजन भी दृष्टिगोचर होता है, जैसे अपने किसी अपूर्ण कार्य या इच्छा की पूर्ति, किसी से बदला लेना आदि। इन वृत्तांतों में ऐसा कोई प्रयोजन नजर नहीं आता।

इस प्रकार जो भी अन्य सामान्य सम्भावना की जा सकती है, उसे पहले ध्यान में रखा जाता है और उसके आधार पर ही अन्तिम निष्कर्ष निकाला जाता है।

अब तक जांच की गई अधिकांश घटनाओं में उक्त प्रकार की कोई भी सम्भावना सही नहीं पाई गई। इस आधार पर ही ऐसी घटनाओं को परासामान्य (Paranormal) की कोटि में माना गया है।

2.3 अतीन्द्रिय ज्ञान : दूरबोध एवं परिचित बोध

2.3.1 जैनदर्शन का दृष्टिकोण

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा का लक्षण है—उपयोग। ज्ञान और दर्शन के रूप में जो चैतन्य की प्रवृत्तियां हैं, उन्हें 'उपयोग' कहा जाता है। ज्ञान द्वारा वस्तु का विशेष बोध होता है, दर्शन द्वारा सामान्य बोध होता है। यही अन्तर है ज्ञान और दर्शन में। मूलत: दोनों चैतन्य की प्रवृत्तियां हैं। आत्मा स्वभावत: जानने-देखने की क्षमता से युक्त हैं। कर्मों के आवरण के कारण यह क्षमता सीमित हो जाती है। फिर भी इस क्षमता का कुछ अंश तो प्रत्येक जीव में विद्यमान रहता ही है। अविकसित अवस्था में इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान किया जाता है, पर जब चेतना का विशेष विकास होता है, तो बिना इन्द्रियों की सहायता से भी आत्मा जान सकती है, देख सकती है। इसी अतीन्द्रिय ज्ञान की कोटि में अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान की गणना की जाती है।

प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मन की सीमा में जो जाना जाता है वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। जो इन्द्रियों की सीमा से परे है, जहां इन्द्रियों की कोई अपेक्षा नहीं होती, वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है। आकाश में ध्वनि के अनन्त प्रकम्पन बिखरे पड़े हैं किंतु व्यक्ति को उनका पता नहीं चलता, वह उन्हें पकड़ नहीं पाता। व्यक्ति के आसपास जो ध्वनि के प्रकंपन होते हैं उनका पता चलता है, उन्हें पकड़ा जा सकता है। इसका कारण है इन्द्रिय की सीमा। एक निश्चित आवृत्ति में ध्वनि के प्रकंपन होते हैं, तो व्यक्ति उन्हें पकड़ पाता है। कान के लिए एक आवृत्ति का निर्धारण है। आंख के लिए भी एक आवृत्ति का निर्धारण है। निश्चित आवृत्ति में जो सामने आता है, व्यक्ति उसे देखता है, सुनता है।

इन्द्रियों में भी बहुत तारतम्य है। आगमों में इन्द्रिय-पाटव शब्द का प्रयोग मिलता है। एक है इन्द्रिय का सामान्य ज्ञान और एक है इन्द्रिय का पाटव या इन्द्रिय-लाघव। जिसमें इन्द्रिय की पटुता बढ़ जाती है, वह दूर की बात देख लेता है, दूर की बात सुन लेता है। यदि इन्द्रिय का पाटव नहीं होता है तो व्यक्ति स्वल्प सीमा में ही जानता है, देखता है। आज के वैज्ञानिक युग में एक प्रश्न जरूर सामने आ गया है और वह बड़ा चिन्तनीय प्रश्न है। दर्शन में इन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान के बीच जो भेद-रेखा खींची गई, उसका अर्थ है इन्द्रियज्ञान स्थूल को जानता है, सन्निकृष्ट को जानता हे और अव्यवहित को जानता है। अतीन्द्रिय ज्ञान सूक्ष्म, विप्रकृष्ट और व्यवहित को भी जान सकता है। दीवार से परे क्या है, आंख नहीं देख सकती किंतु अतीन्द्रिय ज्ञानी देख सकता है। एक सूक्ष्म कण को अतीन्द्रिय ज्ञानी देख सकता है, इन्द्रिय-ज्ञानी नहीं देख सकता। एक वस्तु या पुस्तक पड़ी है और उसपर कोई ढक्कन दे दिया गया। उसे एक इन्द्रियज्ञानी नहीं जान सकता किंतु एक अतीन्द्रियज्ञानी जान सकता है। इन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान में यह एक भेद-रेखा है। आज विज्ञान ने टेलीस्कोप और माइक्रोस्कोप के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों को देखने में सफल हुआ है, इलेक्ट्रोन और प्रोटोन को देखने में सफल हुए हैं। टेलीस्कोप के द्वारा सैकड़ों-हजारों प्रकाश-वर्ष दूर की नीहारिकाओं को देखने में सफल हुए हैं। विद्युत की गति एक सैकंड में 1,86,000 माईल की है। गति से एक वर्ष में जितनी दूर प्रकाश जा सके उसे एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं। ऐसे हजारों प्रकाशवर्ष की दूरी पर जो निहारिकाएं हैं, सौर-मंडल है, तारागृह हैं, उन्हें टेलीस्कोप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के द्वारा देखा गया है। क्या यह इन्द्रिय ज्ञान है? क्या यह अतीन्द्रिय ज्ञान नही है? विज्ञान ने ऐसे यंत्र और उपकरण विकसित कर लिए हैं, जिनसे शरीर के भीतर क्या हो रहा है, सारा दिखाई देने लग जाता है।वे उपकरण चमड़ी के भीतर विद्यमान समस्त तत्त्वों को देख लेते हैं। क्या इसे अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं कहा जा सकता? इन्द्रियों से शरीर के भीतर नहीं देखा जा सकता। भीतर क्या हो रहा है, यह आंख से नहीं देखा जा सकता। सौरमण्डल या एक सूक्ष्म कण को आंख से नहीं देखा जा सकता। पर इन्हें वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा देखा जा सकता है। यह क्यों नहीं मान लिया जाए— वैज्ञानिक उपकरण भी अतीन्द्रिय ज्ञान के साधन बन गए हैं?

समाधान : अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के संदर्भ में

जैनदर्शन के सामने यहएक अहं प्रश्न है। इससे इन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान की भेद-रेखा समाप्त हो जाएगी। इस समस्या का समाधान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के संदर्भ में ही खोजा जा सकता है। अवधिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है, किंतु उसमें भी पुद्‌गलों का सहयोग आवश्यक होता है। अवधिज्ञान से व्यक्ति अपने ज्ञान को इतना विकसित और निर्मल बना ले, जिससे वह सूक्ष्म, दूरवर्ती और व्यवहित वस्तु को जान सके और चाहे वह ऐसे उपकरणों का विकास कर ले, जिनके द्वारा उन्हें वह जान सके। केवलज्ञान के नीचे की सीमा में जितने क्षायोपशमिक ज्ञान हैं, उनमें पुद्‌गल सहायक बनता है। अवधिज्ञान और मन:पर्यव ज्ञान में भी किसी न किसी रूप में पुद्‌गल का योग रहता ही है। इसका अर्थ है— नाड़ीतंत्र को इतना विकसित बना लिया जाए, जिससे व्यक्ति सूक्ष्म और व्यवहित तत्त्वों का ज्ञान कर सके। नाड़ीतंत्र को विकसित करें या बाहर के उपकरणों को विकसित करें, इन दोनों में बहुत अन्तर नहीं लगता। आंतरिक निर्मलता बढ़ने से जो ज्ञान हुआ, वही बाह्य साधनों का योग मिलने से भी हो सकता है।

प्रस्तुत प्रकरण में अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान की मीमांसा करते हुए परामनोविज्ञान द्वारा प्रस्तुत दूरबोध और परचित्त बोध के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन हमें करना है।

अवधिज्ञान इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना चेतना के दर्पण पर मूर्त्त पदार्थों के जो बिम्ब उभरते हैं, उन्हें पकड़ने वाला उपयोग अवधिज्ञानोपयोग है। यह ज्ञान अतीन्द्रिय है, फिर भी इसमें तीव्र एकाग्रता की अपेक्षा रहती है। इस दृष्टि से ही इसका निरुक्त किया गया है—'अवधानम् अवधि:' अवधान अर्थात् एकाग्रता। ध्यान की गहराइयों में उतरे बिना अवधिज्ञानोपयोग हो ही नहीं सकता।

अवधि का दूसरा अर्थ भी किया जाता है— अवधिज्ञान मूर्त्त द्रव्यों को साक्षात् करने वाला ज्ञान है। मूर्त्तमान् द्रव्य ही इसके ज्ञेय विषय की मर्यादा है। इसलिए यह 'अवधि' कहलाता है अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा इसकी अनेक इयत्ताएं बनती हैं। जैसे— इतने क्षेत्र और काल में इतने द्रव्य और इतने पर्यायों का ज्ञान करता है, इसलिए इसे अवधि कहा जाता है।

अवधि-ज्ञान के छह प्रकार हैं—

1. अनुगामी — जिस क्षेत्र में अवधि-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसके अतिरिक्त क्षेत्र में भी बना रहे, वह अनुगामी है।
2. अननुगामी — उत्पत्तिक्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र में बना न रहे, वह अननुगामी है।
3. वर्धमान — उत्पत्तिकाल में कम प्रकाशवान् हो और बाद में क्रमश: बढ़े, वह वर्धमान है।
4. हीयमाण — उत्पत्तिकाल में अधिक प्रकाशवान् हो और बाद में क्रमश: घटे, वह हीयमान है।
5. अप्रतिपाती — आजीवन रहने वाला अथवा केवलज्ञान उत्पन्न होने तक रहने वाला अप्रतिपाती है।
6. प्रतिपाती — उत्पन्न होकर जो वापिस चला जाए, वह प्रतिपाती है।

मन:पर्यवज्ञान

इन्द्रियों और मन की सहायता बिना किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं — आकृतियों को जानना मन:पर्यवज्ञानोपयोग है।

यह ज्ञान मन के प्रवर्तक या उत्तेजक पुद्‌गल-द्रव्यों को साक्षात् जानने वाला है। चिंतक जो सोचता है, वह अधिक स्पष्ट और विशद होता है। जिस प्रकार एक फिजिशियन आंख, नाक, गला आदि शरीर के सभी अवयवों की जांच करता है, उसी प्रकार आंख, नाक आदि का विशेष डॉक्टर भी करता है। किंतु दोनों की जांच और चिकित्सा में अन्तर रहता है। एक ही कार्यक्षेत्र होने पर भी विशेषज्ञ के ज्ञान की तुलना में वह डॉक्टर नहीं आ सकता। इसी प्रकार मन:पर्यवज्ञान की तुलना में साधारण अवधिज्ञान नहीं आ सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मन:पर्यवज्ञान के दो प्रकार हैं—

1. ऋजुमति, 2. विपुलमति।

सामान्य रूप से मानसिक पुद्‌गलों को ग्रहण करने वाला मन:पर्यवज्ञान ऋजुमति कहलाता है। उसके विशेष पर्यायों का बोध करने वाला मन:पर्यवज्ञान विपुलमति कहलाता है। उदाहरणार्थ—व्यक्ति ने मन में घट का चिंतन किया। ऋजुमति वाला जानेगा कि इसने 'घट' का चिंतन किया है। विपुलमति वाला जानेगा कि इसने घट का चिंतन किया है, वह घट सोने का है, पाटलिपुत्र में बना हुआ है, आज बना हुआ है, आकृति में बड़ा है, आदि। इस प्रकार विशेष विवरण का बोध भी उसे हो जाएगा।

अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि चैतन्य-केन्द्रों के निर्मलीकरण से होती है।

चैतन्य-केन्द्र क्या है?

जो दृश्य है वह स्थूल शरीर है। इसके भीतर तैजस और कर्म—ये भी इस क्षमता का कुछ अंश मनुष्य में विद्यमान रहता है। अविकसित अवस्था में इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान किया जाता है, पर जब चेतना का विशेष विकास होता है, तो बिना इन्द्रियों की सहायता से भी आत्मा जान सकती है, देख सकती है। इसी अतीन्द्रिय ज्ञान की कोटि में अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान की गणना की जाती है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के दो प्रकार हैं—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय और मन की सीमा में जो जाना जाता है वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। जो इन्द्रियों की सीमा से परे है, जहां इन्द्रियों की कोई अपेक्षा नहीं होती, वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है।

इन्द्रियों में भी बहुत तारतम्य है। आगमों में इन्द्रिय पाटव शब्द का प्रयोग मिलता है। एक है इन्द्रिय का सामान्य ज्ञान दूसरा है इन्द्रिय का पाटव। जिसमें इन्द्रिय की पटुता बढ़ जाती है, वह दूर की बात देख लेता है, दूर की बात सुन लेता है, जान लेता है। दर्शन में इन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान के बीच जो भेद-रेखा खींची गई, उसका अर्थ है इन्द्रियज्ञान स्थूल को जानता है निकट तथा अबाधित को जानता है। एक सूक्ष्म कण को अतीन्द्रिय ज्ञानी देख सकता है, इन्द्रिय-ज्ञानी नहीं देख सकता। आधुनिक वैज्ञानिक माइक्रोस्कोप के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों को देखने में सफल हुए हैं, इलेक्ट्रोन और प्रोटोन को देखने में सफल हुए हैं। टेलीस्कोप के द्वारा सैकड़ों-हजारों प्रकाश-वर्ष दूर की नीहारिकाओं को देखने में सफल हुए हैं। विद्युत की गति एक सैकेण्ड में 1,86,000 माईल की है। इसी गति से एक वर्ष में जितनी दूर प्रकाश जा सके उसे एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं। ऐसे हजारों प्रकाश वर्ष की दूरी पर जो नीहारिकाएं हैं, सौरमण्डल हैं, तारगृह हैं, उन्हें टेलीस्कोप द्वारा देखा गया है। क्या यह इन्द्रिय ज्ञान है? क्या यह अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है?

2.3.2 समाधान:अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के संदर्भ में

जैनदर्शन के सामने एक अहं प्रश्न है कि विज्ञान के प्रभाव से क्या इन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान के बीच की भेदरेखा समाप्त हो जायेगी क्या? इस समस्या का समाधान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के संदर्भ में ही खोजा जा सकता है। केवलज्ञान की सीमा के नीचे जितने ज्ञान हैं वे क्षायोपशमिक हैं और उनमें पुद्‌गल सहायक रहता है। अवधिज्ञान मन:पर्यवज्ञान में पुद्‌गल सहायक होते हैं।

अवधिज्ञान एवं मन:पर्यवज्ञान क्या है? इसका विवेचन करते हुए परामनोविज्ञान द्वारा प्रस्तुत और परचित्तबोध के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन हमें करना है।

अवधिज्ञान

इन्द्रियों और मन की सहायात के बिना चेतना के दर्पण पर मूर्त्त पदार्थों के जो बिम्ब उभरते हैं, उन्हें पकड़ने वाला उपयोग अवधिज्ञानोपयोग है। यह अतीन्द्रिय ज्ञान है इसमें तीव्र एकाग्रता रहती है अर्थात् 'अवधानम् अवधि:'। यह मूर्त्त द्रव्यों का साक्षात्कार करने वाला ज्ञान है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की श्यत्ताएं (सीमाएं) रहती हैं इसलिए इसे अवधि कहते हैं। यह छह प्रकार का होता है—

1. **अनुगामी**—जिस क्षेत्र में अवधिज्ञान होता है उसके अतिरिक्त क्षेत्र में भी जो ज्ञान बना रहता है वह अनुगामी है।

2. **अननुगामी**—उत्पत्ति क्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र में जो ज्ञान न बना रहे उसे अननुगामी कहते हैं।

3. **वर्धमान**—उत्पत्तिकाल में कम प्रकाशवान् हो और बाद में क्रमश: बढ़े, वह वर्धमान है।

4. **हीयमाण**—उत्पत्तिकाल में अधिक प्रकाशवान् हो और बाद में क्रमश: घटे, वह हीयमान है।

5. **अप्रतिपाती**— आजीवन रहने वाला अथवा केवलज्ञान उत्पन्न होने तक रहने वाला अप्रतिपाती है।

6. **प्रतिपाती**—उत्पन्न होकर जो वापिस चला जाए, वह प्रतिपाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मन:पर्यवज्ञान

इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं, आकृतियों को जानना मन:पर्यवज्ञानोपयोग है। चिन्तक जो सोचता है, उसी के अनुरूप चिन्तन प्रवतर्क पुद्गल द्रव्यों की आकृतियां—पर्यायें बन जाती हैं। वे मन:पर्याय के द्वारा जानी हैं, इसीलिए इसका नाम है—मन की पर्यायों को साक्षात् करने वाला ज्ञान।

मन:पर्यवज्ञान के दो प्रकार हैं—1. ऋजुमति, 2. विपुलमति।

1. ऋजुमति— सामान्य रूप से मानसिक पुद्गलों को ग्रहण करने वाला मन:पर्यवज्ञान ऋजुमति कहलाता है।

2. विपुलमति—मानसिक पुद्गलों के विशेष पर्यायों का बोध करने वाला मन:पर्यवज्ञान विपुलमति कहलाता है।

अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि चैतन्य-केन्द्रों के निर्मलीकरण से होती है।

2.3.3 चैतन्यकेन्द्र क्या है?

जो दृश्य है वह स्थूल शरीर है। इसके भीतर तैजस् और कर्म—ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। वह चैतन्यमय है। उदाहरणत: इसे हम यों समझ सकते हैं जैसे सूर्य और हमारे बीच में बादल आ जाते हैं वैसे ही आत्मा के चैतन्य और बाह्य जगत् के बीच में कर्म-शरीर के बादल छाये हुए हैं। इसीलिए चैतन्य सूर्य का पूर्ण प्रकाश बाह्य जगत् पर नहीं पड़ता। बादलों के होने पर भी सूर्य का प्रकाश पूरा ढका नहीं जाता वैसे ही कर्मशरीर का आवरण होने पर भी चैतन्य पूरा आवृत्त नहीं होता।

2.3.4 समूचा शरीर ज्ञान का साधन है

आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। ज्ञानावरण उन सबको आवृत्त किए हुए है। इस आवरण का विलय शरीर के सब प्रदेशों में होता है। शरीर शास्त्र के अनुसार ज्ञान का स्रोत नाड़ीसंस्थान है। मस्तिष्क और सुषुम्ना के द्वारा ही सब ज्ञान होता है। कर्मशास्त्र की भाषा में नाड़ी-संस्थान को ज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम कहा जा सकता है।

शरीर के कुछ भाग ज्ञान और संवेदन के साधन बने हुए हैं, वे भाग 'करण कहलाते हैं। आंख एक 'करण' है। उसके माध्यम से रूप को जाना जा सकता है किंतु मनुष्य के पूरे शरीर में 'करण' बनने की क्षमता है। यह जैनदर्शन की मान्यता है।

2.3.5 संभिन्न-स्रोतोलब्धि

आज विज्ञान कहता है कि कानों की अपेक्षा दांतों से अच्छा सुना जा सकता है बशर्ते कुछ वैज्ञानिक परिवर्तन किया जाए। एक लब्धि का नाम है—संभिन्न-श्रोतो-लब्धि। जो व्यक्ति इस लब्धि से सम्पन्न होता है उसकी चेतना का इतना विकास हो जाता है कि उसका समूचा शरीर कान, आंख, नाक, जीभ और स्पर्श का काम कर सकता है। उसके ज्ञान का स्रोत संभिना बन जाता है, व्यापक बन जाता है।

2.3.6 मन की क्षमता

इन्द्रिय चेतना की भांति मानसिक चेतना का विकास किया जा सकता है। समृति मन का एक कार्य है। उसे विकसित करते-करते पूर्वजन्म की स्मृति (जाति स्मृति) हो जाती है। यह भी अतीन्द्रिय चेतना (Extra-sensory perception) नही है। दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-आस्वादन और दूर-स्पर्शन का विकास भी इन्द्रिय चेतना का ही विकास है।

2.3.7 पूर्वाभास अतीन्द्रिय ज्ञान है?

परामनोविज्ञान के अनुसार पूर्वाभास (Precognition) अतीन्द्रियज्ञान है पर वास्तव में वह संधिकालीन ज्ञान है। उसे न इन्द्रियज्ञान कहा जा सकता है और न अतीन्द्रियज्ञान। वह इन्द्रिय और मन से उत्पन्न नहीं है, इसलिए उसे इन्द्रियज्ञान नहीं कहा जा सकता।

मानसिक ज्ञान का चैतन्य-केन्द्र मस्तिष्क है। मन की सारी वृत्तियां उसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। हम इन्द्रिय और मन के ज्ञान से ही परिचित हैं और उनके चैतन्य-केन्द्र ही हमारी शरीर-संरचना में स्पष्ट है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3.8 अतीन्द्रिय चेतना का प्रकटीकरण

मनुष्य का स्थूल शरीर सूक्ष्मतर शरीर का संवादी होता है। सूक्ष्मतर शरीर में जिन क्षमताओं के स्पंदन होते हैं, उन सबकी अभिव्यक्ति के लिए स्थूल शरीर में केन्द्र बन जाते हैं। वे 'सुप्त' अवस्था में रहते हैं अभ्यास के द्वारा उन्हें जागृत किया जाता है। अपनी जागृत अवस्था में वे 'करण' बन जाते हैं। 'करण' को विज्ञान की भाषा में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro-magnetic Field) कहा जा सकता है। जैन योग में चैतन्य केन्द्रों के अनेक आकारों का उल्लेख मिलता है, जैसे— शंख, कमल, स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, ध्वज, कलश, हल आदि। ये विभिन्न प्रकार के आकार वाले चैतन्य केन्द्र इन्द्रियातीत ज्ञान के माध्यम बनते हैं। इनके माध्यम से चैतन्य का प्रकाश बाहर फैलता है। अतीन्द्रियज्ञान का एक प्रकार है अवधिज्ञान। अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है— अंतगत और मध्यगत। टार्च की तरह एक दिशा में फैलने वाले प्रकाश की भांति अंतगत अवधिज्ञान होता है। उसका प्रकाश आगे-पीछे या दाएं-बाएं फैलता है। वह जिस दिशा में फैलता है उस दिशा में स्पष्ट होता है किंतु उसका प्रकाश सब दिशाओं में नहीं फैलता है। मध्यगत अवधिज्ञान की प्रकाश रश्मियां समूचे शरीर से बाहर आती हैं।

2.3.9 विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र

जैन परविद्या के अनुसार शक्ति और चैतन्यकेन्द्र अनगिन हैं। वे पूरे शरीर में फैले हुए हैं। वे अतीन्द्रिय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र बन सकते हैं अथवा उनके आसपास का क्षेत्र विद्युत्- चुम्बकीय क्षेत्र बन सकता है। उनके अतिरिक्त शरीर के और भी अनेक भाग विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र बन सकते हैं, इसलिए शक्ति-केन्द्रों और चैतन्य-केन्द्रों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। शक्ति-केन्द्र और चैतन्य शरीर के अवयव नहीं हैं किंतु शरीर के वे भाग हैं, जिनमें विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र बनने की क्षमता है। वे भाग नाभि से नीचे पैर की एडी तक तथा नाभि से ऊपर सिर की चोटी तक, आगे भी हैं, पीछे भी हैं, दाएं भी हैं और बाएं भी हैं। जब समस्त ऋजुता आदि विशिष्ट गुणों की साधना के द्वारा वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं, 'करण' बन जाते हैं, तब उनमें अतीन्द्रिय चेतना प्रकट होने लग जाती है।

2.3.10 प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया

प्रेक्षाध्यान की दो पद्धतियां हैं—

1. संपूर्ण शरीर प्रेक्षा।
2. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा।

संपूर्ण शरीर की प्रेक्षा करने से पूरा शरीर 'करण' बन जाता है, अतीन्द्रियज्ञान का साधन बन जाता है। इसमें दीर्घकाल, गहनप्रध्यवसाय, सघन श्रद्धा और धृति की अपेक्षा होती है। कुछ महीनों और वर्षों की प्रेक्षा-साधना से पूरा शरीर 'करण' नहीं बन जाता। उसके लिए बहुत बड़ा अभ्यास जरूरी होता है। इसकी अपेक्षा किसी एक चैतन्य केन्द्र की प्रेक्षा का अभ्यास जरूरी होता है। इसकी अपेक्षा किसी एक चैतन्य-केन्द्र की प्रेक्षा का अभ्यास कुछ सरल होता है।

प्रेक्षाध्यान की निष्पत्ति

प्रेक्षाध्यान से दो कार्य निष्पन्न होते हैं—

1. करण-निष्पत्ति।
2. आवरण-विशुद्धि।

जहां अवधान नियोजित होता है वह शरीर-भाग अवधिज्ञान के लिए 'करण' या माध्यम बन जाता है। प्रेक्षाध्यान का अवधान राग-द्वेष-रहित, समभावपूर्ण होता है। उससे ज्ञान और दर्शन विशुद्ध होता है। आवरण के विशुद्ध होने पर जानने की क्षमता बढ़ती है और शरीर भाग के विशुद्ध होने पर उस विकसित ज्ञान को शरीर से बाहर फैलने का अवसर मिलता है। आवरण की विशुद्धि सम्पूर्ण चैतन्य में होती है, किंतु उसका प्रकाश शरीर-प्रदेशों को कारण बनाए बिना बाहर नहीं जा सकता। विद्युत्-प्रवाह होने पर भी यदि बल्बन हो तो उसका प्रकाश नहीं जा सकता। ठीक यही बात ज्ञान पर लागू होती है। आवरण की विशुद्धि होने पर चैतन्य का प्रवाह उपलब्ध हो जाता है, फिर भी शरीर-प्रदेश की विशुद्धि हुए बिना वह बाह्य अर्थ को नहीं जान सकता, प्रकाशित नहीं कर सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3.11 केन्द्र और संवादी केन्द्र

चैतन्य केन्द्र हमारे स्थूल शरीर में होते हैं। नाभि, हृदय, कंठ, नासाग्र, भृकुटि, तालु, सिर—ये चैतन्य केन्द्र हैं। आवरण की विशुद्धि होने पर ये जागृत हो जाते हैं, निर्मल हो जाते हैं और अतीन्द्रिय ज्ञान की अभिव्यक्ति के माध्यम बन जाते हैं। ज्ञात चैतन्य-केन्द्रों के अतिरिक्त स्थूल शरीर के ऐसे अन्य परमाणु स्कन्ध भी हैं जो अतीन्द्रिय ज्ञान के माध्यम बनते हैं। परिष्कृत या निर्मल बने हुए परमाणु स्कन्धों को स्थूल शरीर में देखा नहीं जा सकता। इन्द्रिय ज्ञान के केन्द्र सूक्ष्म शरीर में होते हैं और उनके संवादी केन्द्र हमारे स्थूल शरीर में होते हैं, तभी भीतर की ज्ञान रश्मियां बाह्य जगत् में आती हैं। इन चैतन्य केन्द्रों पर भी यही नियम लागू होता है।

2.3.12 परामनोविज्ञान में अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण

सामान्यत: बाह्य जगत् का बोध हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही होता है। किन्तु जब किसी मन:प्रभाव अथवा भौतिक वस्तु या घटना का बोध हमें बिना किसी इन्द्रिय संवेद अथवा तार्किक अनुमान से हो तो उसे अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण कहा जा सकता है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के चार स्वरूप होते हैंपरचित्तबोध (टैलीपैथी), दूरबोध (क्लेयरवायेन्स), पूर्वभास (प्रीकोग्नीशन) व भूताभास (रेट्रोकॉग्नीशन)।

कभी-कभी प्राप्त बोध का स्वरूप निश्चित करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे सामान्य अतीन्द्रिय बोध कहा जाता है।

अतीन्द्रिय बोध की घटनाएं स्वत: स्फूर्त भी हो सकती हैं और प्रयोगों अथवा अन्य प्रकार से सप्रयास उत्पन्न भी की जा सकती है। दोनों ही प्रकारों का परामनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किया गया है।

अतीन्द्रिय बोध के अनुभव प्राय: किसी संकट (मृत्यु, बीमारी, आर्थिक हानि आदि) से सम्बंधित होते हैं, लेकिन कई बार बहुत मामूली बातों से सम्बंधित भी पाये गये हैं। ये अनुभव पूर्व जागृत अवस्था अर्द्धजागृत, अर्द्धनिद्रित अवस्था में व पूर्ण निद्रा अवस्था, सभी प्रकार की अवस्थाओं में होते हैं। स्वप्नों में तो ये प्राय: प्रकट होते ही हैं।

1960 के लगभग एक चैकोस्लोवाकी भौतिकशास्त्री, जीव-रसायनशास्त्री व परामनोविज्ञानी डॉ. मिलानरिज्ल ने कुछ व्यक्तियों को सम्मोहित करके उनमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की क्षमता विकसित करने का प्रयास किया। अपनी एक विशिष्ट विधि द्वारा आप एक युवक पावेल स्टैपनेक के साथ ऐसा करने में सफल भी हुए। प्रावेल की क्षमता की जांच करने अनेक देशों से परामनोविज्ञानी प्राग पहुंचे व उसे अनेक देशों की प्रयोगशालाओं में ले जाकर परीक्षा किया गया। पावेल सभी प्रयोगों में सफल रहा। किंतु एक विचित्र बात यह देखी गई कि पावेल कुछ विशेष प्रकार के प्रयोगों में व अपने प्रिय पत्तों को उपयोग में लिए जाने पर अवश्य सफल होता था। कुछ पत्तों को वह उन्हें चाहे जितने और चाहे जैसे लिफाफों में बंद किये जाने पर भी सही-सही पहचान लेता था। ऐसा स्पष्ट संकेत मिलता है कि सम्मोहन द्वारा कुछ व्यक्तियों में अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की क्षमता उत्पन्न की जा सकती है।

1968 में डॉ. थेलमा मॉस ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि भावात्मक (इमोशनल) सामग्री का संप्रेषण भावहीन सामग्री की अपेक्षा अधिक मात्रा व अधिक स्पष्ट रूप में होता है।

1962 में माइमोनीडिस डॉ. मोन्टेग्यू उलमान ने डॉ. गार्डनर मर्फी के सहयोग सेएक 'ड्रीम लेबोरेटरी' —स्वप्न प्रयोगशाला मात्र परामनोवैज्ञानिक शोधकार्य हेतु स्थापित की। 1964 में डॉ. स्टेनेल क्रिपनर के साथ यहां पर बहुत-से ऐसे प्रयोग किए गए जिनमें कि सोते हुए व्यक्ति के स्वप्नों को अन्य कमरे में किन्हीं कलाकृतियों पर ध्यान केंन्द्रित करके प्रभावित करने की चेष्टा की गई। प्रयोगों में सफलतापूर्ण परिणाम प्राप्त हुए। अब यहां अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के अन्य पहलुओं पर शोध चल रहा है।

उधर रूस में लेनिनग्रेड विश्वविद्यालय में शरीरविज्ञान विभाग के अध्यक्ष व लेनिन पुरस्कार विजेता लियोनिड एल. वासिलियेव ने 1960 में एक सभा में उपस्थित रूस के वैज्ञानिकों को इस घोषणा से चौंका दिया कि वे लम्बे अरसे से परचित्त बोध शक्ति द्वारा सम्मोहन-सुझाव के प्रयोग करते रहे हैं। उन्होंने कहा कि ''अमरीकी नौसेना आज अपनी आणविक पनडुब्बियों से परचित्त- बोध शक्ति द्वारा संदेश भेजने का प्रयोग कर रही है, लेकिन सोवियत विज्ञानियों ने 25 वर्ष पूर्व ही इस तरह के अनेक सफल परीक्ष कर डाले हैं।

सोवियत विज्ञानियों द्वारा जलमग्न पनडुब्बी व भूमि के बीच जो परीक्षण किया गया था वह मानव पर नहीं किया गया था। यह प्रयोग एक मादा खरगोश व उसके नवजात छौनों पर किया गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''वैज्ञानिकों ने पनडुब्बी में खरगोश के छौनों को रखा और उनकी मां को तट पर स्थित एक प्रयोगशाला में रखा। यहां उनके मस्तिष्क में उन्होंने इलैक्ट्रोड्स लगा दिए। तब पनडुब्बी सागर में काफी नीचे चली गई तब उसमें मौजूद सहायकों ने एक-एक करके उन छौनों को मारना शुरू किया। मादा खरगोश को कुछ पता नहीं था कि क्या हो रहा है। बच्चों की मृत्यु कब हुई यह सब जानने का उसके पास कोई उपाय न था। फिर भी प्रत्येक छौने की मृत्यु के क्षण उसकी मां के मस्तिष्क में अजीब-सी प्रतिक्रिया हुई।''

1966 में सुविख्यात 'द् ग्रेण्ड मोस्को-साइबेरिया टैलीपेथी टेस्ट' संपन्न किया गया था। इसका एक रोचक विवरण 'साइकिक डिस्कवरीज बिहाइंड द् आइरन कर्टेन' में प्रस्तुत किया गया है:

19 अप्रैल, 1966 की बात है। परचितबोध के परीक्षण के लिए कार्ल निकोलायेव को मास्को से साइबेरिया जाना पड़ा। साइबेरिया के विज्ञान-नगर के नाम से विख्यात नोवोसिब्रिस्क हवाई अड्डे पर जैसे ही कार्ल अपने विमान से उतरा उसे लगा जैसे बीसियों जोड़ी आंखें आकर उससे चिपक गई हैं। हर जोड़ी आंख में एक अलग किस्म का भाव है—किसी में जिज्ञासा, किसी में उपहास। कार्ल को यह सब स्वाभाविक लगा। वह जानता था कि बिना प्रत्यक्ष अनुभव किए लोग ही विश्वास ही नहीं करेंगे कि वह मास्को से भेजे गए परचित संदेशों को सूदूर साइबेरिया में ग्रहण कर सकता है। वह पूरे विश्वास से परीक्षण के लिए तैयार हो गया।

साइबेरिया की ठण्डी सन्नाटे भरी आधी रात कार्ल 'गोल्डन वैली होटल' के एक कमरे में कुछ सोवियत वैज्ञानिकों के साथ बैठा था। कमरे में मौन छाया हुआ था। उधर सैकड़ों मील दूर मास्को के पूर्णत: पृथक् और 'इन्सुलेटेड' कक्ष में यूरी कामेस्की कुछ वैज्ञानिकों के साथ बैठा हुआ था। यूरी को यह कतई नहीं मालूम था कि उसे कार्ल को किस आशय का परचितत्त संदेश भेजना है।

कुछ ही क्षण बाद क्रेमलिन की घड़ी ने आठ बजाये और कक्ष में मौजूद एक विज्ञानी ने कामेंस्की को एक सीलबन्द पैकेट दिया। पैकेट में धातु की बनी एक कमानी थी जिसमें सात घेरे थे। कामेंस्की के शब्दों में—''मैंने कमानी को उठाया व उसके घेरे पर अंगुलियां फिराने लगा। मैंने कोशिश की कि कमानी के चित्र को पूरी तरह अपने में जज्ब कर लूं। साथ ही मैंने निकोलायेव के चेहरे को भी याद किया। मैंने कल्पना की कि जैसे निकोलायेव मेरे सामने बैठा है। इसके बाद मैंने कल्पना की कि मैंने कार्ल निकोलायेव के एक कंधे के पीछे से कमानी को देख रहा हूँ। फिर मैंने कल्पना की कि मैं उसकी (कार्ल निकोलायेव की) आंखों से कमानी को देख रहा हूं।''

''इसी क्षण उधर एक हजार आठ सौ साठ मील दूर कार्ल तनाव से भर गया। एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार उसकी अंगुलियां जैसे किसी ऐसी वस्तु पर, जो केवल कार्ल को दिखाई देती थी, फिरने लगीं। इसी क्षण उसने लिखा—गोल, धातु निर्मित, चमकती हुई, घेरे जैसी लगती है।'' इसके बाद जब कामेस्की ने एक पेचकस का बिंब भेजना चाहा तो कार्ल निकोलायेव ने तत्क्षण लिखा—''लंबा, पताला........धातु ....प्लास्टिक..........काला.........प्लास्टिक।''

मास्को-साइबेरिया के बीच हुए इस परचित्त बोध के परीक्षण की सोवियत संघ में व्यापक प्रतिक्रिया हुई और अतीन्द्रिय बोध सम्बंधी और अनेक परीक्षण विभिन्न वैज्ञानियों द्वारा किए गए।

1972 में, अपोलो 14 के एक अंतरिक्षत यात्री एडगर मिशेल पहले ऐसे व्यक्ति हुए, जिन्होंने कि अंतरीक्षण व पृथ्वी के बीच अतीन्द्रिय बोध संबंधी परीक्षण किए।

चन्द्रमा पर कदम रखने वाले व्यक्ति मिशेल अंतरिक्षण विज्ञान में तीन 'डाक्टरेट' की उपाधियां अर्जित कर चुके थे। अनेक वर्षों से आपकी परामनोविज्ञान में विशेष रुचि रही थी। जब आपका चन्द्रमा पर जाना निश्चित हुआ तो आपने इसे परचितत्तबोध की दूरी से जांच करने के लिए एक सुअवसर भी पाया। आपने जैनर कार्ड्स का उपयोग करते हुए पृथ्वी पर चार व्यक्तियों को उनके चिह्न का उपयोग करते हुए पृथ्वी पर चार व्यक्तियों को उनके चिह्न संप्रेषित करने का प्रयास किया। डॉ. राइन व अमेरिकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च के डॉ. कार्लिस ओसिस ने इन प्रयोगों के परिणामों का विश्लेषण करके यह बताया कि इनसे पूर्वाभास का साक्ष्य मिलता है।

अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण संबंधी इन अनेक प्रयोगों से यह तो सिद्ध हो गया कि 'अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण' एक वास्तविकता है, मात्र कपोल-कल्पना नहीं। किंतु इसकी प्रकृति के संबंध में अभी भी अनेक प्रश्न हैं जिनके या तो आधे-अधूरे उत्तर ही मिल पाये हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

या जो अभी सर्वथा अनुत्तरहित ही हैं। अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की क्षमता कब किन परिस्थितियों में उत्पन्न की जा सकती है? क्या इस पर किसी प्रकार से नियंत्रण किया जा सकता है? यह धीरे-धीरे कम क्यों हो जाती है? किस प्रकार के व्यक्तियों में यह क्षमता अधिक या कम पाई जाती है? आदि-आदि अनेक प्रश्न हैं, जिनका समुचित समाधान खोजना अभी बाकी है।

1950 से 1982 के बीच इस तरह के प्रश्नों की कतार और लंबी हो गई है। नये प्रयोगों से जितने उत्तर मिले हैं कदाचित् उनसे अधिक अनचीह्ने क्षेत्र उजागर हुए हैं।

2.13 विचार-संप्रेषण

ओकल्ट साइन्स के वैज्ञानिकों ने यह तथ्य प्रकट किया कि आदमी जब तक अपने शरीर के विशिष्ट केन्द्रों को चुम्बकीय क्षेत्र नहीं बना लेता, तब तक उसमें पारदर्शन की क्षमता नहीं जाग सकती।

आज के पेरासाईकोलॉजिस्ट टैलीपैथी का प्रयोग करते हैं। टैलीपैथी का अर्थ है—विचार-संप्रेषण। एक आदमी कोसों की दूरी पर है। उससे बात करनी है, कैसे हो सकती है? आज तो टेलीफोन और वायरलेस का साधन है। घर बैठा आदमी हजारों कोसों पर रहने वाले अपने व्यक्तियों से बात कर लेता है। प्राचीन काल में ये साधन नहीं थे, टैलीपैथी शब्द भी नहीं था। यह अंग्रेजी का शब्द है। उस समय विचारों को हजारों कोस दूर भेजना विचार-संप्रेषण की प्रक्रिया से होता था। जैसे एक योगी है उसका शिष्य पांच हजार मील दूरी पर बैठे अपने शिष्य को कुछ बताना चाहता है, उससे बातचीत करना चाहता है तो विचार-संप्रेषण की साधना की जाती थी जिससे विचारों का आदान-प्रदान हो जाता था।

2.14 अतीन्द्रिय चेतना : विकास की प्रक्रिया

विकास के क्रम के अनुसार प्रत्येक प्राणी में चेतना अनावृत्त होती है। इन्द्रिय, मानसिक और बौद्धिक चेतना के साथ-साथ कुछ अस्पष्ट या धुंधली-सी अतीन्द्रि चेतना भी अनावृत्त होती है। पूर्वाभास विचार-संप्रेषण आदि उसी कोटि के हैं।

अतीन्द्रिय चेतना की प्रारंभिक अवस्था—पूर्वाभास, अतीतबोध और उसकी विकसित अवस्था की सीमा को समझा जा सकता है। मन:पर्यवज्ञान या परचित्तज्ञान भी अतीन्द्रियज्ञान है। विचार-संप्रेषण विकसित इन्द्रिय-चेतना का ही एक स्तर है। उसे अतीन्द्रिय ज्ञान कहना सहज-सरल नहीं है। विचार-संप्रेषण की प्रक्रिया में अनेक मस्तिष्क में उभरने वाले विचार-प्रतिबिम्बों के आधार पर दूसरे के विचार जाने जाते हैं। प्रत्येक विचार अपनी आकृति का निर्माण करता है। विचार का सिलसिला चलता है तब नई-नई आकृतियां निर्मित होती जाती हैं और प्राचीन आकृतियां विसर्जित हो, आकाशिक रेकार्ड में जमा होती जाती हैं। मन:पर्यवज्ञानी उन आकृतियों का साक्षात्कार कर संबद्ध व्यक्ति की विचारधारा को जान लेता है। उसमें मानसिक चिंतन के लिए उपयुक्त परमाणुओं की एक राशि होती है। वह परमाणु राशि हमारे चिंतन में सहयोग करती है। उसको ग्रहण किए बिना हम कोई भी चिंतन नहीं कर सकते। उस राशि के परमाणुओं के भावी परिवर्तन के आधार पर मन:पर्यवज्ञानी भविष्य में होने वाले विचार को भी जान सकता है।

मनुष्य का व्यक्तित्व दो आयामों में विकसित होता है। उसका बाहरी आयाम विस्तृत और निरंतर गतिशील होता है। उसका आंतरिक आयाम संकुचित और निष्क्रय होता है। उसके बाहरी आयाम की व्याख्या स्थूलशरीर, वाणी, मन और बुद्धि के आधार पर की जाती है। उसके आंतरिक आयाम की व्याख्या सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर, प्राणी-शक्ति, प्रज्ञा (अतीन्द्रि चेतना) और अमूर्च्छा के आधार पर की जाती है। बाहरी व्यक्तित्व से हमारा घनिष्ट संबंध है। उसमें बुद्धि का स्थान सर्वोपरि है इसलिए वह हमारे चिंतन की सीमा बन गयी। उससे परे पराविद्या की भूमिका है। पराविद्या का पहला चरण है बुद्धि की सीमा का अतिक्रमण। जैसे ही प्रज्ञा का जागरण होता है, बुद्धि की सीमा अतिक्रांत हो जाती है। इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है। बाहरी व्यक्तित्व इस सीमा से आगे नहीं जा सकता। इस सीमा को पार करते ही मनुष्य का आंतरिक व्यक्तित्व उजागर हो जाता है। वहां प्राण-शक्ति प्रखर होती है और चेतना सूक्ष्म। बुद्धि की सीमा में पदार्थ के प्रति मूर्च्छा का न होना सम्भव नही माना जाता किंतु प्रज्ञा की सीमा में समता का भाव निर्मित होता है और अमूर्च्छा संभव बन जाती है। पराविद्या के क्षेत्र मे प्राण-ऊर्जा और अतीन्द्रिय चेतना का अध्ययन किया गया है किंतु अमूर्च्छा या वीतरागता उसके अध्ययन का विषय अभी नहीं बन पाया है। यह परामनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा हो सकती है।

अमूर्च्छा का विधायक अर्थ है—समता। उसका विकास होने पर अतीन्द्रिय चेतना अपने आप विकसित होती है। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले लोग केवल अतीन्द्रिय चेतना के विकास की खोज में लगे हुए हैं। यह खोज बहुत लम्बी हो सकती है और अनास्था भी उत्पन्न कर सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अतीन्द्रिय चेतना की स्पष्टता के लिए शरीरगत चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाना होता है। संयम और चरित्र की साधना जितनी पुष्ट होती है, उतनी ही उनकी निर्मलता बढ़ती जाती है। चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाने का सबसे सशक्त साधन है ध्यान। अतीन्द्रियज्ञान के धुंधले रूप चरित्र के विकास के बिना भी संभव हो सकते हैं किंतु अतीन्द्रिय चेतना के विकास के साथ चरित्र के विकास का गहरा सम्बंध है। यहां चरित्र का अर्थ समता है, राग-द्वेष या प्रियता-अप्रियता के भाव से मुक्त होना है। उसकी अभ्यास पद्धति प्रेक्षा-ध्यान है।

2.15 भावतंत्र का परिष्कार

अग्रमस्तिष्क (फ्रंटल लॉब) कषाय या विषमता का केन्द्र है। अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र भी वही है। जैसे-जैसे विषमता समता में रूपान्तरित होती है वैसे-वैसे अतीन्द्रिय चेतना विकसित होती चली जाती है। उसका सामान्य बिन्दु प्रत्येक प्राणी में विकसित होता है। उसका विशिष्ट विकास समता के विकास के साथ ही होता है। मनुष्य के आवेगों और आवेशों पर हाइपोथेलेमस का नियंत्रण है। उससे पिनियल और पिच्यूटरी ग्लैण्ड्स प्रभावित होते हैं। उनका स्राव एड्रीनल ग्लैण्ड को प्रभावित करता है। वहां आवेश प्रकट होते हैं। ये आवेग अतीन्द्रिय चेतना को निष्क्रिय बना देते हैं। उसकी सक्रियता के लिए हाइपोथेलेमस और पूरे ग्रन्थितंत्र को प्रभावित करना आवश्यक होता है। ग्रन्थितंत्र का संबन्ध मनुष्य के भावपक्ष से है। भावपक्ष का सृजन इस स्थूल-शरीर से नहीं होता। उसका सृजन सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर से होता है। सूक्ष्म शरीर से आने वाले प्रतिबिम्ब और प्रकंपन हाइपोथेलेमस के द्वारा ग्रन्थितंत्र में उतरने हैं। जैसा भाव होता है, वैसा ही ग्रन्थियों का स्राव होता है और स्राव के अनुरूप ही मनुष्य का व्यवहार और आचरण बनाता है। यह कहने में कोई जटिलता नहीं लगती कि मनुष्य के वयवहार और आचरण का नियंत्रण ग्रन्थितंत्र करता है और ग्रंथितंत्र का नियंत्रण हाइपोथेलेमस के माध्यम से भावतंत्र करता है और भावतंत्र सूक्ष्म शरीर के स्तर पर सूक्ष्म-चेतना के साथ जन्म लेता है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन की पवित्रता से भावतंत्र प्रभावित होता है और उससे ग्रन्थितंत्र का स्राव बदल जाता है। उस रासायनिक परिवर्तन के साथ मनुष्य का व्यवहार और आचरण भी बदल जाता है। यह परिवर्तन मनुष्य की अतीन्द्रिय चेतना को सक्रिय बनाने में बहुत सहयोग करता है।

2.4 अतीन्द्रिय शक्ति-योगज उपलब्धियां एवं मन:प्रभाव

2.4.1 जैन दर्शन का दृष्टिकोण

2.4.1.1 ऋद्धि और लब्धि

ध्यान, तप और भावना — ये तीनों शक्ति के स्रोत हैं। इनके द्वारा वीतरागता उपलब्ध होती है, चैतन का शुद्ध स्वरूप उपलब्ध होता है, मोक्ष उपलब्ध होता है। इनकी धारा जिस दिशा में प्रवाहित होती है वही दिशा उदघाटित हो जाती है। इनसे साधक को अनेक प्रकार की ऋद्धियां या लब्धियां भी प्राप्त होती हैं। ये सामान्य व्यक्ति में नहीं होती, इसलिए इन्हें अलौकिक या लोकोत्तर कहा जाता है। कुछ लोग इन्हें चमत्कार मानते है। पूर्वाभास, दूरबोध, वस्तुओं का इच्छाशक्ति से निर्माण और परिचालन, स्पर्श से भयानक बीमारियों को मिटाना-ये सब चमत्कार जैसे लगते है। चमत्कार का खंडन करने वालों का कहना है कि ये बातें नहीं हो सकती। ये प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध हैं। जिन लोगों ने ध्यान के क्षेत्र में अभ्यास किया है वे लोग इस चमत्कारवाद को स्वीकार नहीं करते। उनका अभिमत है कि ये सब चमत्कार नही है। ये सारी घटनाएं प्राकृतिक नियमों के आधार पर ही घटित होती है। जिन लोगों को इन विषयों में प्राकृतिक नियमों का ज्ञान नहीं है वे ही इन्हें चमत्कार कह सकते हैं। ध्यान की परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। ध्यान के आचार्यों ने अनेक प्राकृतिक नियमों की खोज की है। जो कुछ घटित होता है, वह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं है, किंतु प्रकृति के सूक्ष्म नियमों का अवबोध है। रेडियो-तरंगों के संचार-क्रम के नियमों को नहीं जानने वाला दूर-श्रवण को चमत्कार मान सकता है। उसकी दृष्टि में दूर-दर्शन भी एक चमत्कार ही है। किंतु एक वैज्ञानिक के लिए वह कोई चमत्कार नहीं है। 'क्ष' किरणों के कारण ठोस वस्तु से पार देखा जा सकता है। तब पार-दर्शन की शक्ति को चमत्कार कैसे माना जाए? हम इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करेंगे कि मनुष्य के शरीर में अनेक रासायनिक द्रव्य हैं। वे विविध संयोगों में बदलते रहते हैं। भावना के द्वारा शारीरिक विद्युत् और रासायनिक द्रव्यों में परिवर्तन होता है। ध्यान और तपस्या के द्वारा भी ऐसा घटित होता है। इन आंतरिक परिवर्तनों की सायनशास्त्र के नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है। रसायनशास्त्र के सब नियम ज्ञात हो चुके हैं — यह नहीं कहा जा सकता। ऐसे अनेक नियम हो सकते हैं जो आज भी ज्ञात नहीं हैं। सब नियम ज्ञात हो जाएंगे, यह गर्वोक्ति सुदूर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भविष्य में भी नहीं की जा सकती। इस स्थिति में जिन आंतरिक ॠद्धियों को हम चमत्कार की संज्ञा देते हैं, इसकी अपेक्षा उचित यह होगा कि उन्हें हम प्रकृति के सूक्ष्म नियमों की जानकारी के फलित की संज्ञा दें। इन ऋद्धियों आध्यात्मिक कहना भी बहुत संगत नहीं लगता। कुछेक ऋद्धियां आध्यात्मि हो सकती हैं, जैसे—केवलज्ञान। किंतु सभी ऋद्धियां आध्यात्मि नहीं हैं। बहुत सारी पौद्गलिक या भौतिक हैं। वे अंतर्जगत में या आंतरिक साधनों से उपलब्ध होती हैं, इसलिए उन्हें अलौकिक कहा जा सकता है किंतु अपौद्गलिक या आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता।

2.4.2 सही दिशा

दो साधक एक बार मिले। एक को जल पर बैठने की सिद्धि प्राप्त थी। उसने कहा—'आओ, जल पर बैठें।' दूसरे को आकाश में बैठने की सिद्धि प्राप्त थी। उसने कहा—'आओ, आकाश में ही बैठें।' अपनी बात को मोड़ देते हुए उसने फिर कहा—'जल पर बैठने में क्या बड़ी बात होगी? मछलियां उसी में रहती हैं। आकाश में बैठने का क्या महत्त्व होगा? पक्षी आकाश में ही रहते हैं। महत्त्व की बात यह होगी कि हम अध्यात्म का और अधिक विकास करें, समभाव को बढ़ाएं और वीतरागता की दिशा में गतिशील बनें।'

ध्यान से मनुष्य दो दिशाओं में गतिशील होता है। एक दिशा है वीतरागता की और दूसरी दिशा है ऋद्धियों की। वीतरागता आध्यात्मिक उपलब्धि है और ऋद्धि चैतन्य और पुद्गल के संयोग से होने वाली उपलब्धि है। वह ध्यान-साधना के प्रासंगिक फलरूप में भी होती है और ध्यान, भावना आदि को विशेष दिशा में प्रवाहित करने पर भी होती है। वह पौद्गलिक इसलिए है कि वनौषधि से भी उपलब्ध होती है। सभी ऋद्धियां वनौषधि से प्राप्त नहीं होतीं, कुछेक होती हैं, फिश्र भी वनौषधि से वे प्राप्त होती हैं इसलिए वे पौद्गलिक हैं। वचन-सिद्धि ध्यान-भावना आदि से भी प्राप्त होती है और वनौषधि के प्रयोग से भी प्राप्त होती है। दूरदर्शन, पूर्वजन्म की स्मृति और ऋद्धियां वनौषणि से भी उपलब्ध होती हैं। इसलिए वे पौद्गलिक हैं। वे मंत्र-साधना के द्वारा भी प्राप्त होती हैं। ध्वनि के स्पंदन और उसमें से उत्पन्न होने वाली विद्युत् से शरीर और मन में अनेक परिवर्तन होते हैं। मंत्र, औषधि आदि से जो ऋद्धियां उपलब्ध होती हैं, वे आध्यात्मिक प्रक्रिया नहीं है।

2.4.3 लब्धियों की विचित्र शक्ति

तीन शब्द हैं—मनोबली, वचनबली और कायबली। जिस साधक को मनोबल लब्धि प्राप्त होती है वह अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्वों का परावर्तन कर सकता है। जिसे वचनबल लब्धि प्राप्त है वह पूर्व की ज्ञान राशि का उच्चारण अंतर्मुहूर्त में कर सकता है। यह बात बुद्धिगम्य नहीं होती, किंतु कम्प्यूटर के अविष्कार ने इस बात को बुद्धिगम्य बना डाला, समस्या का हल कर डाला। विद्युत की गति 186000 मील प्रति सैकण्ड है कम्प्यूटर इतनी ही तीव्र गति से गणित का विकल्प कर लेता है।

कम्प्यूटर के पास विद्युत शक्ति है तो चतुर्दशपूर्वी के पास तैजस् शक्ति है। उसका तैजस् शरीर इतना विकसित है और तेजस् शरीर भी पौद्गलिक है। लब्धि, अद्धि, योगज, उपलब्धि, प्रतिहार्य, अतिशय, वचनातिशय आदि का जितना विशद विवेचन जैन साहित्य में उपलब्ध है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। इस वर्णन का सार यह है कि चेतना की आंतरिक शक्तियों को विकसित कर समस्त पौद्गलिक जगत् को प्रभावित किया जा सकता है। चेतना जनित भौतिक बल जिसे "Psycho-physical Force" कहा जा सकता है के विभिन्न प्रभाव उक्तलब्धि आदि शक्तियों में प्रतिलक्षित होते हैं।

कुछ प्रमुख लब्धियां इस प्रकार हैं—

1. केवलज्ञान—पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान।
2. अवधिज्ञान—आंशिक अतीन्द्रिय ज्ञान।
3. मनःपर्यवज्ञान—मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान।
4. बीजबुद्धि—एक बीज-पद को प्राप्त कर उसके सहारे अनेक पदों और अर्थों को जानने की क्षमता।
5. कोष्ठबुद्धि—गृहीत पद और अर्थ की ध्रुव-स्मृति।
6. पदानुसारित्व—एक पद के आधार पर पूरे श्लोक या सूत्र को जानने की क्षमता।
7. संभिन्नस्रोत—1. किसी भी एक इंद्रिय के द्वारा सभी इंद्रियों के विषयों को जानने की क्षमता।
    2. सब अंगों से सुनने की क्षमता।
    3. अनेक शब्दों को एक साथ सुनने और उसका अर्थबोध करने की क्षमता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. दूर-आस्वादन — दूर से आस्वाद लेने की क्षमता।

9. दूर-दर्शन — दूरस्थ विषयों को दखने की क्षमता।

10. दूर स्पर्शनप — दूरस्थ विषयों को स्पर्श करने की क्षमता।

11. दूर-घ्राण — दूरस्थ गंध को सूंघने की क्षमता।

12. दूर-श्रवण — दूरस्थ शब्द को सुनने की क्षमता।

13. चारण और आकाशगामित्व —

* जंघा-चारण — सूर्य की रश्मियों को आलंबन ले आकाश मे उड़ने की क्षमता। एक ही उड़ान में लाखों योजन दूर तथा हजरों योजन ऊंचा चला जाना। धरती से चार अंगुल ऊपर पैरों को उठाकर चलना।

* व्योम-चारण — पद्मासन की मुद्रा में आकाश में उड़ने की क्षमता।

* जल-चारण — जल के जीवों को कष्ट दिए बिना समुद्र आदि जलाशयों पर चलने की क्षमता।

* पुष्प-चारण — वनस्पति को कष्ट दिए बिना फूलों के सहारे चलने की क्षमता।

* श्रेणी-चारण — पर्वतों के शिखरों पर चलने की क्षमता।

* अग्निशिखा-चारण — अग्नि की शिखा का आलंबन ले चलने की क्षमता।

* धूम-चारण — धूम की पंक्ति के सहारे उड़ने की क्षमता।

* मर्कटतंतु-चारण — मकड़ी के जाल का सहरा ले चलने की क्षमता।

* ज्योतिरश्मि-चारण — सूर्य, चांद या अन्य किसी ग्रह-नक्षत्र की रश्मियों को पकड़कर ऊपर जाने की क्षमता।

* वायु-चारण — हवा के सहारे ऊपर उड़ने की क्षमता।

* जलद-चारण — मेघ के सहारे चलने की क्षमता।

* अवश्याय-चारण — ओस के सहारे उड़ने की क्षमता।

14. आमर्ष-औषिधि — हस्त, पाद आदि के स्पर्श से व्याधि के अपनयन की क्षमता।

15. क्ष्वेलौषधि — थूक के व्याधि के अपनयन की क्षमता।

16. जल्लोषधि — मेल से व्याधि के अपनयन की क्षमता।

17. मलौषधि — कान, दांत आदि के मेल से व्याधि के अपनयन की क्षमता।

18. विप्रुडौषधि — मल-मूत्र से व्याधि के अपनयन की क्षमता।

19. सर्वौषधि — शरीर के सभी अंग, प्रत्यंग, नख, दंत आदि से व्याधि के अपनयन की क्षमता।

20. जिसे ये औषधि-ऋद्धियां (14 से 19) प्राप्त होती हैं, उसके अवयवों में रोग को दूर करने क क्षमता विकसित हो जाती है और उसके थूक, मेल, मल, मूत्र आदि सुरभित हो जाते हैं।

21. दृष्टिविष — दृष्टि के द्वारा दूसरे में विष व्याप्त करने की क्षमता।

22. क्षीरास्रवी — 1. हाथ के स्पर्श मात्र से विरस भोजन को दूध, मधु, घी और अमृत

23. मध्वास्रवी की भांति सरस करने की क्षमता।

24. सर्पिरास्रवी — 2. दूध, मधु, घी और अमृत की भांति मन को आह्लादित और शरीर

25. अमृतास्रवी को रोमांचित करने की क्षमता।

26. अक्षीणमहानस — हाथ के स्पर्श मात्र से भोजन को अखूट करने की क्षमता।

27. मनोबलीको रोमांचित करने की क्षमता।क्षणभर में विपुल श्रुत और अर्थ को चिंतन की मानसिक क्षमता।

28. वाग्बलीको रोमांचित करने की क्षमता। ऊंचे स्वर से सतत श्रुत का उच्चारण करने पर भी अश्रांत रहने की क्षमता।

29. कायबली — महीनों तक एक ही आसन में बैठे या खड़े रहने की क्षमता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

30. वैक्रिय — इसके अनेक प्रकार हैं —

1. अणिमा — शरीर को छोटा बनाने की क्षमता।

2. महिमा — शरीर को बड़ा बनाने की क्षमता।

3. लघिमा — शरीर को वायु से भी हल्का बनाने की क्षमता।

4. गरिमा — शरीर को भारी बनाने की क्षमता।

5. अप्रतिघात — ठोस पदार्थों में भी अस्खलित गति करने की क्षमता।

6. कामरूपित्व — एक साथ अनेक रूपों के निर्माण की क्षमता।

31. आहारक — एक पुतले का निर्माण कर यथेष्ट स्थन पर भेजन की क्षमता।

32. तेजस् — शारीरिक विद्युत् के द्वारा अनुग्रह और निग्रह करने की क्षमता। यह हठयोग और तंत्रशास्त्र में प्रसिद्ध कुंडलिनी शक्ति है।

लब्धियां व्यक्ति को हर दृष्टि से सम्पन्न बनाती हैं। ये परमार्थ एवं लोक दोनों क्षेत्रों में लब्धि- धारी की अतिशय क्षमता को प्रकट करा देते हैं। जिन लोगों ने ध्यान के क्षेत्र में विकास किया है वे किसी प्रकार के चमत्कार को नहीं मानते। अभ्यास से सब कुछ सम्भव है बशर्ते वह सही दिशा मे किया जाए।

इस पाठ का यही उद्देश्य है कि सही दिशा में कदम उठे और अतीन्द्रिय शक्ति एवं सोई हुई शक्तियों की जगाने की दिशा में प्रयत्न किया जाए।

2.5 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. विभिन्न धर्म दर्शनों में पुनर्जन्म की चर्चा किस रूप में और किस प्रकार की गयी है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अध्यात्मवाद की भौतिकवादसे तुलना करें।
2. अढ़ाई वर्ष की बालिका के पूर्व जन्म की स्मृति की विवेचना करें।
3. अतीन्द्रियप्रत्यक्षण शक्ति क्या है? बताइये।
4. अतीन्द्रिय ज्ञान के सम्बंध में जैन दृष्टिकोण प्रस्तुत करें।
5. अतीन्द्रियय चेतना का प्रकटीकरण कैसे होता है?
6. अतीन्द्रियचेतना के विकास की क्या प्रक्रिया है?
7. लब्धियों की विचित्र शक्ति को संक्षेप में समझाइये।

संदर्भ पुस्तक:

1. जैनदर्शन और विज्ञान — मुनि महेन्द्रकुमार जेठालाल एस झवेरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3 : विज्ञान के संदर्भ में जैन जीवन शैली

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 जैन जीवन शैली
 3.2.1 शैली का तात्पर्य
 3.2.2 जीवनशैली का तात्पर्य
 3.2.3 आहार शुद्धि और व्यसनमुक्त जीवन
 3.2.4 दूषित आहार का परिणाम है—राग
3.3 उपवास आदि तप
 3.3.1 आहार और अनाहार
 3.3.2 उपवास
 3.3.3 वैज्ञानिक दृष्टि से उपवास का मूल्य
 3.3.4 उपवास चिकित्सा
 3.3.5 उपवास शरीर में क्या करता है
 3.3.6 विभिन्न रोग और उपवास
 3.3.7 उपवास की अवधि
 3.3.8 उपवास में सावधानी
 3.3.9 भोजन में कमी करना (ऊनोदरी तप) एवं अस्वाद वृत्ति (वृत्ति संक्षेप तप)
 3.3.10 रात्रि भोजन का परिहार
 3.3.11 रस परित्याग
 3.3.12 चीनी और नमक का नियंत्रण
 3.3.13 कुछ प्रयोग
3.4 शाकाहार बनाम मांसाहार
 3.4.1 मांसाहार का निषेध क्यों?
 3.4.2 आम्लों की विनाशलीला
 3.4.3 कार्बोहाइड्रेट
 3.4.4 प्रोटीन
 3.4.5 चर्बी
 3.4.6 मनुष्य की प्राकृतिक शरीर रचना
 3.4.7 मांसाहार : रोगों का जन्मदाता
 3.4.8 हृदयरोग व उच्च रक्तचाप
 3.4.9 मांसाहार से कैंसर
 3.4.10 अन्य बीमारियाँ
 3.4.11 महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य
 3.4.12 शाकाहार के गुण
 3.4.13 आर्थिक दृष्टि
 3.4.14 पर्यावरण
3.5 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना

वर्तमान समय में विज्ञान मनुष्य के सामने चमत्कार की भांति उपस्थित है। लोग विज्ञान के चमत्कार के आगे जीवन शैली को गौड़ कर देते हैं। व्यवस्थित जीवन शैली के अभाव में लोग शारीरिक व मानसिक उलझनों में फंस जाते हैं ऐसी स्थिति में लोग जीवन शैली की ओर लौटना पड़ता है, तब उन्हें तलाश होती है कि उनकी जीवन शैली कैसी हो? जैन जीवन शैली एक जीवनोपयोगी जीवन शैली है। संयम समता सहअस्तित्व समन्वय इस जीवन शैली के श्रृंगार हैं शुद्ध शाकाहार इस शैली की भोजन सम्बंधी प्राथमिकता है। प्रस्तुत पाठ में इन्ही सारी विशेषताओं को प्राथमिक जानकारी दी जा रही है—

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी निम्न उपशीर्षकों का विशेष अध्ययन करके विज्ञान के संदर्भ जैन जीवन शैली के सम्बंध में परिचित होंगे।

3.2 जैन जीवन शैली

जैन धर्म की एक विशेष जीवन शैली है। जैन जीवन पद्धति में जिस प्रकार की जीवनचर्या का विकास हुआ उसका अपना महत्त्व है। भगवान् महावीर ने श्रमण व श्रावक दोनों वर्ग के लिए अलग-अलग जीवन-दर्शन दिया है। श्रमणों के लिए महाव्रत का मार्ग है तथा श्रावक वर्ग या सामान्यजन के लिए अणुव्रत का मार्ग। जैनों की चर्या में मन, वचन और कर्म तीनों के संयम का महत्त्व सर्वविदित है इसीलिए कहा गया है **'संयमः खलु जीवनम्'** अर्थात् संयम ही जीवन है। इसीलिए करू नहीं, कराऊ नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से, कर्म से इस संकल्प का जैन धर्म में विशेष महत्त्व है। जैन खाद्य संयम को महत्त्व देते हैं। इसके पीछे जैनाचार्यों के सुदीर्घ प्रयत्न का बहुत बड़ा योगदान रहा है। खाद्य में अहिंसा का पूर्ण ध्यान, मद्य मांस का पूर्णरूपेण परित्याग जैनत्व की पहचान है।

3.2.1 शैली का तात्पर्य

वस्तुत: शैली का अर्थ है अभिव्यक्ति का एक प्रकार, काम करने का ढंग आदि। जैन जीवन के दो रूप मिलते हैं—साधु और श्रावक। साधु का जीवन एकांगी अर्थात् एक आयामी होता है। उसके जीवन में साधना पक्ष प्रधान होता है जबकि गृहस्थ को साधना के अतिरिक्त व्यवहार जगत में जीना पड़ता है। उसे घरेलू खर्च चलाने हेतु अनेक प्रकार का श्रम करना भी अपेक्षित होता है इसलिए उसके चारों ओर खिंचाव का वातावरण बना रहता है। उसे व्यक्तित्व, परिवारगत, समाजगत, राष्ट्रगत, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन जीना होता है। उसके सामने अनेक संकल्प-विकल्प होते हैं, जो बनते और बिगड़ते रहते हैं। वह बहुआयामी व्यक्तित्व को कैसे जिए? अपनी समस्याओं के समाधान को कैसे जुटाये इसके लिए उसे एक निश्चित शैली अपनानी पड़ती है जो जीवन को जटिलताओं के घेरे से निकालकर सरलता की ओर ले जाती है।

3.2.2 जीवन शैली का तात्पर्य

ऊपर बताया गया कि अभिव्यक्ति के प्रकार या काम करने के ढंग को शैली कहते हैं। जीवन शैली के संदर्भ में शैली की व्युत्पत्ति शील शब्द से समझी जाती है। शील का अर्थ चरित्र या स्वभाव से है। स्वभाव व व्यवहार को जो स्थायित्व प्रदान करे वह शैली कहलाती है। जीवन को सम्यक् रूप से चलाने वाली कार्यप्रणाली (Lifestyle) का नाम ही जीवन शैली है।

जैन जीवन शैली यह बताती है कि जैन गृहस्थ का जीवन व्यवहार कैसा हो? जीवन का तरीका कैसा हो? साधना पद्धति कैसी हो? शराब-मांस वर्जन प्राचीन समय से ही जैन संस्कारों में सम्मिलित है। इस कार्य के प्रचार के लिए प्राचीन समय से ही आचार्यों ने समाज को जागरूक किया यथा—

1. शराब नहीं पीना,
2. मांस नहीं खाना,
3. जुआ नहीं खेलना,
4. शिकार नहीं करना,
5. चोरी नहीं करना,
6. वेश्यागमन नहीं करना,
7. परस्त्रीगमन नहीं करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपरोक्त बिंदु जीवन शैली के अंग जैन श्रावक के स्वभाव व्यवहार एवं संस्कार के विषय बन गये।

3.2.3 आहार शुद्धि और व्यसनमुक्त जीवन

जैन जीवन शैली का प्रमुख अवयव है आहार शुद्धि और व्यसन वर्जन। व्रत और उपवास, मांसाहार का त्याग, नशे का त्याग इस जीवन शैली के प्राथमिक उपचार हैं।

प्रसिद्ध कथन है 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन' अर्थात् मन का निर्माण अन्न से प्रभावित होता है, अशुभ अन्न अशुभ प्रवृत्ति, शुभ अन्न शुभ प्रवृत्ति तथा शुद्ध अन्न शुद्ध प्रवृत्ति का निर्माण करता है इसलिए आहार-विवेक आध्यात्मिक साधना का भी सोपान बनता है। आहार विवेक मनुष्य को स्वस्थ रखता है इसीलिए कहा गया है **'स्वस्थे चित्ते बुद्धय: स्फुरन्ति'** अर्थात् स्वस्थ चित्त में बुद्धियां स्फुरित होती हैं। ऊपर कहा गया अशुभ अन्न अशुभचित्त का निर्माण करता है इसका अर्थ है दूषित आहार। अत: दूषित आहार पर विचार करना आवश्यक है।

3.2.4 दूषित आहार का परिणाम है — राग

द्वेष दूषण है राग रोग। दूषण युक्त आहार में अत्यधिक राग रोग को जन्म देता है। शरीर में दूषणयुक्त अर्थात् विषद्रव्यों का परिणमन रोग के रूप में होता है जो शरीर को कमजोर बनाकर अपना प्रभाव कायम कर लेता है। विषद्रव्यों के कारक तत्त्व हैं — अयोग भोजन, विषैली दवाइयां, अतिशय श्रम, अति काम-वासना, अतिभय, अतिचिंता, मानसिक तनाव, अनिंद्रा आदि। इन विषद्रव्यों से राग रोग को जन्म देता है क्योंकि रोग अवरोधक क्षमता (Resistence power) को कम कर देते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहर-नीहार, आसन-प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान तथा आहार संयम करते रहने की आवश्यकता है।

हमारे शरीर का प्रत्येक अवयव ऊतक से तथा प्रत्येक ऊतक कोशिका से निर्मित होता है। कोशिकाओं में चलने वाली जैविक क्रियाओं से विष द्रव्य की उत्पत्ति होती है। यदि इन विष द्रव्यों का नीहार नहीं होता तो उस स्थिति को विषाक्तता (टोक्सीमिया) कहा जाता है। रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता से विष द्रव्यों का नीहार होता है। उदाहरणत: — जुकाम से शरीर श्लेष्म के रूप में विष द्रव्यों का बाहर निष्कासन करता रहता है। खाने-पीने की गलत आदत, स्वाद-परकता, शरीर विज्ञान के बोध के अभाव के कारण मनुष्य अपने शरीर के साथ अत्याचार करता है और वह अस्वस्थ हो जाता है।

संतुलित भोजन के दो गुण हैं — 1. स्वास्थ्य 2. साधना। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार का बहुत बड़ा महत्त्व है इसलिए कहा गया है कि शरीर धर्म करने का आदि साधन है — **'शरीरमाद्यं खलुधर्म साधनम्'** अर्थात् स्वस्थ शरीर से ही धर्म की साधना भी संभव है। साधना के बिना न लौकिक निष्पत्ति ही संभव है, न ही परमार्थ। शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार है संतुलित भोजन। संतुलित भोजन के घटक हैं — प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज, लवण, क्षार और विटामिन्स। जब ये उचित मात्रा में ग्रहण किए जाते हैं तब शरीर स्वस्थ और क्रिया करने में सक्षम रहता है।

भोजन के सम्बन्ध में कहा गया है — **'हित् भुक् मित भुक्'** अर्थात् हितकर और सीमित भोजन करो। एक आचार्य जी ने लिखा है —

''हिय हारा मियाहारा अप्पाहारा यजे नारा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा।।''

जो हित मित (अल्प मात्रा) भोजन करते हैं उनकी चिकित्सा वैद्य नहीं करते वे स्वयं अपने चिकित्सक होते हैं। स्वास्थ्य के साथ-साथ साधना से भोजन का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। कषायों को उपशान्त करने वाला आहार साधना के मार्ग को प्रशस्त करता है। अन्तवृत्तियों को मूर्च्छित करने वाली वस्तुएं साधक के लिए निषिद्ध हैं। मांस, मद्य, कषैला, अति स्वादयुक्त भोजन वृत्तियों को मूर्च्छित करता है जबकि शुद्ध शाकाहारी संतुलित भोजन अन्तर्वृत्तियों को विकसित करता है। एक प्रकार का आहार, विचार, भाषा, मन को स्वस्थ बनाता है, दूसरे प्रकार का अस्वस्थ।

विज्ञान के संदर्भ में जैन जीवन शैली का अध्ययन हम दो भागों में करेंगे — पहला भाग है उपवास आदि तप, दूसरा भाग है शाकाहार बनाम मांसाहार।

3.3 उपवास आदि तप

जैसाकि ऊपर कहा गया संतुलित आहार और आध्यात्मिक साधना अन्योन्याश्रित है। जैन जीवन शैली में तप एक महत्त्वपूर्ण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आध्यात्मिक साधना है। तप कर्म संस्कारों से मुक्ति एवं निर्जरा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। निर्जरा के बारह प्रकार हैं — छह बाह्य, छह आंतरिक।

बाह्य तप हैं — उपवास, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन (बाधा रहित एकान्त स्थान में रहना), कायक्लेश (ठंडक-गर्मी आदि कष्टों को सहना)।

आंतरिक तप हैं — प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य (योग्य साधनों को जुटाकर अपने आपको काम में लगाकर सेवाशुश्रूषा करना), स्वाध्याय, व्युत्सर्ग (अहंता और ममता का त्याग करना) और ध्यान (चित्त के विक्षेपों का त्याग)।

प्रथम चार बाह्य तपों का सम्बन्ध भोजन से है। खाना जितना महत्त्वपूर्ण है 'नहीं खाना' भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। संतुलित आहार से जहां शरीर को पोषण मिलता है वहीं उपवास से पाचन तंत्र और अन्तर्वृत्तियों को आराम।

'खाना', 'नहीं खाना', कब, कैसे और कितना खाना, मधुर और स्निग्ध खाना या रूखा-सूखा खाना आदि-आदि अनेक प्रश्नों का सम्यक् उत्तर है आहार-विवेक।

3.3.1 आहार और अनाहार

कब आहार करें? कब आहार नहीं करें? इसका विवेचन होना आवश्यक है। यह स्वत: विचारणीय प्रश्न है कि हम जीने के लिए खाते हैं या खाने के लिए जीते हैं। जिसके मन में पहले प्रकार की धारणा है कि हम जीने के लिए खाते हैं, उसके लिए जीवन का कोई उद्देश्य होगा और आहार संयम या अनाहार की बात सरलता से लागू हो जायेगी। जिसके मन में दूसरे प्रकार की धारणा है कि हम खाने के लिए जीते हैं, उसके लिए खाना प्रधान है जीवन गौण। जहां जीवन गौण है वहां अनाहार या मिताहार की बात सरलता से समझ में नहीं आयेगी।

शरीर में जितने काम-केन्द्र, वासना-केन्द्र, आवेग-केन्द्र और स्मृति-केन्द्र हैं वे भोजन को प्राप्त कर उत्तेजित होते हैं। भोजन को प्राप्त कर जो केन्द्र उत्तेजित होते हैं अनाहार या उपवास का अर्थ है उनकी उत्तेजना को शान्त करना। हम भोजन नहीं करते तो इसका प्रभाव केवल स्थूल शरीर पर ही नहीं होता, सूक्ष्म शरीर पर भी होता है। सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर के माध्यम से शक्ति प्राप्त होती है। वह स्थूल शरीर से ऐसा काम करवाता है कि उसे शक्ति प्राप्त हो सके। स्थूल शरीर शक्ति का स्रोत है और उसी से सूक्ष्म और कर्मशरीर को शक्ति प्राप्त होती है। जब भूखा रहता है स्थूल शरीर तब चोट सहता है सूक्ष्म शरीर, इसीलिए जब भोजन बंद होता है तो परेशानी होती है सूक्ष्म शरीर को।

3.3.2 उपवास

जब तक हम उपवास के महत्त्व को नहीं समझेंगे, भोजन की समस्या का कोई समाधान नहीं निकलेगा। हमें जितनी भूख लगती है उसे चार भागों में बांट देना चाहिए। दो भाग भोजन के लिए, एक भाग पानी के लिए तथा एक भाग वायु के लिए छोड़ देना चाहिए। भोजन के समन्वय में हमारा अज्ञान बहुत सारी समस्याओं को जन्म देता है। खाना जरूरी है, तो उसके साथ-साथ 'उपवास' और नहीं खाना भी जरूरी है। जो उपवास करते हैं उनमें सहज ही सहिष्णुता तथा संकल्पशक्ति का विकास हो जाता है।

आयुर्वेद का मानना है कि सप्ताह में एक बार उपवास अवश्य होना चाहिए। हम चिड़ियाघरों में देखते हैं सिंह आदि पशुओं का पाचन शुद्ध रखने हेतु सप्ताह में एक बार आहार नहीं दिया जाता है। उपवास एक चिकित्सा है। उपवास-चिकित्सा पर पश्चिम में अच्छी पुस्तकें लिखी गयी हैं। उपवास के पूर्व के दिन हल्का भोजन फिर उपवास और पारणा के दिन भी हल्का भोजन ऐसा उपवास वास्तव में प्रयोग बनता है।

उपवास के सम्बंध में भगवान् महावीर लोगों को यों सचेत करते हैं — मृत्यु के समय तुम्हारा खाया छूटेगा ही इसलिए मृत्यु से पूर्व खाना छोड़कर आत्मानुभूति का अभ्यास करो। आत्मानुभूति का अभ्यास तभी होगा जब आत्मा भिन्न और शरीर भिन्न है का ज्ञान होगा। उपवास कितना करना चाहिए इसके विषय में वे कोई निश्चियनय से बात नहीं करते बल्कि जहां तक आनन्दानुभूति हो वहां तक उपवास करो। जो उपवास आनन्दानुभूति नहीं कराता भगवान् की अनुमति उसके लिए नहीं है। साधना की बात बहुत लोग आसन-प्राणायाम से शुरू करते हैं जबकि महावीर उसे अनशन-अनाहार से शुरू करते हैं।

3.3.3 वैज्ञानिक दृष्टि से उपवास का मूल्य

डॉ. ज्होन कीथ वेंडो द्वारा लिखित पुस्तक — "Study Young-Reduce your rate of Aging" में अपने वैज्ञानिक प्रयोगों की चर्चा के दौरान बताया गया कि —

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. यह प्रमाण द्वारा सिद्ध है कि उपवास से वृद्धावस्था रूकती है। चूहों पर जब इसके प्रयोग किये गये तब आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये। चूहों के एक दल को भोजन की अत्यधिक सुविधा हो गयी, दूसरे दल को सामान्य, नियमित एवं नियंत्रित मात्रा में भोजन दिया गया तथा तीसरे दल को एक दिन भोजन (सामान्य एवं नियंत्रित मात्रा में) एवं एक दिन उपवास पर रखा गया। दूसरे दल के चूहे पहले से दीर्घजीवी हुए तथा तीसरे दल वाले दूसरे से भी बहुत अधिक दीर्घजीवी हुए।

2. उपवास के दौरान शरीर का ''इम्यूनालोजिकल सिस्टम'' शक्तिशाली होता है। इस तंत्र में काम करने वाले रक्त के श्वेत कणों, जिन्हें फेगोसाइट्स और लिम्फो साइट्स कहा जाता है, की कार्यक्षमता में अद्भुत वृद्धि होती है। लिम्फोसाइट्स के दो प्रकारों—बी कार्यक्षमता में अद्भुत वृद्धि होती है। लिम्फोसाइट्स के दो प्रकारों—बी सेल्स और टी सेल्स जो आगन्तुक कीटाणु या विषाणुओं का प्रतिप्रकार करते हैं की कार्यक्षमता में वृद्धि होने से शरीर में जमा होने वाले विजातीय तत्त्वों का शोधन सम्भव हो जाता है। इन विजातीय तत्त्वों के जमाव का परिणाम ही है—कोशिकाओं का वृद्ध होना, जो अन्ततोगत्वा मनुष्य को वृद्ध बना देती है।

3. कैंसर जैसी खतरनाक कोशिकाओं की सफाई में उपवास बहुत उपयोगी है।

डॉ. बेडो ने स्वयं 3½ वर्ष तक एकान्तर उपवास कर पाया कि इससे स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। चूहों के प्रयोगों से यह बात भी सामने आयी कि जहां तीसरे दल के चूहे दो वर्ष के बच्चों की तरह कूद-फांद मचा रहे थे, वहां पहले दल वाले बूढ़े की भांति शिथिल और थके-मांदे नजर आ रहे थे। डॉ. बेडो ने उपवास के दौरान शरीर में होने वाले जैव रासायनिक परविर्तनों के आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाले हैं।

आजकल तो चिकित्सा के क्षेत्र में भी उपवास को मान्यता मिल गयी है। जैन धर्म मूल में शरीर विज्ञान नहीं है। वह तो आत्मविज्ञान है। चूंकि आत्मा शरीर में रहती है इसलिए शरीर के सम्बंध में बहुत सारी चर्चा हुई है। जैसा कि लुई हुक ने कहा है स्वस्थ शरीर वही है जो आवेग मुक्त हो। महावीर भी साधना के लिए आवेगमुक्त शरीर की आवश्यकता बताते हैं। जब तक शरीर आवेगयुक्त होगा तब तक उसमें स्वस्थ आत्मा का निवास न हो सकेगा। उपवास से आवेगों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

3.3.4 उपवास चिकित्सा

उपवास से चिकित्सा होती है, इसमें कोई विस्मय करने की आवश्यकता नहीं है। डॉ. एडवर्ड हुकर डेवी ने 'The Non-break-fast and Fasting Cure' नाम की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनका कहना है—बीमारी में जबरदस्ती खाने और दवाएं लेने की अपेक्षा उपवास अधिक लाभप्रद है।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से लम्बे तथा छोटे—दोनों ही प्रकार के उपवासों का विधान है। छोटे उपवास अर्थात् तीन दिन के उपवास उससे ज्यादा दिन के उपवास बड़े उपवास कहलाते हैं। उपवासकाल में कभी-कभी भोजन की इच्छा, बेचैनी या कमजोरी महसूस होती है पर ये सारी स्थितियां अस्थायी हैं।

प्रो. दूहरिट ने अपनी पुस्तक 'Diet and Healing System' में लिखा है—उपवास काल में जो कमजोरी महसूस होती है वह भोजन का अभाव नहीं है, अपितु शरीर में एकत्र मत का विनाश होता है। शरीर की शुद्धि हो जाने के बाद शरीर में पुन: शक्ति आ जाती है।

अपनी जिह्वा के स्वाद तथा अप्राकृतिक आदतों के कारण हमारे शरीर में अनेक प्रकार का विजातीय कचरा इकट्ठा हो जाता है। उसके प्रभाव से मुक्त होने के लिए उपवास ही करना चाहिए। डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने अपनी पुस्तक 'सरल प्राकृतिक चिकित्सा' में उपवास के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

3.3.5 उपवास शरीर में क्या करता है

शरीर की अन्तर्ज्वलन-क्रिया के कारण ही हमारा शरीर एक खास तापक्रम तक गरम रहता है। इसे तेजस् शरीर कहा जा सकता है किंतु इस ज्वलन क्रिया को जारी रखने के लिए हमेशा ईंधन की जरूरत होती है। यह ईंधन कार्बोहाइड्रेट्स व चर्बी से मिलता रहता है। उपवास में जब बाह्य ईंधन मिलना बन्द हो जाता है तो शरीर में संग्रहीत पदार्थ अग्नि में जलने लगता है। इसीलिए कहा गया है उपवास शरीर की भीतरी गन्दगी का नाश कर देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपवास का महत्त्व समझने पर उससे आस्था पैदा होती है वही आस्था उपवास काल में कमजोरी का अनुभव नहीं होने देती। उपवास में भूख लगने पर जल पी लेने से भूख का असर कम हो जाता है। ज्यों-ज्यों शरीर में अंदरूनी सफाई होती जाती है। शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति, उत्साह और निरोगता अनुभव होने लगती है।

उपवास के समय शरीर में जमे पदार्थों का छीजन निम्न प्रकार से होता है। प्रतिदिन 1 पौण्ड शरीर का वजन कम होता है, जिसमें चर्बी 89%, जिगर 62%, तिल्ली 57%, मांसपेशियां 31%, मस्तिष्क या तंतु 0 प्रतिशत। इस छीजन के कारण शरीर में कुछ कमजोरी आती है किंतु मस्तिष्क बिल्कुल नही छीजता, इसलिए सोच-विचार की शक्ति बढ़ती है, नींद अच्छी आती है। विचार सात्विक होने लगते हैं।

3.3.6 विभिन्न रोग और उपवास

दमा, बढ़ा हुआ रक्तचाप, बवासीर, एग्जिमा, मधुमेह ऐसे रोग माने जाते हैं जिनका कोई निश्चित इलाज नही होता। ऐसे में उपवास और परहेज अपना चमत्कारपूर्ण असर दिखाता है। अनेक केस ऐसे होते हैं जिन्हें वैद्य-हकीम असाध्य मानकर जबाव दे देते हैं, वे प्राय: उपवास या प्राकृतिक चिकित्सा से ठीक हो जाते हैं। कब्ज तथा कब्ज से होने वाले रोग उपवास से प्राय: ठीक हो जाते हैं।

3.3.7 उपवास की अवधि

1 दिन से लेकर सात दिन तक का उपवास छोटा उपवास कहलाता है। सात दिन से अधिक समय का उपवास लम्बी श्रेणी का उपवास है।

उपवास की अवधि रोगों के अनुसार नहीं अपितु रोगियों को हालत के मुताबिक तय की जाती है। रोग का पुराना या नयापन रोगी के शरीर की शक्ति, रोग की गहराई, रोगी की मानसिक स्थिति आदि जांच कर ही उपवास की अवधि निश्चित की जाती है। लम्बे से लम्बा उपवास जब विधिवत् किया जाता है तब उससे खतरा कभी नहीं पैदा होता है।

अनेक व्यक्तियों ने 2-2 माह के उपवास सफलतापूर्वक किये हैं।

3.3.8 उपवास में सावधानी

उपवास हर रोग को ठीक कर सकता है पर हर रोगी को नहीं। जिस रोगी की जीवनशक्ति का बहुत क्षय हो चुका होता है उसका व्रत का कोई फायदा नहीं। उपवास का मूल्यांकन गलत न हो, इसलिए सावधानी रखनी चाहिए। जहां तक हो सके उपवास में खुले बदन धूप और हवा में बैठना चाहिए।

भगवान् महावीर ने एक दिन के उपवास से लेकर छह महीने तक के उपवास को 'अनशन' की संज्ञा दी है। 'अनशन' भूख-हड़ताल नहीं है, महावीर इसके विरुद्ध हैं। उपवास के संदर्भ में महावीर का लक्ष्य आत्मदर्शन है, उन्होंने स्वयं दो दिन से लेकर छह महीने तक के उपवास किए और उस समय से आत्मचिंतन व ध्यान करते थे। यद्यपि उन्होंने स्वयं तो अपनी तपस्या बिनापानी चौविहार ही की है, पर उनकी तपोयात्रा में पानी पीकर भी तपस्या करने का विधान है।

3.3.9 भोजन में कमी करना (ऊनोदरी तप) एवं अस्वाद वृत्ति (वृत्ति संक्षेप तप)

यदि कोई उपवास न कर सके तो उसके लिए अन्य तपों का विधान किया गया है, जिनमें ऊनोदरी और वृत्तिसंक्षेप उल्लेखनीय हैं। ऊनोदरी का तात्पर्य है—भोजन में कमी करना, भूख से अधिक न खाना। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है—ऐसे विशेष संकल्प स्वीकार करना जिसमें अस्वादवृत्ति का विकास हो। जो कुछ सहज भाव से मिल जाये उसे खाते समय स्वादभावना से मुक्त रहना वृत्ति-संक्षेप है। आधुनिक शरीरशास्त्र की दृष्टि से सामान्य रूप से स्वस्थ और साधारण श्रम करने वाले व्यक्ति को दिन भर में 2500 कैलोरी ताप उत्पन्न करने वाले भोजन की आवश्यकता होती है। महावीर ने उसे 32 ग्रास की संज्ञा दी है।

महात्मा गांधी ने अपनी 'स्वास्थ्य साधना' नाम की छोटी-सी पुस्तक में लिखा है—''पशु-पक्षियों का जीवन देखिए। वे कभी स्वाद के लिए नहीं खाते और न इतना अधिक खाते हैं कि पेट फटने लगे। वे केवल अपनी भूख मिटाने भर को ही खाते हैं। जो उन्हें प्राकृतिक रूप से मिलता है उसे ही खाते हैं। क्या यह अच्छी बात है कि मनुष्य केवल पेट की उपासना करे?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वास्तव में यदि मनुष्य भी प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं को उसी रूप में खाये, भूख से अधिक न खाये, स्वाद के लिए न खाये तो वह पशु-पक्षियों की तरह रोग-मुक्त रह सकता है।

आंध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के डॉ. प्रो. सूर्यनारायण ने कहा है—''यह बात बिल्कुल सही है कि जिस व्यक्ति को अपने आपको स्वस्थ बनाये रखने की इच्छा है उसे जिह्वा का दास नहीं बनना चाहिए और न ही उसे अंधाधुंध अनियंत्रित रूप से खाते ही रहना चाहिए। जो व्यक्ति अपने शरीर पर अवांछित दबाव नहीं डालता वह निश्चित ही रोग मुक्त रहता है।'' दो भोजन के बीच में काफी समय का अन्तर रखते हुए थोड़ा कम खाना अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। चीन में एक विख्यात दार्शनिक लिन्ड ताड ने बिल्कुल सच कहा है—हमारा जीवन भगवान् पर आश्रित नहीं है वह हमारे रसोइयों पर आश्रित है।

3.3.10 रात्रि भोजन का परिहार

रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए यह भगवान् महावीर की विशेष सूचना है। रात्रि भोजन से अंधकार में बहुत सारे जीव जंतुओं की हिंसा की संभावना तो होती ही है पर इसके अतिरिक्त पाचन की दृष्टि से भी इसकी अपनी उपयोगीता है। दिन रहते-रहते खाने पर भोजन के पाचन पर सूर्य की गर्मी का प्रभाव रहता है। अच्छे पाचन के लिए मस्तिष्क क्रियाशील और सचेत रहना आवश्यक है तो अच्छी नींद के लिए खाली पेट रहना आवश्यक है।

जब व्यक्ति को सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तब वह निष्क्रिय हो जाता है। व्यक्ति द्वारा किये गये भोजन का पाचन तैजस् शरीर से होता है। तैजस् शरीर सूर्य की रोशनी से सक्रिय होता है। सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तो पाचन की सक्रियता कम पड़ जाती है इसलिए रात को खाने वाला अपच से बच नहीं सकता।

दूसरा कारण जब सूर्य का आतप रहता है तब कीटाणु बहुत सक्रिय नहीं होते। बीमारी जितनी रात में सताती है उतनी दिन में नहीं। वायु का प्रकोप रात में अधिक होता है। ये सारी बीमारियां रात में इसलिए सताती हैं क्योंकि रात में सूर्य का प्रकाश और ताप नहीं होता।

3.3.11 रस परित्याग

रस परित्याग का सामान्य अर्थ है—दूध दही, घी, चीनी, मिठाई तथा तेल इन छह विकृतियों (विगय) का त्याग। प्रवृत्तियों में विकार न उत्पन्न हो इसलिए महावीर बार-बार रूखे-सूखे भोजन की याद दिलाते हैं। इसीलिए वे कहते हैं—

रसा पगामं न निसेवियव्वा,
भुत्तारसा वित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति,
दुमं जहा सादफलं व पक्खी।।

प्रकाम (अतिवांछित) रसों का आसेवन मत करो। वे रस मनुष्य के लिए उत्तेजक होते हैं। वे मनुष्य को उसी प्रकार परेशान करते हैं जैसे मधुर फलों वाले वृक्ष को पक्षी। आहार उतनी मात्रा में ही सरस रहे जिससे संतुलन बना रहे।

कुछ लोगों का मानना है कि स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दूध आदि की आवश्यकता है। संतुलित भोजन की दृष्टि से एक हद तक इनकी आवश्यकता हो सकती है। आज दक्षिण अमेरिका की पहाड़ियों तथा घाटियों में, जार्जिया आदि के गांवों में अनेक शतायु व्यक्ति मिलते हैं उनसे बातचीत करने पर पाया गया है कि उनके जीवन का रहस्य सीधा-सादा भोजन तथा तनाव मुक्त जीवन है। तली हुई चीजें हमारे पाचन-तंत्र को नुकसान पहुंचाती हैं। बहुत सारे लोग बहुत सारी चीजों को केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से ही खाते हैं। मिर्च-मसाले, हींग आदि ऐसी अनेक चीजें आदमी के भोजन में प्रविष्ट हो गयी हैं जिनकी शरीर के लिए उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी जीभ के लिए है। दालें, शक्कर, घी का उपयोग कम से कम किया जाना उत्तम स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। स्वास्थ्यपूर्ण भोजन में रासायनिक खाद्यों का भी निषेध है। जिस अन्न में समस्त खनिज-लवण स्वाभाविक हों वही पूर्ण स्वास्थ्यप्रद भोजन है।

3.3.12 चीनी और नमक पर नियंत्रण

चीनी, नमक और चिकनाई—ये तीनों ही भोजन के अनिवार्य अंग बने हुए हैं। इनके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। हृदय की बीमारी में तीना निषिद्ध माने जाते हैं। बहुत चीनी का प्रयोग भी न हो, बहुत चिकनाई का प्रयोग भी नहीं और नमक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का प्रयोग भी सर्वथा न हो तो बहुत अच्छा है। स्वास्थ्य के लिए चीनी आवश्यक है किंतु वह स्वत: दुग्ध आदि पदार्थों में होती है। हमारे शरीर को जो शर्करा (ग्लूकोज) चाहिए वह बाजार में मिलने वाली चीनी में बहुत कम है। दानेदार शर्करा में जो मिठास होता है वह हमारे शरीर में सीधे काम नहीं आती है। उसे पचाने के लिए उल्टा हमारे शरीर को काम करना पड़ता है इसलिए वह लाभ की अपेक्षा हानि अधिक करती है।

नमक का ज्यादा प्रयोग भी स्वास्थ्य को कमजोर बनाता है। इस सलाह के पीछे मुख्य आधार यह है कि नमक कुछ लोगों के रक्तचाप को बढ़ा देता है। लगभग 20 प्रतिशत लोग जिसमें बच्चे भी शामिल हैं, उच्च रक्तचाप से पीड़ित रहते हैं। कुछ अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि अधिक नमक खाने से हृदय रोग, पेट के कैंसर, सिरदर्द आदि की आशंका रहती है।

3.3.13 कुछ प्रयोग

आयंबिल एक तपस्या है क्योंकि उसमें केवल एक अनाज और पानी का प्रयोग किया जाता है। भयंकर बीमारियां आयंबिल से नष्ट होती हैं। पक्षाघात का बीमारी में आयंबिल व्रत कारगर सिद्ध होता है। अजीर्ण और अपच की बीमारी इससे ठीक होती है। आयंबिल में 'नमक' का भोजन नहीं होता, रोटी-साग दोनों स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं किंतु वे तब स्वास्थ्य के लिए और भी लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं जब उन्हें अलग-अलग करके चबाया जाये। स्वास्थ्य का मूल सिद्धान्त है कि भोजन को जितना चबाया जाए उतना ही अच्छा है। जो अधिक चबाकर भोजन करता है उसे अधिक खाने की जरूरत भी नहीं पड़ती। पांच रोटियां उतना काम नहीं करती जितना की एक-डेढ़ रोटी यदि उन्हें उतना ही अधिक चबाया जाए। नहीं चबाने का परिणाम होता है कि दांत और आंत दोनों खराब होती हैं। पशु भी अपने द्वारा खाये गये चारे को जुगाली करके पुन: चबाते हैं। यह उनके मजबूत दांत और स्वास्थ्य का राज है।

3.4 शाकाहार बनाम मांसाहार

अन्न, शाक-सब्जी एवं दूध इत्यादि का आहार शाकाहार है। चर जीवधारियों का हनन कर उनके शरीर का भक्षण मांसाहार है।

3.4.1 मांसाहार का निषेध क्यों?

हमारा जीवन आहार पर आधारित है। सारी की सारी प्रवृत्तियां आहार पर आधारित हैं, जैसी प्रवृत्ति वैसा असंस्कार, जैसा संस्कार वैसा विचार, जैसा विचार वैसा व्यवहार। व्यवहार हमारी कसौटी है। व्यवहार के आधार पर हमारा मूल्यांकन होता है। अच्छा व्यवहार, अच्छे विचार, अच्छे संस्कार, अच्छे आहार के बिना नहीं हो सकते। इसलिए धर्माचार्यों ने आहारशुद्धि को प्राथमिकता दी। आहार हमारे जीवन की अनिवार्यता है। हम वह न खायें जिसकी अनिवार्यता नहीं है। वनस्पति आहार की अनिवार्यता है क्योंकि उसमें हिंसा का अल्पीकरण, स्वास्थ्य और सात्विक संस्कार का संरक्षण रहता है। मांसाहार में ये तीनों चीजें नहीं हैं। आधुनिक शरीरशास्त्री आहार और स्वास्थ्य शास्त्री अपने अन्वेषणों के आधार पर यह बताते हैं कि मांसाहार अप्राकृतिक उत्तेजना उत्पन्न करता है, सहनशीलता को कम करता है, धमनियों और शरीर के तंतुओं के लचीलेपन को नष्ट कर आयु को कम करता है।

क्रूरता, क्षणिक आवेश, अधैर्य— ये मांसाहार केसहज परिणाम हैं। शाकाहार का कोई विकल्प नहीं है जो मनुष्य को जीवित रख सके। मांसाहार का विकल्प है— शाकाहार। शाकाहारी मांस नहीं खाता पर मांसाहारी अनाज और फल, साग-सब्जी खाते हैं। अनाज और मांस दोनों की तुलना में मांस का भोजन मनुष्य को अधिक क्रूर बनाता है क्योंकि मनुष्य जितना मांस को प्राप्त करने में क्रूर बनता है, उतना मांस प्राप्त करने में क्रूर नहीं बनता। मांस पशु के शरीर का अभिन्न भाग है, जिसके कण-कण में तामसिक वृत्तियां उभरती हैं। मनुष्य में पाशविकता, अज्ञान, प्रमाद और क्रूरता के बढ़ने का बहुत बड़ा कारण है— मांसाहार।

मांसाहार के निषेध की चर्चा पहले अहिंसा के दृष्टिकोण से की जाती थी, अब वह अन्तर्वृत्तियों के सुधार के दृष्टिकोण से की जा रही है। मन शान्त और पवित्र रहे, उत्तेजनाएं कम हों— यह अनिवार्य अपेक्षा है। इसके लिए आहार का विवेक होना जरूरी है। बिलखते हुए मूक प्राणी की निर्मम हत्या क्रूर कर्म है, मांसाहार इसका बहुत बड़ा निमित्त है।

विश्व के हर कोने से वैज्ञानिक व डॉक्टर यह चेतावनी दे रहे हैं कि मांसाहार कैंसर आदि असाध्य रोगों का निमित्त बनकर आयुक्षीण करता है और शाकाहार अधिक पौष्टिकता व रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह भी वैज्ञानिक सत्य है कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पशुओं के मारने से पूर्व उनके शरीर में पल रहे रोगों की उचित जांच नहीं की जाती और उनके शरीर में पल रहे रोग मांस खाने वाले के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, फिर जिस त्रास व यंत्रणापूर्ण वातावरण में इनकी हत्या की जाती है उस वातावरण से उत्पन्न हुआ तनाव, भय, छटपटाहट, क्रोध आदि पशुओं के मांस को जहरीला बना देता है। वह जहरीला रोगग्रस्त मांस मांसाहारी के उदर में जाकर उसे असाध्य रोगों का शिकार बनाता है।

3.4.2 अम्लों की विनाशलीला

हितकर, सीमित और सात्विक आहार ग्रहण किये जाने पर बाहर से विषद्रव्यों को बाहर निकालने में भी सहायता मिलती है। शरीर में चयापचय की क्रिया के परिणामस्वरूप हमारे शरीर में यूरिक एसिड, लेक्टिक एसिड आदि अम्ल पैदा होते हैं। ऐसे पदार्थ भोजन में न लें जिनसे कि अम्लों में वृद्धि हो अन्यथा इन अम्लों को निष्क्रिय करने के लिए क्षार की मात्रा पर्याप्त न होने से, अम्ल अवशिष्ट रह जायेगा जो हानिकारक ही सिद्ध होता है।

3.4.3 कार्बोहाइड्रेट

यदि भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो उससे कार्बन–डाई– ऑक्साइड की उत्पत्ति बढ़ जाती है, जिससे शरीर में कार्बोनिक एसिड पैदा होता है, जो एक विषद्रव्य रूप में शरीर को नुकसान पहुंचाता है।

3.4.4 प्रोटीन

भोजन में प्रोटीन का जो हिस्सा होता है उससे चयापचय के परिणामस्वरूप यूरिक ऐसिड का निर्माण होता है। अत्यधिक श्रम से शरीर में लेक्टिक ऐसिड की मात्रा बढ़ जाती है। इन अम्लों को शरीर से यथाशीघ्र निष्कासित करना चाहिए। सोडियम, पोटेशियम, केल्शियम ओर मेग्नेशियम क्षारों की पर्याप्त मात्रा रक्त प्रवाह में रखने के लिए इन द्रव्यों से युक्त पदार्थ भोजन द्वारा ग्रहण करना आवश्यक है। यदि भोजन द्वारा इनकी आपूर्त्ति नहीं होती है तो हमारे भीतर के क्षार भण्डार जैसे अस्थियां, पृष्ठ रज्जु लीवर आदि में से उन्हें निकालकर रक्त प्रवाह में भोजन पड़ता है। फल, सब्जी, भाजी, क्षारान्त हैं तथा दाल, अन्न आदि अम्लान्त हैं। दूध नवजात शिशुओं के लिए क्षारान्त है, वयस्कों के लिए वह अम्लान्त बन जाता है। इस प्रकार अम्लान्त भोजन की तुलना में पर्याप्त मात्रा में क्षारान्त भोजन होने से ही व्यक्ति 'अम्लों' की विनाशीलीला से बच सकता है।

3.4.5 चर्बी

भोजन में यदि स्नेह या चर्बी (वसा) की मात्रा सीमा से अधिक होती है तो आंतों में उसका रूपान्तरण फ्री–फेटी एसिड के रूप में होता है। इसे निष्क्रिय करने के लिए पित्त या अन्य— सोडियम, पोटेशियम आदि के क्षारों का अतिरिक्त मात्रा में व्यय करना पड़ेगा जोएक दुर्व्यय है। यदि ये क्षार पर्याप्त न हों तो एसिटोन–डाइ–एसेटिक एसिड जैसे अति विषैले विष द्रव्यों का संग्रह शरीर में बढ़ेगा, जो मृत्यु का भी कारण बन सकता है।

3.4.6 मनुष्य की प्राकृतिक शरीर रचना

शरीर का अंग	मांसाहारी	शाकाहारी
1. दांत	नुकीले	चपटी दाढ़ वाले
2. पंजे	तेज नाखुन वाले	नाखुन तेज नहीं
3. जबड़े की गति	केवल ऊपर हिलते हैं	ऊपर नीचे, दाएं-बाएं, सब ओर हिलते हैं
4. चबाने की क्रिया	बगैर चबाए भोजन निगलते हैं	भोजन चबाने के बाद निगलते हैं
5. जीभ	खुरदरी (Rough)	चिकनी (Smooth)
6. पानी पीने की क्रिया	जीभ बाहर निकालकर	जीभ बिना बाहर निकाले, होठों से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. आंतें	लंबाई कम, शरीर की लम्बाई के बराबर धड़ की लम्बाई से 6 गुनी, आतें छोटी होने के कारण वे मांस के सड़ने व विषाक्त होने से पहले ही उसे बाहर फेंक देती हैं।	लंबाई अधिक, शरीर की लंबाई से 4 गुनी, धड़ की लंबाई से 12 गुनी, इसके कारण मांस को जल्दी बाहर नहीं फेंक पाती।
8. लीवर, गुर्दे	अनुपात में बड़े, ताकि मांस का व्यर्थ मादा आसानी से निकाल सकें।	अनुपात में छोटे, ताकि मांस का व्यर्थ मादा आसानी से बाहर से बाहर नहीं निकल सके।
9. पाक अंग में हाइड्रेक्लोराइड एसिड	मनुष्य की अपेक्षा दस गुना अधिक जिससे मांस आसानी से पच जाता है।	कम, मांस आसानी से नही पचा सकता

शाकाहारी जीवों जैसे प्राकृतिक स्तर पर शाकाहारी व प्राकृतिक स्तर पर शाकाहरी, मांसाहारी जीवों की शरीर रचना भिन्न-भिन्न होती है।

प्रकृति ने मनुष्य की बनावट गाय, घोड़ा, ऊंट, जिराफ, सांड आदि शाकाहारी पशुओं के समान ही की है। उसे शाकाहारी पदार्थों को ही सुगमता व सरलता से प्राप्त कर सकने व पचाने की क्षमता दी है। मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्धारित शरीर रचना व स्वभाव के विपरीत भी कार्य करता है। शेर भूखा होने पर भी शाकाहारी पदार्थ नहीं खाता और गाय भूखी होने पर भी मांसाहार नहीं करती। जो मनुष्य प्रकृति के विपरीत मांसाहार करते हैं उन्हें भी कुछ न कुछ शाकाहारी पदार्थ लेने ही पड़ते हैं। एक माह केवल मांसाहार शरीर में इतना अधिक तेजाब व विष (Acid and Toxins) उत्पन्न कर देगा कि मनुष्य के शरीर की संचालन क्रिया ही बिगड़ जायेगी। ऐसकीमों जो परिस्थितिवश प्राय: मांसाहार पर ही रहते हैं उनकी औसत आयु सिर्फ 30 वर्ष ही है।

3.4.7 मांसाहार :रोगों का जन्मदाता

भगवान् महावीर ने मांसाहार को हिंसा तथा भावलेश्या की मलीनता की दृष्टि से हेय माना है। किसी भी निरीह प्राणी की हत्या का निषेध सभी धर्मों ने किया है।

शरीर और मन की दृष्टि से भी मांसाहार पर आज बहुत विचार हो चुका है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि मांसाहार शरीर की दृष्टि से हानिकारक है। हाल ही में मांस बढ़ाने के लालच से ब्रिटेन में गायों को चर्बी खिलाई गयी। गायों में मांस तो बढ़ा किंतु गायें असाध्य रोग से रोगी हो गयी और बाद में उन लाखों-लाखों गायों की हत्या की गयी।

शाकाहार में तन्तुमय पदार्थ अधिक रहते हैं, उनसे पेट को साफ करने में मदद मिलती है। शरीर के विषाक्त पदार्थ उनके सहारे से बाहर निकल आते हैं। जब भी आहार में तंतुमय पदार्थों की कमी रहती है बड़ी आंत का कैंसर और दूसरी बीमारियां होने की शक्यता बढ़ जाती है।

स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफैलों, में की गयी शोध से यह प्रकाश में आया कि अमरीका में 47,000 से भी अधिक बच्चे हर साल ऐसे जन्म लेते हैं जिनके माता-पिता के मांसाहारी होने के कारण कई बीमारियां जन्म से लगी होती हैं और ये बच्चे बड़े होने पर भी पूर्णत: स्वस्थ नही हो पाते।

3.4.8 हृदयरोग व उच्च रक्तचाप

हृदयरोग व उच्च रक्तचाप के लिए जिम्मेदार कारण है रक्त वाहिनियां की तहों में कोलेस्ट्रोल का जमा होना। 1985 के नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी डॉ. माइकल एस. ब्राउन व डॉ. जोसेफ एल. गोल्डनस्टीन ने यह प्रमाणित किया है कि हृदय रोग से बचाव के लिए कोलेस्ट्रोल नामक पदार्थ को जमने से रोकना है। कालेस्ट्रोल वनस्पति में नहीं के बराबर होता है। यह अण्डों में सबसे अधिक तथा मांस व अण्डों में होता है। 100 ग्राम अण्डा प्रतिदिन लेने का अर्थ जरूरत से ढ़ाई गुना अधिक कोलेस्ट्रोल होना है। जो व्यक्ति मांस व अण्डे खाते हैं उनके शरीर में 'रिस्पटरों' की संख्या में कमी हो जाती है जिससे रक्त के अन्दर कोलेस्ट्रोल की मात्रा अधिक हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ब्रिटेन के डॉ. एम. रॉक ने एक सर्वेक्षण अभियान के दौरान स्पष्ट किया ''शाकाहारियों में संक्रामक और घातक बीमारियां मांसाहारियों की अपेक्षा कम पायी जाती है। शाकाहारी मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ व छरहरे बदन, शांत प्रकृति व चिंतनशील होते हैं।''

पश्चिमी देशों में जहां मांसाहार का प्रचलन अधिक है वहां दिल का दौरा, कैंसर, ब्लडप्रैशर, मोटापा, गुर्दे के रोग, कब्ज, संक्रामक रोग, पथरी, जिगर की बीमारी आदि घातक बीमारियां अधिक होती हैं जबकि भारत, जापान में अपेक्षाकृत कम होती हैं।

3.4.9 मांसाहार से कैंसर

जीवित प्राणियों के शरीर से विषैले पदार्थों का निष्कासन मलमूत्र के द्वारा होता है। प्राणी के मारे जाने पर हृदय की गति रूक जाने से उसके शरीर से विषैले पदार्थों का निष्कासन भी रूक जाता है। जो भी उस विषैले मांस को खाता है स्वाभाविक है कि मांस के विषाणु शरीर में संचित हो जाएंगे। गायों आदि जानवरों को मोटा ताजा बनाने के लिए B.E.S. नाम की दवाई दी जाती है उन गायों के मांस के सेवन से कैंसर की संभावना बढ़ जाती है।

एक सर्वेक्षण से यह पता चला कि मांसाहार करने वाले 25 देशों में से 19 देशों की मृत्यु संख्या बहुत ऊंची है 5 देशों की मृत्यु-संख्या मध्यम एक देश की मृत्यु संख्या नीची है तथा उन देशों में जहां लोग शाकाहार करते हैं कैंसर बहुत कम पाया जाता है। ईजिप्ट में काले रंग वाली शाकाहारी जातियों में कैंसर नहीं के बराबर है जबकि मांसाहार जाति में इंग्लैण्ड के बराबर ही है।

आस्ट्रेलिया, जहां सर्वाधिक मांस भोजन खाया जाता है और जहां प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष 130 किलो गोमांस (Beaf) की खपत है, वहां आंतों का कैंसर सर्वाधिक है। Do Andrew Gold ने अपनी पुस्तक 'Diabetes: Its Couses and Treatment' में शाकाहारी भोजन की ही सलाह दी है।[1]

आंतों का अलसर, अपैंडिसाइटिस आंतों और मलद्वार का कैंसर (Uleceative calitis. Appendicitis. Cartinoma of coton and rectum) ये रोग शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारियों में अधिक पाये जाते हैं।

3.4.10 अन्य बीमारियां

डॉ. ए. वाचमैन और डॉ. डी.एस. वर्नसीन ने हार्वर्ड मेडिकल स्कूल रिपोर्ट, 1969, पृ. 459 मे लिखा है—

* मांसाहार पाचन संस्थान को खराब करता है क्योंकि वह मुंह की लार की प्रतिक्रिया को क्षार से अम्ल में परिवर्तित कर देता है।

* मांसाहार जिन असाध्य रोगों को जन्म देता है उनमें से कुछ इस प्रकार है—

1. मिर्गी (Epilepsy) इन्फेक्टेड मांस से होने की संभावना है।

2. गुर्दे की बीमारियां (Kidney Diseases) मांसाहार अधिक प्रोटीनयुक्त होने से गुर्दे खराब करता है।

3. संधिवात, गठिया आदि (Rheumatoid arteritis, gout etc.)—मांसाहार खून से यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ाता है इससे ये बीमारियां हो सकती हैं—

(a) एथेरोस्क्लेरोसिस—रक्त धमनियों का मोटा होना—यह बीमारी मांसाहार में विद्यमान पोलीसेचुरेटेड फेट्स कोलेस्टेरोल से होती है।

(b) आंतों का सड़ना—अण्डा, मांस आदि खाने से पेचिस मंदाग्नि आदि बीमारियां घर कर जाती हैं।

(c) विषावरोधी शक्ति का क्षय—मांस अण्डा खाने से शरीर की विषावरोधी शक्ति नष्ट होती है। कुछ अमरीकी व इंग्लैण्ड के डॉक्टरों ने तो अण्डे को मनुष्य के लिए जहर कहा है।

(d) त्वचा के रोग, एग्जीमा, मुंहासे आदि—त्वचा की रक्षा के लिए विटामिन 'ए' का सर्वाधिक महत्त्व है, जो गाजर, टमाटर, हरी सब्जियों आदि में ही बहुतायत होता है।

(e) अन्य रोग जैसे माइग्रेन इन्फैक्शन से होने वाले रोग, स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बंधी रोग आदि भी मांसाहारियों में ही अधिक पाये जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.4.11 महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य

1. ग्वालियर के दो शोधकर्त्ताओं डॉ. जसराजसिंह और श्री सी.के. डवास के ग्वालियर जेल के 400 बंदियों पर शोध कर यह बताया कि 250 मांसाहारी बंदियों में से 85% चिड़चिड़े स्वभाव के व झगड़ालू टाइप के निकले जबकि बाकी 150 शाकाहारी बंदियों में से 90% शांत स्वभाव के और खुशमिजाज थे।

2. अमरीकी विशेषज्ञ डॉ. विलियम, सी. राबर्टस का कहना है कि वहां मांसाहारी लोगों में दिल के मरीज ज्यादा हैं। उनके मुकाबले शाकाहारी लोगों में दिल के मरीज कम होते हैं।

3. जीव वध में पहले पशु, पक्षी, मछलियां आदि के स्वास्थ्य की पूरी जांच की जाती और उनके शरीर में छुपी हुई बीमारियों का पता नहीं लगाया जाता। अण्डे पशु-पक्षी, मछलियां भी कैंसर ट्यूमर आदि अनेक रोगों से ग्रस्त होते हैं और उनके मांस के सेवन से मनुष्य में रोग प्रवेश कर जाते हैं।

4. हैल्थ एजूकेशन काउंसिल के अनुसार विषाक्त भोजन (Food Poisoning) से होने वाली 90% मौतों का कारण मांसाहार है।

5. जब पशु बूचड़खाने में कसाई के द्वारा अपनी मौत को पास आते देखता है तो वह डर दहशत से कांप उठता है। मृत्यु को समीप देखकर वह एक-दो दिन पूर्व आहार त्याग देता है। डर घबराहट से उसका मल बाहर निकल जाता है। मल जब खून में जाता है तो जहरीला व नुकसान दायक बन जाता है। जब मनुष्य उसका मांस खाता है तो उससे भी एड्रीनल प्रवेश कर उसे घातक रोगों की ओर धकेल देता है। एड्रीनल के साथ जब क्लोरिनेटेड हाइड्रोकार्बन लिया जाता है तब तो यह हार्ट-अटैक का गंभीरतम खतरा उत्पन्न कर देता है।

6. अमेरिका के डॉ. ई.बी. एमारी तथा इंग्लैण्ड के डॉ. इन्हा ने अपनी विश्व विख्यात पुस्तकों 'पोषण का नवीनतम ज्ञान' और 'रोगियों की प्रकृति' में साफ-साफ माना है कि अण्डा मनुष्य के लिए जहर है।

7. इंग्लैण्ड के डॉ. आर.जे. विलियम का निष्कर्ष है—'संभव है अण्डा खाने वाले शुरू से अधिक चुस्ती अनुभव करें किंतु बाद में उन्हें हृदयरोग एक्जीमा, लकवा जैसे भयानक रोगों का शिकार हो जाना पड़ता है।'

3.4.12 शाकाहार के गुण

1. शाकाहारी भोजन से न केवल उच्च कोटि के प्रोटीन प्राप्त होते हैं अपितु अन्य आवश्यक पोषक तत्त्व विटामिन, खनिज, कैलोरी आदि भी अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं।

2. गैंहूं, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के साथ यदि उचित मात्रा में दालों और हरी सब्जियों का सेवन किया जाये तो संतुलित आहार प्राप्त होता है।

3. जापान में किये गये एक अध्ययन से यह पता चला है कि शाकाहारी न केवल स्वस्थ और निरोग रहते हैं अपितु उनकी बुद्धि तेज व दीर्घजीवी होते हैं।

4. नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ न्युट्रीशन, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित (Nuritive Value of Indian Foods) में बताया गया है कि मांसाहारी पदार्थों में (Fibre) की मात्रा बिल्कुल नहीं है। Fibre रोगों को रोकने में अत्यधिक महत्त्व रखता है।

5. शाकाहारी भोजन के महत्त्व को जानकर अब पाश्चात्य देशों में शाकाहार आंदोलन तेज हो रहा है।

3.4.13 आर्थिक दृष्टि (Economic Point of View)

विभिन्न पदार्थों में प्रोटीन की प्रतिशत की जो तालिका है उसके अनुसार एक ग्राम प्रोटीन की कीमत इस प्रकार आती है—

पदार्थ	1 ग्राम प्रोटीन की कीमत
अण्डे से	14 पैसे
गेहूं से	4 पैसे
दालों से	3 पैसे
सोयाबीन से	2 पैसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि ऊर्जा (कैलोरीज) की दृष्टि से देखें तो 100 कैलोरीज पर व्यय इस प्रकार आता है —

पदार्थ	**100 कैलोरीज पर व्यय**
अण्डे से	90 पैसे
गेहूं से	9 पैसे
दालों से	8 पैसे
सोयाबीन से	5 पैसे

तालिका से स्पष्ट है कि अण्डे की अपेक्षा अनाज में प्रोटीन अधिक मात्रा में कम दाम से मिल जाता है। शाकाहार में मांसाहार की अपेक्षा अधिक विटामिन्स, खनिज, फाइबर, कार्बोहाइड्रेट इत्यादि अलग प्राप्त होते हैं जो मांसाहारी पदार्थों में नहीं के बराबर हैं।

1. औसत एक अमरीकी करीब 120 कि.ग्रा. मांस प्रतिवर्ष खाता है। इसे प्राप्त करने के लिए करीब 1 टन अनाज खर्च होता है। यदि वह सीधा 120 किलो अनाज इस्तेमाल करे तो इससे 8 व्यक्तियों का खर्च चल सकता है।

2. प्रोफिसट नार्ज बौर्गस्टोर्म के अनुमान के अनुसार केवल अमेरिका में पशु-जगत् जितनी वनस्पति-फ्रूट खर्च करता है उतने में विश्व की आधी आबादी पेट भर सकती है।

3. गाय, बैल आदि पशुओं के गोबर से खाद गैस ऊर्जा आदि की जो अतिरिक्त प्राप्ति होती है उन सबका यदि हिंसाब लगाया जाये तो उन पशुओं को मारकर उनका मांस लेना वैसा ही कृत्य है जैसाकि सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का पेट काटना।

4. मुम्बई ह्यूमैनिटेरियन लीग के आनरेरी सैक्रेटरी दशरथ भाई ठक्कर के अनुसार पशुजगत् हमारी राष्ट्रीय सम्पदा में प्रतिवर्ष 25,500 करोड़ रुपये दूध, खाद, ऊर्जा व धार उठाने की सेवा से अपना पसीना बहाकर हमारे राष्ट्र को देते हैं। उनकी हड्डियां अलग उपयोग में आती हैं। अत: हमें इन पशुओं का कृतज्ञ होना चाहिए।

5. वर्तमान समय की मांग है कि भूमि की उर्वरा संरक्षण के लिए गोबर की खाद की महती आवश्यकता है। सस्ती खाद मिलने पर अनाज सस्ता होने से गरीब को भर पेट भोजन मिलेगा। कुपोषण से होने वाले रोग घटेंगे।

6. गोबर गैस व खाद दोनों दृष्टियों से उपयोगी है। किसान रासायनिक खाद की गिरफ्त में आ गया है जिसे गोबर की खाद स्वावलम्बन देती है।

पशुवध रोकना मात्र धार्मिक, नैतिक व दया की बात नहीं बल्कि राष्ट्र की आर्थिक प्रगति, स्वावलम्बन व आरोग्य के लिए आवश्यक है।

3.4.14 पर्यावरण (Invironment)

मनुष्य को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए परिस्थिति संतुलन (Ecological Balance) पर विशेष ध्यान देना होगा। जंगल नष्ट होने से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है इसीलिए हम वन रक्षा व पेड़ लगाओ आंदोलन चला रहे हैं। संतुलन का कायम रखने के लिए पशु बचाओ आंदोलन चलाना होगा।

3.5 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. जैन जीवनशैली का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए दूषित आहार के परिणाम पर प्रकाश डालें।
2. उपवास और तप का महत्त्व बताते हुए आहार और अनाहार का अन्तर स्पष्ट करें।
3. शाकाहार के लाभ और मांसाहार की हानियों पर सारगर्भित निबंध लिखें।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. उनोदरी और वृत्तिसंक्षेप का अर्थ बताते हुए दोनों पर प्रकाश डालें।
2. रसपरित्याग से क्या समझते हैं? चीनी और नमक पर नियंत्रण के क्या लाभ हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 : (क) तम्बाकू वर्जन

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 धूम्रपान
  4.2.1 नशीले पदार्थों का सेवन
  4.2.2 उत्तेजक पदार्थ
  4.2.3 जर्दा-धूम्रपान : बीसवीं सदी का निर्मम हत्यारा
  4.2.4 जर्दा-धूम्रपान : आत्महत्या का तरीका
  4.2.5 हत्या का प्रचलित तरीका धूम्रपान
  4.2.6 आत्म-निरीक्षण
  4.2.7 धूम्रपान क्यों और कैसे छोड़ें?
  4.2.8 लोग जर्दा-धूम्रपान क्यों शुरू करते हैं?
  4.2.9 लोग जर्दा-धूम्रपान जारी क्यों रखते हैं?
  4.2.10 चाहने पर भी लोग जर्दा-धूम्रपान क्यों नहीं छोड़ पाते?
4.3 जर्दा-धूम्रपान निवारण
  4.3.1 प्रथम चरण
  4.3.2 द्वितीय चरण
  4.3.3 तृतीय चरण
  4.3.4 चतुर्थ चरण
  4.3.5 जर्दा-धूम्रपान छोड़ने से होने वाली व्याकुलता या धूम्रपान तलब का क्या समाधान है?
4.4 मद्यपान और अपराध
  4.4.1 मद्यपान और वेश्यावृत्ति
  4.4.2 मद्यपान और तलाक
  4.4.3 मद्यपान और बाल-अपराध
  4.4.4 शराब और स्वास्थ्य
  4.4.5 मद्यपान और आयु
4.5 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

नशा नाश का ही दूसरा नाम है। जो नशे को अपनाता है वह नशे की कैद में चला जाता है। ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जो नशा करने पर उसका आदी न हो गया हो। यहां तक कि लोग आवश्यक आवश्यकताओं को दर-किनार करके भी नशे की वस्तुओं को खरीदते हैं। दो प्रकार के नशों का आम जनता में बहुत प्रचार है— 1. धूम्रपान, 2. मद्यपान। मनुष्य शरीर के अन्दर पदार्थ को दो प्रकार से पहुंचाता है— 1. खाकर, 2. पीकर। तम्बाकू एक ऐसा खतरनाक पदार्थ है जो खाकर और पीकर दोनों प्रकार से शरीर में नशे के रूप में पहुंचता है। जर्दा और तम्बाकू खाना आम आदमी की खास आदत में सुमार है। साथ ही बीड़ी, सिगरेट, चिलम के माध्यम से इसके धुंए का सेवन भी चाव पूर्वक करते हैं।

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी निम्न उपशीर्षकों का विशेष अध्ययन करके **'तम्बाकू एवं मद्यपान वर्जन'** के सम्बंध में विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

तम्बाकू वर्जन

हमारा शरीर जीवन-विकास में सहायक होने वाली एक मशीन है। उसका दुरूपयोग न करना तथा उसे स्वस्थ बनाए रखना ही समझदारी है। यह एक सामान्य विवेक की बात है, किन्तु आज का मनुष्य इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता। वह निरन्तर मृत्यु से डरता तो है, पर प्रत्येक संभाव्य रीति से वह अपने आपको त्वरता के साथ मृत्यु के नजदीक ले जा रहा है। अज्ञान, निष्क्रियता तनाव तथा खतरनाक बुरी आदतों के द्वारा हजारों तरीकों से मनुष्य अपने शरीर का दुरूपयोग करता है। ये तरीके हमने अपनी जीवन-पद्धति में अपना रखें हैं। उदाहरणत: आज मद्यपान और धूम्रपान मनुष्य-सभ्यता के अंग बन चुके हैं। यहां तक किये ये अतिथि सत्कार के साधन बन गये है। विडम्बना यह है कि आगन्तुक नशे की चीजे पाकर खुश होता है।

4.2 धूम्रपान

प्रत्येक सिगरेट के डिब्बे पर तथा विज्ञापन में यह कानूनी चेतावनी दी जाती है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। धूम्रपान से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं- वातस्फीती (एम्फीजीमा) ह्रदय-रोग, चिरकालिक खांसी आदि। इन दिनों में जनता के ध्यान को आकर्षित करने वाला धूम्रपान का सबसे बड़ा दुष्परिणाम है — फेफड़ों का कैंसर। यह एक असाध्य और बहुधा घातक बिमारी है। यह बीमारी नहीं पीने वालों की अपेक्षा पीने वालों में 20 गुना अधिक व्याप्त है। कैंसर की बीमारी विषाक्त कोशिकाएं वृद्धिगत होती हुई स्वस्थ कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं और अन्ततोगत्वा ऊतकों को भी। एम्फीजीमा (वातस्फीति) की बीमारी में श्वास-प्रकोष्ठों (अल्वीओली) का रोगात्मक विस्तार होता है। बहुत सारी श्वसनिकाएं एक साथ अवरुद्ध हो जाती हैं। श्वास-प्रकोष्ठों की दीवारें पतली होकर क्षीण हो जाती हैं। जिससे श्वसन-तंत्र की समग्र उपयोगी सतह के क्षेत्रफल में भारी गिरावट आ जाती है। सारी परिस्थितियां अपुनरावर्तनीय है। अन्ततोगत्वा ऑक्सीजन की कमी तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की वृद्धि निरन्तर बनी रहती है जिससे मृत्यु तक हो जाती है।

अब धुम्रपान न केवल फेफड़ों के कैंसर का प्रमुख कारण माना जाता है अपितु स्वरयंत्र, मुख-गुहा तथा अन्न-नली के कैंसर का भी प्रमुख कारण माना जाता है। तथा साथ ही मूत्राशय अग्न्याशय (क्लोमग्रंथि) और गुर्दे के कैंसर में भी सहयोगी कारण बनता है। सिगरेट का धुंआ श्वास-नलिका के अस्तर में रहे हुए सूक्ष्म बालों (रोमों) को आघात पहुंचा कर संवेदन-शून्य कर देता है। जिससे वे धूलिकण-युक्त श्लेष्म को ऊपर धकेलने में अक्षम हो जाते हैं तथा उसे स्वरयंत्र द्वारा बाहर निकालने की क्रिया बंद हो जाती हैं। यदि धूम्रपान की आदत वाले व्यक्ति धूम्रपान छोड़ दें तो कुछ महिनों में ये बाल साफ-सूफी के कार्य के लिए पुन: सक्रिय बन सकते हैं।

4.2.1 नशीले पदार्थों का सेवन

तनाव-मुक्ति, उत्तेजना या सुखाभास की तीव्रानुभूति (या मस्ती) के लिए नाना प्रकार के नशीले पदार्थों का नित्य सेवन करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। दुर्भाग्य की बात है कि अब तक जितने नशीले औषध आविष्कृत हुए हैं, वे किसी-न-किसी रूप में खतरनाक सिद्ध हुए हैं। अधिकांश ऐसे पदार्थों से व्यक्ति उनका व्यसनी बन जाता है, यानी कुछ दिनों के सेवन के बाद उनके शरीर का चयापचय-क्रम परिवर्तित हो जाता है और व्यसनी को उन पदार्थों के निरन्तर सेवन पर आश्रित होना पड़ता है। यदि उनका उपयोग अचानक बन्द कर दिया जाए तो मृत्यु भी हो सकती है। यह पराश्रितता शारीरिक न भी हो, पर मानसिक रूप में अवश्य हो जाती है, जो नशीले पदार्थ को 'वैशाखी' का रूप देकर मनुष्य को पंगु बना देती है। बहुत सारे नशीले पदार्थ यकृत और मस्तिष्क जैसे प्राणाधार अवयवों को भारी क्षति पहुंचाते हैं।

अफीम और मार्फिया जैसे स्वापक पदार्थ केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान के शामक होने के कारण पीड़ा आदि में राहत पहुंचाते हैं तथा चिंता की अनुभूति से व्यक्ति को मुक्त करते हैं। इससे सुखाभास या भ्रम भी पैदा होता है किंतु ये तीव्र दुर्व्यसन हैं और सदियों से गम्भीर स्वास्थ्य-समस्याओं के उत्पादक रहे हैं। इन व्यसनों के शिकार व्यक्ति अपनी लत पूरी करने के लिए अपराध करने उतारू हो जाते हैं।

4.2.2 उत्तेजक पदार्थ

चाय, काफी, कोको आदि अन्य पेय पदार्थों में विद्यमान केफीन और सिगरेट आदि तम्बाकू वाले पदार्थों में विद्यमान निकोटीन सामान्यत: प्रयुक्त उत्तेजक पदार्थ हैं। इन दोनों में (केफीन और निकोटीन में) केन्द्रिय नाड़ी तंत्र को उत्तेजित करने की अद्भुत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्षमता है। किंतु दूसरी ओर ये ही तत्त्व हृदय-रोग को बढ़ाने में सहयोगी बनते हैं। अधिक मात्रा में केफीन का सेवन चिड़चिड़ापन तथा अनिंद्रा की बीमारी को पैदा करता है। निकोटीन की अतिमात्रा फुफ्फुस से सम्बंधित कैंसर आदि अनेक रोगों को जन्म देने के लिए कुख्यात है। शारीरिक दृष्टि से इनका व्यसन-स्वभाव विवादास्पद हो सकता है, किंतु मानसिक दृष्टि से इनकी परावलम्बिता असंदिग्ध है।

भांग, गांजा, सुल्फा, एल.एस.डी. आदि जिन्हें ''साईकेडेलिक औषध' कहते हैं, शरीर में से प्राकृतिक रूप में श्रावित ''नोरएपिनैफ्रीन'' नामक उत्तेजक हार्मोन के स्राव में वृद्धि करके अपना प्रभाव डालते हैं। इनके सेवन करने वालों में कभी-कभी उत्तेजना इतनी अधिक हो जाती है कि व्यक्ति नींद नहीं ले सकता। सुखाभास जैसी स्थिति और गहरी निराशा की स्थिति एक के बाद एक होती रहती है। इन पदार्थों का दीर्घकालीन सेवन व्यक्ति को भ्रम या भ्रांति या उग्र व्यवहार तक पहुंचाता है। एल.एस.डी. का अणु रासायनिक दृष्टि से रोटोनीन नामक तंत्रिका-संचारी (न्यूरो-ट्रान्समीटर) के साथ अद्भुत सादृश्य रखता है, जिससे वह मस्तिष्कीय कोशिकाओं का आह्लादक या अति भयानक स्वप्न जैसे होता है। जब व्यक्ति नशे की स्थिति में होता है, तब उनकी विवेकशक्ति विकृत हो जाती है जो उसके स्वयं के लिए तथा अन्य लोगों के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकती है। अमेरिका की ''नेशनल ऐकेडमी ऑफ साइन्स'' के ''इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिसिन'' नामक संस्थान में गांजा के प्रभाव पर अपनी विस्तृत रिपोर्ट (लगभग 100 पृष्ठों की) के निष्कर्ष में बताया है—''गांजे में विद्यमान मुख्य सक्रिय तत्त्व (डेल्टा टेट्रा हाइड्रोकेनाबीनोल) (टी.एच.सी.) शराब की तरह क्रियावाही तंतुओं के पारस्परिक तालमेल को छिन्न-भिन्न कर डालता है।''

इससे गतिमान पदार्थों के हिलने-डुलने को समझने की क्षमता भी प्रभावित होती है। ऐसा व्यक्ति प्रकाश की चमक को पकड़ने में असफल हो जाता है। चूंकि ये सारी क्रियाओं में पैदा होने वाली गड़बड़ी का अर्थ होता है भारी खतरा मोल लेना। इन पदार्थों का सेवन स्वल्पकालीन स्मृति को क्षीण करता है, अवबोध-शक्ति को मन्द तथा निर्णायक शक्ति में विपर्यय करता है, व्यक्ति के मस्तिष्क में आतंक और किंकर्त्तव्यमूढ़ता की प्रतिक्रियाएं पैदा करता है।

इन पदार्थों का अतिमात्रा में सेवन करने से श्वसन-पथ का कैंसर होने और फुफ्फुसों को गंभीर रूप में क्षति पहुंचने की संभावना बनी रहती है।

4.2.3 जर्दा-धूम्रपान :बीसवीं सदी का निर्मम हत्यारा

संसार में समय-समय पर विचित्र कारण मानव विनाश के लिए उत्तरदायी रहे हैं। इस शताब्दी के शुरू के दशकों में महामारियां, जैसे चेचक, प्लेग, टी.बी., मलेरिया और निमोनिया सबसे अधिक अकाल मौतों का कारण बनी। दूसरे एवं पांचवे दशक में मृत्यु के सबसे बड़े कारण विश्व-युद्ध रहे। छठे दशक से अब तक असामयिक मृत्यु का सबसे बड़ा जो कारण रहा है वह है जर्दा-धूम्रपान। पिछले चार दशकों से संसार में तम्बाकू पीने व खाने से हुयी बीमारियां मानव को मृत्यु मुख में ले जाने में प्रमुख रही हैं। अकाल मृत्यु के सबसे बड़े कारण जर्दा-धूम्रपान को यमदूत की संज्ञा दी जा सकती है। निम्न आंकड़े इस कथन की पुष्टि करते हैं—

1. प्रथम विश्वयुद्ध के चार सालों में जितने लोगों की मृत्यु हुई, उतने लोग तो तम्बाकू से उत्पन्न बीमारियों से सिर्फ 1.5 वर्ष में कालकवलित हो जाते हैं।

2. भयंकर बीमारी एड्स से पिछले एक दशक में संसार में जितने लोगों की मृत्यु हुई है, उतने लोग तो तम्बाकू से हुई बीमारियों से सिर्फ एक माह में मर जाते हैं।

3. जर्दा-धूम्रपान से भारत में रोजाना 3,000 लोग मरते हैं अर्थात् सड़क-दुर्घटनाओं से 20 गुना व हत्याओं से 21 गुना अधिक लोग रोजाना जर्दा-धूम्रपान से जनित हुई बीमारियों से मरते हैं। देश के समाचार-पत्रों में हत्याओं व दुर्घटनाओं से हुई मृत्यु के त्रासद समाचार मुखपृष्ठ पर छपते हैं, किंतु मानव-मृत्यु के इनसे कहीं बड़े कारण सिगरेट या बीड़ी से हुई मृत्यु का उल्लेख भी नहीं होता। आलोचना तो दूर समाचार-पत्रों में जो जर्दा, बीड़ी और सिगरेट के प्रचार-प्रसार के लिए लुभावने विज्ञान छपते हैं।

4. कई प्रकार के कैंसर पैदा करने वाले तत्त्व जो कारसीनोजन कहलाते हैं, सीगरेट या बीड़ी के धुंए में होते हैं। मुंह, गले व फेफड़े के पान के आदी होते हैं। मूत्राशय, गुर्दे, पेन्क्रीयाज, पेट व गर्भाशय कैंसर भी धूम्रपान करने वालों से अधिक होते हैं। मुंह, गले व भोजन नली का कैंसर आमंत्रित करने में शराब धूम्रपान का सहयोग करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. जर्दा-घूम्रपान लेने वालों में हृदय-रोग की संभावना 15 गुना अधिक होती है।

6. कॉनिक ब्रांकाइटिस व एम्फाइजीमा जैसे खतरनाक रोगों के भी दस में से नौ रोगी धूम्रपान करने वाले व्यक्ति होते हैं।

7. भारत में धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों में से 30% लोग क्रॉनिक ब्रांकाइटिस नामक श्वास रोग से पीड़ित होते हैं।

8. जर्दा-धूम्रपान लेने वालों में ब्रेन हेमरेज और लकवे की बीमारी जर्दा-धूम्रपान न लेने वालों से कही अधिक होती है।

9. जर्दा-धूम्रपान के साथ डायबिटीज की सम्भावना बढ़ जाती है।

10. धूम्रपान के रीढ़ की हड्डी के विकार पैदा हो जाते हैं।

11. जर्दा-धूम्रपान करने वाले के चेहरे पर झुर्रियां, उसके द्वारा किये जाने वाले जर्दा-धूम्रपान की मात्रा के अनुपात में बढ़ती है।

12. यदि कोई व्यक्ति 40 सिगरेट पीता है, तब उसके बगल में बैठा ऐसा व्यक्ति सिगरेट नहीं पीता, 3 सिगरेट के बराबर धुंआ शरीर में ग्रहण करता है।

13. चिंताओं से घिरे लोगों के लिए जर्दा-धूम्रपान अधिक खतरनाक हृदयाघात (हार्ट-अटैक) की संभावना बहुत ज्यादा होती है।

14. जर्दा-धूम्रपान से उच्च रक्तचाप जैसी घातक बीमारी हो जाती है।

15. लगातार जर्दा-धूम्रपान करने से व्यक्ति को खाना कम स्वादिष्ट लगता है।

16. गर्भावस्था में बीड़ी या तम्बाकू के सेवन या सिगरेट पीने से गर्भ के बच्चे पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि गर्भ का बच्चा लड़का है तब उस कुप्रभाव की आंशका अधिक होती है।

17. बीड़ी एवं सिगरेट के धुएं में 5% घातक गैस कार्बन मोनोआक्साइड होती है, जो कि खून के आवश्यक तत्त्व हीमोग्लोबिन से मिलकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन नामक विषैला पदार्थ बनाती है। इससे प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है तथा शरीर में पोलीसाइथेमिया की बीमारी हो जाती है और नर्वस सिस्टम की कार्यक्षमता में भी कमी आती है और थोड़ा परिश्रम करने के पश्चात् ही ऐसे लोगों को थकान आने लगती है।

18. एक सिगरेट पीने से धूम्रपान करने वाले व्यक्ति का जीवन पांच मिनट कम हो जाता है, अर्थात् कोई व्यक्ति यदि 12 सिगरेट रोजाना पीता है, तब उसकी उम्र एक घंटा प्रतिदिन घटती जाती है।

19. एक पैकेट सिगरेट पीने वाला व्यक्ति यदि सिगरेट के बजाय इस धन को लगातार 25 वर्ष तक बैंक में संचित करता रहे तो इस अवधि के उपरान्त 4.5 लाख रुपये बैंक में जमा होंगे। जबकि 25 वर्ष तक धूम्रपान करते रहने के पश्चात् शरीर को स्वस्थ रखने हेतु 500-1000 रुपये प्रति माह चिकित्सा पर खर्च करने पड़ते हैं।

4.2.4 जर्दा-धूम्रपान : आत्महत्या का तरीका

जर्दा-धूम्रपान का सेवन करने वाले अधिकतर व्यक्ति तम्बाकू के घातक कुप्रभावों से प्राय: अनभिज्ञ होते हैं, लेकिन बहुत से व्यक्ति इसकी बुराइयों को जान लेने के बावजूद जर्दा-धूम्रपान का सेवन करना जारी रखते हैं और कालांतर में इसकी वजह से उत्पन्न बीमारियों की वजह से काल-कवलित होते हैं। इस श्रेणी के व्यक्ति की मृत्यु को तो "आत्महत्या" कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। आत्महत्या के अन्य कारणों से यह सिर्फ इसलिए भिन्न है कि अन्य तरीके जैसे आत्मदाह, फांसी लगाना या जहर खाने से तत्काल मृत्यु होती है, जबकि तम्बाकू से जनित बीमारियों से व्यक्ति धीरे-धीरे, घुट-घुट कर मरता है। अत: जर्दा-धूम्रपान से होने वाली मृत्यु वस्तुत: आत्महत्या का सबसे प्रचलित तरीका है। हर चार धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों में से एक (25%) की मृत्यु जर्दा-धूम्रपान से जनित बीमारियों से होती है।

4.2.5 हत्या का प्रचलित तरीका धूम्रपान

अनुमानत:भारत में प्रतिदिन 200 लोगों की मृत्यु धूम्रपान करने वाले दोस्तों या स्वजनों के सान्निध्य में रहने की वजह से उनके द्वारा छोड़े गए धुएं से हुई बीमारियों से होती है। एक प्रकार से इन्हें धूम्रपान करने वाले दोस्तों या परिवारजनों के सान्निध्य में रहने वाले स्वस्थ व्यक्तियों के फेफड़ों की क्षमता 20-25% तक घट जाती है और यदि फेफड़े पहले से ही कमजोर हैं तो बीमारी अधि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ाक घातक होती है। सिगरेट का साइड स्ट्रीम धुंआ तथा धूम्रपान के दौरान मुंह से निकला धुंआ दोनों में ही टार की मात्रा इतनी होती है, जो कि अगल-बगल बैठे व्यक्तियों में कैंसर पैदा कर सकती है। इसी प्रकार धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के सान्निध्य में रहने से हृदय-रोग की संभावना बढ़ जाती है। अत: सिर्फ यही जरूरी नहीं कि आप स्वयं धूम्रपान न करें, बल्कि निकट रहने वाले व्यक्ति का धूम्रपान न करना भी उतना ही आवश्यक है।

4.2.6 आत्म-निरीक्षण

पिछले चालीस वर्षों में संसार में मौत का ताण्डव करने वाली ऐसी क्या चीज है धूम्रपान में?

लगभग 4,000 प्रकार के तत्त्व सिगरेट में धुएं में पाए गये हैं जिनमें से निकोटीन नामक तत्त्व नितांत खतरनाक होता है। इसके घातक प्रभाव के कारण इसे बहुत-सी कीटनाशक दवाओं में भी काम में लिया जाता है। लगातार सेवन करने पर यह हृदय की धमनियों में मोम जैसा जमाव पैदा कर देता है, जिससे धीरे-धीरे ये धमनियां बन्द होतो जाती हैं। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तियों को हृदय-रोग हो जाता है। पेट में अल्सर भी हो सकता है। धूम्रपान एक प्रकार से अपने ही शरीर के अंगों से की गई क्रूर हिंसा के समान है। फेफड़े के उत्तक बीड़ी-सिगरेट के धुएं में घुट कर नष्ट हो जाते हैं। जो बचते हैं उन पर घाव हो जाते हैं और कालिख जमती जाती है। जिस प्रकार लकड़ी जलाने वाले चूल्हे की रसोई में 20-25 साल में कालिख की मोटी परत जम जाती है, उसी प्रकार फेफड़ों में भी सिगरेट-बीड़ी के धुएं से कालिख जम जाती है जो वातावरण से ली गयी ऑक्सीजन के फेफड़ों द्वारा शरीर में प्रवेश के छिद्र बन्द कर देती है तथा फेफड़ों में नाजुक उत्तक जल कर नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में रोगी को श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है।

4.2.7 धूम्रपान क्यों और कैसे छोड़ें?

किसी भी समय जर्दा-धूम्रपान छोड़ने से निम्न लाभ होंगे—

* हृदय-रोग की संभावना कम होगी।
* श्वास-रोग कम होगा तथा इसमें फायदा होगा।
* निमोनिया, टी.बी. व अल्सर जैसे खतरनाक रोगों की संभावना कम होगी।
* आपके बच्चों को आप के द्वारा धूम्रपान करने से होने वाली बीमारियों नहीं होगी।
* कैंसर की संभावना घट जाएगी।
* यौन-क्षमता में काफी वृद्धि होगी।

इच्छा-शक्ति जर्दा-धूम्रपान छोड़ने में सबसे आवश्यक है और बिना पक्के इरादे के जर्दा-धूम्रपान छोड़ने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेकिन इच्छा-शक्ति विकसित करने में जर्दा-धूम्रपान के घातक प्रभावों की सही जानकारी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। एक चिकित्सा बीमारी के समय रोगी को इस प्रकार की जानकारी देकर रोगी का मानस जर्दा-धूम्रपान के कुप्रभावों की ओर आकर्षित कर सकता है।

4.2.8 लोग जर्दा-धूम्रपान क्यों शुरू करते हैं?

धूम्रपान की शुरुआत अक्सर बचपन में होती है। कच्ची उम्र में इससे अधिकतर नवसिखिए परिणामों के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं। प्राय: इसकी शुरूआत निम्न प्रकार से होती है—

* उत्सुकता, जिज्ञासा एवं प्रयोग करने की लालसा।
* दोस्तों को प्रभावित करने के लिए।
* घर के बुजुर्गों द्वारा छोड़ी सिगरेट या बीड़ी को उठा कर कश खींचने की उत्सुकता से।
* दोस्तों के साथ काम करने के बाद आराम करते समय।
* दांत में दर्द, बलगम की रूकावट, पेट में गैस व कब्ज जैसी बीमारी में आराम के लिए कुछ लोग जर्दा-धूम्रपान की शुरूआत करते हैं।
* अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में मेहमान को हुक्का या बीड़ी पिलाना सामान्य शिष्टाचार माना जाता है। काफी लोग इस सामाजिक चलन से धूम्रपान शुरू करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धूम्रपान कैसे भी शुरू हो, कुछ महीनों या सालों में लत या नशे में परिवर्तित हो जाता है।

4.2.9 लोग जर्दा धूम्रपान जारी क्यों रखते हैं?

मुख्यतया लोग निम्नलिखित कारणोंसे धूम्रपान जारी रखते हैं—

4.2.9.1 एक आदत

शौकिया शुरू किया गया जर्दा-धूम्रपान धीरे-धीरे आदत बन जाता है, तथा दिनचर्या के किसी कार्य से जुड़ जाता है। शौच करते वक्त, भोजन करने के बाद, काफी मेहनत करने के बाद, कुछ समय के लिए विश्राम करते समय आदि। ये कुछ उदाहरण हैं जिनमें जर्दा-धूम्रपान की एक आदत की तरह दिनचर्या में समावेश होता है। यदि आदत को शुरू में नही रोका जाए तो यह लत बन जाती है।

4.2.9.2 एक रिवाज

पुराने समय से ही धूम्रपान समाज में एक महत्त्वपूर्ण रिवाज रहा है। आज भी कई घरों में मेहमान- नवाजी के लिए बीड़ी-सिगरेट, हुक्का या चिलम पेश की जाती है। यहां तक कि समाज में किसी का हुक्का-पानी बन्द करने का मुहावरा उसके बहिष्कार के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

4.2.9.3 अहम के लिए

पान की दुकान पर खड़े होकर अदा से कश लेना, निचला होंठ आगे करके धुंए के छल्ले निकालना, मुंह में सिगरेट दबा कर स्कूटर चलाना, मुंह में सिगरेट रख बेफ्रिकी, लापरवाही मनमौजीपन या धाकड़ व्यक्तित्व दिखाना आदि ऐसी गतिविधियां हैं जो कि अहम की तुष्टि करती है।

4.2.9.4 एक नशा

लगातार धूम्रपान करने से नशा हो जाता है तथा जब कभी धूम्रपान न किया जाए तो बहुत से शारीरिक कष्ट प्रकट होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में धूम्रपान या तो सकारात्मक भाव जैसे जोश, आनन्द या सुस्ताने के लिए या नकारात्मक भाव जैसे चिंता, हड़बड़ी बेचैनी को कम करने के लिए किया जाता है।

4.2.9.5 मनुहार

कई लोग मनुहार के कच्चे होते हैं। स्वयं बीड़ी-सिगरेट छोड़ देते हैं, किन्तु किसी ने मनुहार की नही कि फौरन फिर शुरू कर जाते हैं।

4.2.10 चाहने पर भी लोग जर्दा-धूम्रपान क्यों नहीं छोड़ पाते?

आदत एवं नशे के वशीभूत हो चाहने पर भी लोग जर्दा-धूम्रपान नही छोड़ पाते एवं इस लत के दुष्परिणामों की ओर आंख मूंद लेते हैं। धूम्रपान के साथ प्रविष्ट होने वाले धुएं से जो नुकसान शरीर में होता है, यदि आंखों से उसे देखना संभव होता तो धूम्रपान कोई नहीं करता। लेकिन विडम्बना यह है कि जब इस नुकसान से होने वाले लक्षण उभरने लगते हैं तब इस शरीर में बीमारी जड़ें जमा कर असाध्य होने लगती है।

क्या कोई ऐसी चीज है जो जर्दा-धूम्रपान छुड़ा सके?

पक्का इरादा ही जर्दा-धूम्रपान छुड़ा सकता है, अन्य कोई चीज या जादू ऐसा नहीं है जो यह काम कर सके। कुछ लोग धूम्रपान छोड़ जर्दा या जम्बाकू खाना शुरू करते हैं। लेकिन कुछ लोग धूम्रपान बन्द कर लगातार जर्दा खाने लगते हैं। इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता, क्योंकि हृदय व पेट की बीमारियां जर्दे के कारण भी उतनी ही होती हैं।

4.3 जर्दा-धूम्रपान निवारण

4.3.1 प्रथम चरण:

छोड़ने से पहले निम्न प्रश्नों का उत्तर सोच कर लिखिए—

(अ) मैंने जर्दा-धूम्रपान क्यों शुरू किया?

(ब) मैं जर्दा-धूम्रपान क्यों करता हूं?

(स) मैं जर्दा-धूम्रपान क्यों छोड़ना चाहता हूं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिकतर ऐसा देखा गया है कि अ और ब का उत्तर एक नहीं होता है। यदि ऐसा है तो कहीं आप जर्दा-धूम्रपान का सेवन मजबूरी में तो नहीं कर रहे हैं?

4.3.2 द्वितीय चरण:

जहां तक होसके अपने साथ जर्दा-धूम्रपान लेने वाले दोस्त या सहकर्मी को भी जर्दा-धूम्रपान छोड़ने के लिए प्रेरित करें और साथ-साथ तम्बाकू-त्याग का निश्चय करें। दो दोस्त यदि एक साथ तम्बाकू से छुटकारा पाने की चेष्टा करें, तो ज्यादा पक्के इरादे से जर्दा-धूम्रपान छोड़ सकते हैं, और इन्हें त्यागने से शुरू में होने वाली व्याकुलता का अधिक दृढ़ता से सामना कर सकते हैं।

(परिवारजनों को चाहिए कि जर्दा-धूम्रपान बन्द करने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहित करें, उसका मनोबल बढ़ाएं।)

4.3.3 तृतीय चरण:

* जर्दा-धूम्रपान एकदम छोड़ने का संकल्प करें, कम करने का नहीं। जर्दा-धूम्रपान कम करने से कोई खास लाभ नहीं होगा, बल्कि यह आपके तम्बाकू बन्द करने के इरादे को कमजोर करेगा।

* जर्दा-धूम्रपान छोड़ने का किसी निश्चित दिन का संकल्प करें। त्योहार का दिन, बच्चे का जन्मदिन या किसी दिन देवालय में जाकर जर्दा-धूम्रपान छोड़ने की प्रतिज्ञा करें। इस प्रकार तम्बाकू अधिक दृढ़ निश्चय के साथ छोड़ी जा सकती है, क्योंकि इनसे जुड़ा भावनात्मक लगाव आपकी प्रतिज्ञा-पूर्ति में मदद करता है।

4.3.4 चतुर्थ चरण:

आत्म-विश्वास रखिए कि आप प्रतिज्ञा पूरी करें।

जर्दा धूम्रपान को तिलांजलि देने के बारद रोजाना लिखिए कि क्या फायदे आप महसूस करते हैं, जैसे—

* मुंह से बदबू नहीं आना।   * बलगम कम आना।

* खांसी में कमी।   * दो महीने में दो-तीन किलो वजन बढ़ना (यानी बीड़ी, सिगरेट आपका शरीर इतना जलाती थी।)

यदि पूरी कोशिश के बावजूद जर्दा-धूम्रपान न छोड़े जाएं तो इस प्रकार के तरीके अपनाएं जिनसे इनकी मात्रा कम हो, जैसे दायें हाथ से बीड़ी सिगरेट पीने के बजाय बाएं हाथे से पीना, बीड़ी या सिगरेट को पॉलीथीन के बैग में रबर बैंड से बोध कर रखना, एक ही ब्रांड की सिगरेट पीना, खुद खरीद कर न पीना, घर पर नहीं पीना आदि।

4.3.5 जर्दा-धूम्रपान छोड़ने से होने वाली व्याकुलता या धूम्रपान तलब का क्या समाधान है?

* इसे नकारिए तथा जर्दा-धूम्रपान छोड़ने से होने वाले फायदों की बात सोचिए।

* सोचिए कि धूम्रपान से आपको ही नहीं बल्कि बीबी, बच्चों को भी कितना खतरा है।

* स्वयं को याद दिलाइये कि यह आप के आत्मविश्वास की परीक्षा का समय है।

* अपने को अधिक से अधिक व्यस्त रखिए।

* मुंह में इलायची या सौंफ रखिए।

* लम्बे, गहरे श्वास अन्दर-बाहर लेकर एकाग्रता से मन ही मन दोहराइए, ''मैं कभी तम्बाकू सेवन नहीं करूंगा, जर्दा-धूम्रपान नहीं लूंगा।'' इससे मनोबल को दृढ़ता मिलती है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग से भी जर्दा-धूम्रपान छोड़ने से होने वाली व्याकुलता पर नियंत्रण किया जा सकता है।

* विचार कीजिए—कुछ लोग महिनों तक उपवास रख लेते हैं,कई दिन बिन खाए-पिए निकाल देते हैं, क्या मैं उनसे कमजोर हूं?

* जब भी जर्दा-बीड़ी, सिगरेट या तम्बाकू देखें, अपने बच्चों को याद कीजिए क्योंकि तम्बाकू आपके बच्चों से उनके पिता को हमेशा के लिए छीन सकती है।

बीड़ी या सिगरेट का हर कश निकोटीन की मात्रा दिमाग में पहुंचाता है, जिससे दिमाग की कोशिकाएं निकोटीन के प्रभाव में आती हैं और लगातार सेवन के बाद निकोटीन की दास हो जाती है। क्या आप अपने दिमाग को निकोटीन की गुलामी में रखना पसन्द करेंगे? क्या आपका आत्मबल और स्वाभिमान इतना मजबूत नहीं कि इस गुलामी को छोड़ सकें?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–4 : (ख) मद्यपान वर्जन

मद्यपान और मांसाहार का भगवान् महावीर तीव्र प्रतिरोध करते हैं। वह केवल अहिंसा की दृष्टि से ही नहीं अपितु उससे मनुष्य की वृत्तियां भी बिगड़ती हैं।

इसमें कोई संदेह नही है कि आज ये प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं, पर जिस मात्रा में ये प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं उसी मात्रा में समस्याएं भी बढ़ रही हैं। दी ओहिया स्टेट युनिवर्सिटी के श्री वॉल्टर सी. रेक्लेस ने अपनी पुस्तक "The Crime Problem" में मद्यपान पर सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा— अपराध से तीन बातें मुख्य रूप से जुड़ी हुई हैं— शराब पीना, नशीली दवाइयां लेना तथा अस्वाभाविक यौन-भावना। इसके साथ वेश्या-गमन, जुआ, परिवार का बिखराव, गर्भपात, भिखारीपन आदि अनेक समस्याएं भी जुड़ी हुई हैं, पर कदाचित् शराब इन सारी समस्याओं से प्रमुख रूप से जुड़ी हुई है। यद्यपि यह तो सम्भावना नहीं है कि अपराध के लिए केवल शराब को ही उत्तरदायी ठहरा दिया जाए। पर फिर भी उसमें शराब का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह कहना भी उचित नहीं होगा कि हर शराबी अपराधी ही होता है। पर यह सच है कि शराब और अराजकता के बीच एक गहरा सम्बन्ध है।शराबी आदमी अपने सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन रहता है। वह औसत आदमी की तुलना में ज्यादा अपराध करता है।

4.4 मद्यपान और अपराध

अमरीका की एक जांच समिति ने 12 राज्यों के 17 कारागरों और सुधार-गृहों में 13402 बंदियों का परीक्षण कर यह तथ्य निकाला है कि उनमें से से 50 प्रतिशत से अधिक अपराध संयमहीनता के कारण किये गये थे। और वह संयमहीनता सीधा शराब से जुड़ी हुई थी।

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. जोसेफ केहन की पुस्तक 'Behind the Sins of Murder' के अनुसार हत्या के आधे केस केवल शराब के कारण होते हैं।

मिटी कोर्ट के न्यायाधीश श्री ग्रेलियर ने अपने सामने आये 10000 मामलों की छानबीन करने के बाद बताया कि उनका 92 प्रतिशत कारण शराब ही था।

न्यायाधीश श्री विलियम आर. मैके ने नेशनल वायस (6 मार्च, 1947) में लिखा था— दस वर्ष तक प्रांसिक्युटिंग एटॉर्नी एवं इतनी अवधि तक म्युनिसिपल एवं सुप्रीम कोर्ट-पीठों का काम करने के उपरान्त मेरा सुविचारित मत है कि जो व्यक्ति फौजदारी अदालत के सम्मुख सुनवाई के लिए उपस्थित होते हैं उनमें से ९0 प्रतिशत मादक शराब के अत्यधिक उपयोग के कारण प्रत्यक्ष रूप से स्वयं को ऐसे मामलों में लिप्त होते हैं।

कुयाहोगा काउन्टी, ओहियो ने क्वीनलैंड में विस्तृत जांच करने के बाद अपने प्रतिवेदन में कहा है— हमारी कार्यविधि में हमें डकैतियों के मामलों के सम्बन्ध में जो विपुल साक्षियां पेश की गयी, उनसे प्रतिध्वनित होता है कि शराब का उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ही वह स्थान है जहां डकैतियों का उद्‌भव होता है। आग लगाना, सेंध मारना, यौन अपराध, गोल चलाना, छुरा भोंकना, नर-हत्या, धोखाधड़ी, गोपनीय हथयार रखना, मारपीट एवं वाहन सम्बंधी कानून का उल्लंघन भी उसी में शामिल है।

न्यूजर्सी राज्य की मद्यसारयुक्त पेय नियंत्रण राज्य आयुक्त फेडरिक बर्नेस्ट ने अपने भाषण में कहा था— अनादिकाल से पुलिस की चार समस्याएं रही हैं— अनैतिकता, जुआ, मादक द्रव्य और शराब।

लॉस एंजिल्स काउण्टी के सुपीरियर कोर्ट के जज विलियम आर. मैके ने कहा है— न्यायालय में पेश होने वाले अपराध के 10 मामलों में 9 ऐसे होते हैं जो प्रत्यक्षत: शराब के अंधाधुंध उपयोग की देन होते हैं।

मद्यपान के अध्ययन में नवीन प्रवृत्तियों के लेखक ए.आई. मालकोइम ने अपनी रिपोर्ट में बताया है— सामान्य जनसंख्या की तुलना में मद्यपों की आत्महत्या की दर 58 गुना अधिक होती है। अमेरिका में अपराधिता के अध्ययन में चित्रित आंकड़ों में बताया गया है— 1967 में पियक्कड़ स्थिति में बंदी बनाये गए लोगों की संख्या 1396280 थी। सुरापान कर वाहन चलाने के आपरोप में बंदी बनाये गए व्यक्तियों की संख्या 248912 थी, सुरापान के प्रभाव से अनियंत्रित व्यवहार करने वाले बंदियों की संख्या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

495784 थी। कुल मिलाकर 21,40,976 की यह कुल संख्या इस बात का प्रमाण है कि वहां के कुल बंदियों की संख्या में एक-तिहाई से लेकर आधी संख्या मद्यपान से सम्बंधित लोगों की थी।

यौन अपराधों में 60 प्रतिशत, चोरी-चकारी में 64 प्रतिशत, जालसाजी में 66 प्रतिशत, ऑटोचोरी में 68 प्रतिशत, बलात्कार में 39 प्रतिशत, जान-बूझकर गोली चलाने में 83 प्रतिशत, सामान्य प्रहार में 85 प्रतिशत, हथियार सम्बंधी अपराधों में 85 प्रतिशत, जेब काटने में 93 प्रतिशत अपराधों में शराब का हाथ है।

'लिसन' नामक पत्रिका में 233 जजों के अनुमानों का सर्वेक्षण करने के बाद पाया गया कि गिरफ्तार किए व्यक्तियों में से 63 प्रतिशत का शराब से लगाव रहा है।

इन सब से एक बात निर्विवाद रूप से उभरती है कि मद्यपान और अपराध का चोली-दामन का सम्बंध है। सुरापान से आदमी क्रूर, क्रोधी एवं प्रमादी बन जाता है। उसके लिए जीवन बहुत सस्ता हो जाता है। वह न केवल अपनी ही हानि कर लेता है अपितु दूसरों की हत्या करने में भी उसे कोईसंकोच नहीं रहता। जब कोई व्यक्ति शराब के नशे में होता है तो वह सभी प्रकार के अपराध और विभिन्न स्तरों पर उत्तरदायित्वहीन व्हहार करने लगता है। कई जगह पर पाया गया है कि अन्य अपराधों से जितने व्यक्ति जेल जाते हैं, शराब के नशे में धुत्त होकर जेल जाने वालों की संख्या उससे ज्यादा है।

अवैध गतिविधियों में अनुरक्त व्यक्तियों में शराब पीने के बाद मिथ्या साहस की भावना उद्भव होती है। ऐसे लोगों को भयानक काम करने के लिए शराब पिलाई जाती है। शराब ऐसे व्यक्तियों को भी उचित-अनुचित में भेद-रेखा खींचने में विवेकहीन बना देती है जो उच्च सिद्धान्तों को मानने वाले होते हैं। मद्यपान के परिणामस्वरूप वे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण खो देते हैं। यदि वे मद्यपान नहीं करते तो कदापि अपराध नहीं करते, पर मद्यपान के बाद वे अपना आपा खो दते हैं। वास्तव में वह सही और गलत में विवेक न कर पाने के कारण होता है। ऐसी स्थिति की तुलना ढलान में चलती हुई गाड़ी के ब्रेक फेल हो जाने से की जा सकती है।

4.4.1 मद्यपान और वेश्यावृत्ति

यौन अपराधों एवं व्यक्तिगत हिंसा के मामलों में भी शराब को ही मुख्य प्रेरणा के रूप में माना गया है। वेश्यावृत्ति एवं मद्यपान के बीच गहन सम्बन्ध है। बालकों के साथ यौन अपराध में लिप्त होने वाले व्यक्ति प्राय: सुरापायी होते हैं। वे जितनी मात्रा में शराब अधिक पीते हैं, उसी मात्रा में अपराध भी त्वरा से करते हैं।

सुरापन को वैध कर देने का ही एक बड़ा अभिशाप वेश्यावृत्ति है। इसका सम्बन्ध अधिकतर मदिरालयों से है। क्योंकि सड़कों पर घूमने वाले लोग अपना धंधा चलाने के लिए सुरापान के स्थलों में प्रवेश करते हैं। कतिपय मद्य प्रतिष्ठान तो मात्र कामवासना की पूर्त्ति के ही अड्डे होते हैं जहां वेश्याओं से सम्पर्क ही एकमात्र लक्ष्य होता है।

जियोन हैराल्ड नामक समाचार-पत्र में विशम हजरब्सेंक ने लिखा है—मदिरालय अवाध स्वातंत्र्य के दिनों की अपेक्षा हजारों गुणा अधिक विघातक और विनाशक सिद्ध हो रहे हैं। हमारे युवको को पथभ्रष्ट करने के लिए उपवन ही शराब के स्थल नहीं रह गये हैं, अपितु उनके साथ-साथ वेश्यालय भी सड़कों पर ही बस गये हैं। वेश्यालयों के साथ शारीरिक स्वास्थ्य किस हद तक जुड़ा हुआ है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। हजारों-हजारों ही नहीं, लाखों-करोड़ों लोग अपने गुप्त रोगों का उपहार वेश्यालयों से ही प्राप्त करते हैं।

विन्कोन्सिन राज्य विधानमण्डल ने 1914 में महिलाओं में वेश्यावृत्ति आदि की जांच के लिए एक समिति नियुक्त की थी। उसने अपने प्रतिवेदन में बताया है कि महिलाओं और युवतियों के पतन, मादक पेय, शराब और व्यावसायिक दुराचार के बीच एक गहन सम्बन्ध है।

सभी विशेषज्ञ इस तथ्य से सहमत हैं कि बाल-अपराध तथा अवैध संतानों की उपज का मुख्य अड्डा सुरागृह ही होते हैं। 90 प्रतिशत अवैध संतानें उन परिचयों का ही परिणाम होती हैं जो मदिरालयों में होता है। सहायक काउण्टी अटॉर्नी ल्युसिएन सेलवारे के अनुसार ऐसे मामले में संबंधित युवक युवतियों की उम्र 16-22 वर्ष के बीच की पायी गयी है। डॉ. हीले ने कहा है—लघुमात्रा में किया जाने वाला सुरापान भी किशोर-युवतियों को चारित्रिक दृष्टि से गिरा देता है। अनेक खोजों से यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो गयी है कि सुरापान की अवस्था में महिलाएं अपना विवेक खो देती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.4.2 मद्यपान और तलाक

तलाक-सम्बंधी मामलों के सम्बंध में अपने अनुभव बताते हुए श्री मैके ने कहा — दिन-प्रतिदिन पति-पत्नी में मतभेद से पैदा होने वाली कतार मेरे समक्ष आती है, उसमें 75 प्रतिशत मामलों में शराब ने ही झंझट प्रारंभ करवाया है जिसने तलाक के लिए कार्यवाही को आवश्यक बना दिया। मैं यह देखकर विशेष रूप से द्रवित हुआ हूं कि महिलाओं में भी सुरापन की लत बढ़ती जा रही है। वस्तुत: यह प्रत्येक दृष्टि से नैतिक पराभव की ही परिचायक है। इसके बालकों को भी अपराध करने का प्रत्यक्ष बढ़ावा मिलता है, क्योंकि शराबी माताएं बच्चों के प्रति उपेक्षाशील हो जाती हैं। उनका समय मदिरालय के चक्कर लगाने में ही बीतने लगता है।

मद्यपान और गर्भस्थ शिशु

अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि गर्भवती नारी यदि अत्यधिक शराब पिये तो गर्भस्थ बच्चे में विकृति आ सकती है। यह बात केवल अत्यधिक शराब पीने वाली महिलाओं पर ही लागू नहीं होती अपितु कम मात्रा में कभी-कभी दिन में एक-दो बार कड़ी शराब पीने वाली महिलाओं पर भी लागू होती है। अमेरिका में यू.एस. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ अल्कोहलीक अब्यूज एण्ड अल्कोहलिज्म ने अपनी शोध में बताया है — प्रतिदिन एक-दो औंस विशुद्ध अल्कोहल यदि गर्भवती नारी लेती है तो उसके बच्चे के विकास में असमान्यता आ जाती है या जन्मजात विकृति आ जाती है। अनुमान है कि अमेरिका में स्कूल में पढ़ने वाले 50 से 70 लाख बच्चों में बुद्धि सम्बंधी कोई-न-कोई विकार है। शोध करने पर पता चला है कि उनकी माताएं गर्भावस्था में शराब पीती थीं, क्योंकि शराब मां के रक्त में पहुंचकर गर्भगत बच्चे की रक्तधारा में मिल जाती है। जब मां नशे की हालत में होती है तो गर्भावस्था में बच्चा भी नशे में हो जाता है। यह स्थिति उसके लिए बड़ी भयानक होती है, क्योंकि उसके यकृत का पूरा-पूरा विकास नही हुआ होता। वयस्क आदमी का यकृत 28 मि.ली. शराब का उपापचय एक घंटे में कर सकता है। भ्रूण का अविकसित यकृत इस कार्य को बड़ी धीमी गति से कर पाता है। अत: बच्चे तक पहुंचने वाला अल्कोहल गर्भनाल में अपविस्तृत हो जाता है। जब मां के रक्त में अल्कोहल की मात्रा नीचे उतरेगी तभी वह बच्चे के उस अतिरिक्त अल्कोहल को वापस ले सकेगी। अत: मां यदि 28 मि.ली. से अधिक शराब पीती है तो असहाय बच्चे को अति दीर्घकाल तक उसे अपने रक्त में रोके रखना पड़ता है। पर मां यदि पीती ही जाए, तो बच्चे में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया निश्चय ही होगी।

अभी तक यह बताना कठिन है कि किस काल में गर्भावस्था में शराब का दुष्प्रभाव सबसे अधिक होता है। पर इतना निश्चित है कि यदि मां की इच्छा हो कि उसका बच्चा स्वस्थ हो, उसका कद छोटा न हो, चेहरा विकृत न हो, आंखें छोटी न हों, नाक का ऊपरी हिस्सा दबा हुआ न हो, हृदय तथा फुफ्फुस निर्दोष हो, हाथ-पैर कुरूप न हों, मस्तिष्क अधिक मोटा न हो, उसे रक्तचाप न हो, स्नायु-दुर्बलता न हो तो उसे शराब से दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। इतना ही नहीं, मद्यपायी माताओं के बच्चे प्राय: मर जाते हैं। जीवित रह जाएं तो उनका वजन कम होता है।

4.4.3 मद्यपान और बाल-अपराध

मैके, ब्लैकर, डेमोल और केले ने अपने-अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि बाल- अपराधों और सुरापन का गहरा सम्बन्ध है।

1965 में कैलिफोर्निया के राजकीय बाल-सुधारगृहों में प्रविष्ट 60,147 बालकों का अध्ययन कर श्री रिचार्ड ने पता लगाया है कि उनमें से 20 प्रतिशत का अपराधों से सम्बन्ध रहा है। उनमें से अनेक मद्यपान के आदी थे।

18 अप्रैल, 1968 के रूस के प्रमुख समाचार-पत्र 'प्रावदा' से पता लगता है कि रूप में भी बच्चों में मद्यपान की आदत बढ़ रही है। 14 से 16 वर्ष की आयु के अनेक किशोरों द्वारा किये गये अपराधों का एकमात्र कारण शराब पीना ही था। उसे पीने के लिए उन्होंने चोरी की और पुन: पीने के लिए पुन: चोरी करनी पड़ी। फिर तो उनके जीवन में यह एक चक्र ही बन गया।

'लिसन' पत्रिका के सम्पादक जे.ए. वक्वाल्टर ने वाशिंगटन राजकीय पन्टिशियरी में रखे गये 200 बच्चों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमें से 189 मद्यपायी थे।

4.4.4 शराब और स्वास्थ्य

एक बार हम दर्शन और तर्क को छोड़ दें, नैतिकता और समाज-व्यवस्था को भी भूल जायें तो भी शराब मनुष्य के स्वयं के स्वास्थ्य के लिए कितनी भयानक है, इस पर जरा ध्यान दें। स्वास्थ्य- समस्याओं में हृदय-रोग और कैंसर के बाद तीसरा स्थान शराब के दुर्व्यसन का है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शराब शरीर और मन पर कितने भयंकर प्रभाव डालती है, इसकी जानकारी के लिए चिकित्सा- व्यवस्था में लगे लोगों, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, मनोरोग-विशेषज्ञों, शरीरक्रिया एवं औषधि विज्ञान-वेत्ताओं की राय महत्त्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से अमेरिका में आयोजित मानस-चिकित्सक और नाड़ी-तंत्र विशेषज्ञों के राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा है— इस सम्मेलन की सम्मति में यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि शरीर के भीतर ली गयी शराब मस्तिष्क और अन्य तंतुओं के लिए विष के रूप में काम करती है। इसके प्रभाव से प्रत्यक्ष रूप से पागलपन, मृगी, मन की दुर्बलता और अन्य इसी प्रकार की अनेक मानसिक बीमारियां आती हैं।

स्ट्रासबर्ग में आयोजित इण्टरनेशनल फिजीओलॉजिकल कांग्रेस में औषधि निर्माण विभाग के डॉक्टर ओटटो श्मेइदरवर्ग ने अपने निबन्ध में कहा था— शराब क्लोरोफार्म और ईथर की तरह अवसादक है। इसके सम्पर्क से व्यक्ति के शरीर के प्रत्येक तंतु की शक्ति निर्बल हो जाती है।

इंग्लैण्ड में पागलपन पर नियुक्त कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है कि पागलपन के विषाक्त कारणों की सूची में शराब मुख्य है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के सर्जन जनरल डॉक्टर थॉमस पाईन ने भी कहा है— पागलपन का मुख्य कारण शराब है।

अल्कोहल एण्ड अल्कोहलिज्म पुस्तक के पृष्ठ 14 पर लिखा है— अत्यधिक शराब पीने की वजह से प्रतिवर्ष कई मिलियन डॉलर खर्च हो जाते हैं। मानवीय कष्ट का मूल्य तो किसी प्रकार नहीं आंका जा सकता।

ह्विस्की, ब्रांडी आदि शराब सम्बंधी विशेष काढ़े हुए पेय जब पेट में डाले जाते हैं तब जिगर, छोटी आंत और छोटी नसों द्वारा मद्यसार शीघ्रता से रक्त की सहायता से शरीर के सब भागों में पहुंच जाता है। मुश्किल से ही कोई शराब बड़ी अंतड़ियों तक पहुंचती है। भोजन-रहित पेट में अंतड़ियों द्वारा मद्यसार को शीघ्रता से अपने में खपा लेना असाधारण गति से होता है। 10 से 30 मिनट के भीतर यह रक्त में उच्चस्तर तक पहुंच जाती है। जिस मात्रा में शराब ली जाती है उसी मात्रा में उसका परिणाम और यह हानि पहुंचाती है। प्रबल शराब का पेट के साथ सम्पर्क होने से वहां सूजन हो जाती है, जिससे पाचक-यंत्रों को स्थायी रूप से हानि होती है। यह एक प्रकार का प्रवाहशील विष है जो जिगर, दिल और गुर्दों को क्षति पहुंचाता है। इससे पेट में दीर्घकालीन सूजन हो जाती है।

शराब का पेट पर जो सीधा उत्तेजक प्रभाव पड़ता है वह मुख्यत: रक्त के जमा और संकुचित हो जाने का है। कभी-कभी इससे पेट में फोड़े हो जाते हैं। प्रतिदिन आदतन शराब पीने से पेट के अन्दर सूजन रहने लगती है। पुराने मद्यपायी वातनाड़ी शोध, मस्तिष्क-ज्वर, चमड़ी फटने का रोग, रक्ताल्पता आदि अनेक बीमारियों से घिर जाते हैं।

वैज्ञानिक खोजों से पता लगा है कि दीर्घकाल तक मद्य पीने से हृदय की नसें बेकार हो जाती हैं। इससे अनेक प्रकार के विकार प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार मद्यपान से अप्रत्यक्ष रूप से गुर्दे पर भी भारी प्रभाव पड़ता है। शराबी के मूल-अम्ल का निकलना कम हो जाता है, जिससे मूत्र के रक्तसारों में कमी हो जाती है। उससे मेग्नेशिया की भी कमी हो जाती है।

नशीले पेय शराब आदि कैंसर के भी मुख्य कारण हैं। उन समस्त देशों में जहां शराब अधिक पी जाती है, कैंसर का प्रसार अधिक है।

यकृत (Liver) शरीर में प्रविष्ट विषों को निकालने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। मदात्यय (Over-introxication) से शरीर की कोशिकाएं असामान्य रूप से विषाक्त बन जाती हैं, जिन्हें निर्विष बनाने के लिए यकृत को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार मदात्यय से मस्तिष्क और यकृत को अपूरणीय क्षति होती है। युवावस्था में मौत तक हो सकती है।

सवाल होता है— शराब से जब इतना नुकसान है तो लोग इसका प्रयोग क्यों करते हैं? इसका कारण यह है कि साधारण आदमी समझता है कि शराब पीने से वह चिंताओं से मुक्त हो जाता है। ऐसा केवल बीमार आदमी ही नहीं समझते हैं अपितु दिन भर की मेहनत से थका हुआ हर आदमी यही सोचता है। पर यह बात ध्यान की है कि नशे से न तो शक्ति आती है और न उससे चिंताएं मिटती हैं, अपितु नशे के बाद कार्यक्षमता तथा चिन्ताएं और अधिक बढ़ जाती हैं।

अल्कोहल के लगातार सेवन से आदमी के शरीर में अनेक बीमारियां घर कर लेती हैं। आंखें जलने लगती हैं, मितली-सी आने लगती है, भूख खत्म हो जाती है, थकावट आने लगती है, पसीना ज्यादा छूटने लगता है, शरीर में कंपकंपी शुरू हो जाती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। आदमी उसे दूर करने के लिए फिर ज्यादा शराब पीता है। परिणामत: परेशानियां भी बढ़ने लगती हैं और आदमी कए दुश्चक्र में उलझ जाता है।

सुप्रसिद्ध ब्रिटिश सर्जन सर लाउडर ब्रुटन ने कहा है—शराब धीरे-धीरे निर्णय को पंगु बनाती है, उसका यह कार्य प्रथम जाम के साथ ही प्रारंभ हो जाता है।

डॉक्टर क्वैनसैल का अभिमत है—मद्यसारयुक्त पेय की लघु मात्रा भी मूत्रालश की थैली की कार्य-प्रणाली में भारी परिवर्तन कर सकती है। विचार को पंगु बना सकती है, अनूभूति की स्वच्छता में कमी तथा निर्णय लेने की शक्ति को घटा सकती है।

4.4.5 मद्यपान और आयु

इटली के प्राध्यापक लोम्बोजो के निष्कर्ष के अनुसार शराब मानव जीवन को घटाने वाली प्रमुख चीजों में एक है। मद्यपान करने वाला 20 वर्ष की आयु वाला व्यक्ति 15 वर्ष और जिए जब कि न पीने वाला 44 वर्ष जी सकता है।

अनेक बीमा कम्पनियों ने शराब और मृत्यु-सम्बन्ध के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। मेडिकल एक्एरिल मोर्टलरी इन्वेस्टिगेशन के केन्द्रीय ब्यूरो के अध्यक्ष ने 25 वर्षों तक 20 लाख लोगों के जीवन-वृत्तों के सम्बन्ध में एक जांच का परिणाम देते हुए कहा है—यह सुनिश्चित है कि मद्यपायियों की अपेक्षा मद्यपान न करने वाले 50 वर्ष अधिक जीते हैं।

कानेक्टीकट म्युच्युअल के अध्यक्ष जैकब ग्रीने का कथन है—मैं इस बहु प्रचलित धारणा का विरोध करता हूं कि बीयर हानिरहित है। यदि शराबमुक्त लोगों की मृत्यु-संख्या 100 है तो यदा-कदा पीने वालों पी मृत्यु संख्या 122, संयमित पीने वालों की मृत्यु संख्या 142 तथा नियमित पीने वालों की मृत्यु-संख्या 212 है। इतना ही नहीं, शराब के धंधे में लिप्त व्यक्तियों की मृत्यु-दर भी बढ़ जाती है।

यह सब कुछ होते हुए भी आज मद्यपान का प्रवाह बढ़ रहा है। जहां पहले नशांबंदी का कानून था वह समाप्त कर दिया गया है। इसके पीछे शराब-प्रसारकों के व्यापक विज्ञापन अभियान एक मुख्य भूमिका निवाहते हैं। इससे लोगों पर मनोवैज्ञानिक असर होता है और मद्यपान के प्रति अनैतिकता की धारणा टूट गयी है। आज तो सुरापान सभ्य-समाज में सामाजिक स्तर का परिचायक समझा जाने लगा है। उसके बिना अतिथिसत्कार भी अधूरा समझा जाता है। सामाजिक उत्सव आदि में आजकल मद्यपान के लिए लोगों को विवश किया जाता है। बहुत लोग इच्छा न होते हुए भी केवल मजाक के पात्र बनने के डर से इनकार नहीं करते। पर बहुत लोग चाहकर वैसा करते हैं। वे नहीं जानते कि मद्यपान-सेवन उन्हें मानसिक परावलम्बिता तथा अत्यन्त खतरनाक दुर्व्यसन की ओर तेजी से धकेल रहा है।

विज्ञापन करने वाले करोड़ों रुपये इस बात का प्रसार करने में लगाते हैं कि सीमित मात्रा में शराब पीना बुरा नहीं है। पर सीमित मात्रा में मद्यपान ही अपरिमितता की ओर प्रथम मग है। इसका कभी-कभी उपयोग भी अन्तत: आदत बन जाती है। आज जो लोग भयंकर पियक्कड़ हैं उन्होंने भी शराब पीना कभी-कभी पीने से ही शुरू किया होगा। प्रारंभ में उन्होंने भी यही सोचा होगा कि सीमिति मात्रा में शराब पीते हैं या कभी-कभार पीते हैं। पर धीरे-धीरे उनके शरीर का ढांचा ही ऐसा बन जाता है कि वे पिये बिना रह ही नहीं सकते।

वैज्ञानिक साक्ष्य इस बात का समर्थन करती है कि कार-दुर्घटनाओं में अधिकांश का निमित्त मद्यपान है। यातायात दुर्घटनाओं में 51 प्रतिशत का सम्बन्ध शराब पिए हुए चालकों या परिचालकों से है। ड्राइवर के द्वारा मद्यपान करने पर उसके मस्तिष्क पर शराब का दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे वह सही ढंग से समन्वय, निर्णायकता और प्रतिवर्त सहज क्रिया (Reflex action) करने में अक्षम हो जाता है।

शराब पीने का प्रभाव ही यह होता है कि आदमी की नियंत्रण-शक्ति चेतनाशून्य हो जाती है और वह अच्छे-बुरे में भेद नहीं कर सकता। रक्त की धारा के माध्यम से जब शराब एक बार मस्तिष्क मेंप्रविष्ट हो जाती है तो उसका प्रभाव आत्म-नियंत्रण तथा निर्णय लेने की शक्ति पर हावी हो जाता है। इसलिए सीमित मद्यसारयुक्त पेयों का प्रयोग मात्र छलनामय सिद्धांत है। सीमित मात्रा में मद्यपान ही कभी न बुझने वाली शराब की शुरूआत देता है। इस दृष्टि से हल्की नशीली शराब का सेवन भी मद्यसार की आदत का निर्माण कर देता है। इसलिए इस दिशा में बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर-शक्ति के लिए शराब का प्रयोग करना न तो बुद्धिमानी है और न यह पौष्टिक खाद्य पदार्थ का स्थान ले सकती है। अल्कोहल में कैलरीज तो होती है पर वह विटामिन, प्रोटीन, लोहा आदि पौष्टिक पदार्थों का स्थान नहीं ले सकती। वह तो बस एक चाबुक मात्र है।

यदि हम थोड़ी-सी आंखों उठाकर देखें तो हमें अपने आस-पास ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे जिनके कारण परिवार का परिवार क्षत-विक्षत हो जाता है। न्यायाधीश ए.ए. डावसन (टैक्सास) के आकलन के अनुसार यदि मादक शराब का पीना बन्द हो जाये तो दो-तिहाई न्यायालय समाप्त हो जाएं। इसके साथ-साथ वर्तमान कानूनों को लागू करने में जितनी राशि खर्च होती है उसमें भी 84 प्रतिशत की बचत हो सकती है। आज करोड़ों-अरबों रुपये उन लोगों पर खर्च किए जाते हैं जो मद्यपान की चपेट में आ जाते हैं। अकेले अमेरिका में 21 वर्ष की अवस्था से ऊपर के अपराधियों पर 29 मिलियन डालर खर्च होता है, जबकि इन अपराधों में अधिकांश के मूल में शराब ही होती है।

कुछ लोगों का तर्क हे कि शराब पीना उनका अपना व्यक्तिगत मामला है। पर एक व्यक्ति का आचरण जब समाज को प्रभावित करने लग जाता है तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमा समाप्त हो जाती है। शराब पीना एक व्यक्तिगत मामला भले ही हो, आज यह एक सामाजिक रूप ले चुका है। थोड़ी-सी पी गयी शराब भी औद्योगिक उत्पादन की गति शिथिल कर देती है। मादकता लाने वाली शराब तो किसी भी आधुनिक फैक्टरी या कारखाने को नष्ट-भ्रष्ट कर सकती है। इसीलिए जेफरसन काउन्टी अलवाया के शेरिफ होस्ट मेकडोबेल का कहना है— मेरा सदैव विश्वास रहा है कि यदि कोई व्यक्ति कहता है कि शराब पीना उसका अधिकार है तथा उसमें बाधा डालने का किसी को अधिकार नहीं है तो एक शेरिफ के तौर पर मैं कह सकता हूं कि इस मामले में दखल देना एक नागरिक का परमपावन कर्त्तव्य है।

आज तो नशे की दृष्टि से शराब एक अकेली चीज नहीं रह गयी है अपितु भारत सरकार द्वारा स्थापित विशेषज्ञों की एक कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 'ड्रग एब्यूज इन इंडिया' में नशीली चीजों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं— भांग, गांजा, चरस, पेथेडीन, मारफीन, हीरोइन, कोकीन तथा शराब आदि। जो लोग इनके अधीन हो जाते हैं, वे बीमार हो जाते हैं।

सारी दुनिया में आज नशे की ये चीजें द्रुतगति से फैल रही हैं। थाइलैंड में 5 लाख से अधिक व्यक्ति नशीली दवाइयों के आदी हैं जबकि मलेशिया में उनकी संख्या सवा लाख है। उनमें से 75 प्रतिशत व्यक्ति तो हीरोइन का इस्तेमाल करते हैं। सिंगापुर तथा हांगकांग में तो उनकी संख्या 80 प्रतिशत हो जाती है।

इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा था—''मनुष्यों, तुम सिंह के सामने जाते समय भयभीत न होना क्योंकि वह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे सिर झुकाने से भयभीत मत होना क्योंकि वह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत-शिखर पर से पाताल में कूद पड़ना क्योंकि यह तप की साधना है। तुम बढ़ती हुई ज्वालाओं से विचलित मत होना, यह स्वार्थपरीक्षा है। पर शराब से सदा भयभीत रहना क्योंकि वह पाप और अनाचार की जननी है।'' आगे उन्होंने कहा है—''जिस राजा के राज्य में सुरादेवी आदर को प्राप्त होगी वह राज्य कालदेवी पर नष्ट हो जाएगा। वहां न औषधि उपजेगी, न अनाज।''

भारत सरकार ने भी अपने संविधान में स्वीकार किया है— राज्य अपनी जनता के पोषक भोजन और जीवन-निर्वाह के स्तर को ऊंचा करते और सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्रारंभिक कर्त्तव्य में मुख्य समझेगा और विशेषतया राज्य वह प्रयत्न करेगा कि नशीले पेयों और नशीली दवाइयों के प्रयोग का निषेध करें।

नशा एक ऐसी घातक एवं व्यक्ति को निष्क्रिय कर देने वाली आदत (लत) है कि यह जिसको लग जाए उसको और उसके परिवार को असक्षम बनाती है। इस बात को जानते हुए कि प्राय: नवयुवक शिक्षा व प्रशिक्षण के अभाव में बुरी लतों के शिकार हो ही जाते हैं। इससे वे न केवल अपना अपितु परिवार का व राष्ट्र का भी अहित करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.5 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. जर्दा व धूम्रपान के कुप्रभावों पर प्रकाश डालिए।
2. मद्यपान से किन-किन अपराधों का जन्म होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लोग जर्दा व धूम्रपान क्यों शुरू करते हैं, इसे लोग क्यों और कैसे छोड़ें?
2. धूम्रपान ने गत शताब्दी को किस प्रकार क्षति पहुंचाई।
3. व्यक्ति नशीले पदार्थों का सेवन क्यों करता है?
4. धूम्रपान का निवारण कैसे किया जा सकता है?
5. मद्यपान से बाल अपराध कैसे सम्भव है?
6. मद्यपान से आयु का क्षरण किस प्रकार होता है?
7. शराब का स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है?

संदर्भ पुस्तक:

1. जैनदर्शन और विज्ञान— मुनि महेन्द्रकुमार जेठालाल एस झवेरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–5
(क) ईश्वरवाद, कर्मवाद, अनेकान्तवाद

संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 ईश्वरवाद
5.3 निरीश्वरवाद
  5.3.1 ईश्वरवाद के संबंध में न्यायदर्शन की दार्शनिक समीक्षा
  5.3.2 ईश्वरवाद के तीन दृष्टिकोण
5.4 कर्मवाद
  5.4.1 कर्मवाद के तीन सिद्धान्त
  5.4.2 अधिकार है परिवर्तन एवं प्रगति का
  5.4.3 परिवर्तन का आधार
  5.4.4 एकांगी धारणा
  5.4.5 कर्म का कर्तृत्व नहीं है
  5.4.6 मिथ्या अवधारणाएँ
  5.4.7 कर्मवाद एवं पुरुषार्थ का मूल्य
  5.4.8 महावीर पुरुषार्थवाद के सशक्त प्रवक्ता
  5.4.9 नियामक कौन?
  5.4.10 वास्तविक सच्चाई : व्यावहारिक सच्चाई
  5.4.11 आधुनिक विज्ञान
  5.4.12 कर्मबंधन के कारण
  5.4.13 कर्म के प्रकार
  5.4.14 कर्म की दस अवस्थाएँ
  5.4.15 कर्म के कार्य
  5.4.16 आत्मा और कर्म का संबंध
  5.4.17 जगत् वैचित्र्य का हेतु है कर्म
5.5 अनेकान्तवाद
  5.5.1 अनेकान्त दर्शन में है दो दृष्टिकोणों का सम्मिलन
  5.5.2 अनेकान्त और सम्यक् दर्शन
  5.5.3 अनेकान्त के निष्कर्ष
  5.5.4 नय और अनेकान्त
  5.5.5 एकान्तवादी दृष्टिकोण की जैनदर्शन के आधार पर समीक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5.6 अनेकान्तवाद में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय का समन्वय

5.5.7 अनेकान्तवाद और सात भंग

5.6 जैनदर्शन और विज्ञान में परमाणु

5.6.1 चार प्रकार के परमाणु

5.6.2 परमाणु की परिभाषा

5.6.3 परमाणु के गुणधर्म

5.6.4 परमाणु की विस्तृत व्याख्या

5.6.5 परमाणु की गति के नियम

5.6.6 परमाणु की प्रतिघाती और अप्रतिघाती गति

5.6.7 परमाणु की तीव्रतम वेग

5.7 जैन परमाणुवाद

5.7.1 विकास-वृत्त

5.7.2 अल्फा, बीटा तथा गामा का क्षय (रेडियो धर्मिता)

5.7.3 क्वाण्टम सिद्धान्त

5.7.4 प्रारम्भिक कण

5.7.5 क्वार्क : पदार्थ का मूलभूत कण

5.7.6 मूलभूत कण का वेग

5.7.7 आकर्षण के बल

5.8 आधुनिक विज्ञान में परमाणु सिद्धान्त

5.8.1 मूलभूत कण और परमाणु

5.8.2 द्रव्याक्षरत्ववाद

5.8.3 पदार्थ एवं ऊर्जा (मैटर एण्ड एनर्जी)

5.8.4 परमाणु के मूल गुण धर्म

5.8.5 सूक्ष्म परिणमन

5.8.6 परमाणु ऊर्जा और तेजोलेश्या

5.8.7 भावी संभावना

5.9 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना

जैनदर्शन की तत्त्वमीमांसा बहुत ही वैज्ञानिक है। जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये अनादि द्रव्य हैं और स्वत: नियंत्रित हैं। कारण और कार्य की नियत व्यवस्था कर्म तथा उसके फल के लिए जिम्मेदार है। जैनदर्शन कर्म को भी पौद्‌गलिक मानता है। पौद्‌गलिक कर्म ही अपने योग्य स्थान पर स्वत: आकर्षित होते हैं उनका अपना शाश्वत विज्ञान है। तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है जैनदर्शन एक वैज्ञानिक दर्शन है वह किस प्रकार है इसका विस्तृत अध्ययन हम निम्नलिखित पाठ में कर सकेंगे।

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी निम्न उपशीर्षकों का विशेष अध्ययन करके 'ईश्वरवाद, कर्मवाद, अनेकान्तवाद' तथा 'जैनदर्शन और विज्ञान में परमाणु' के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 ईश्वरवाद

अज्ञात रहस्यों को समझने के लिए दार्शनिकों ने अनेक सिद्धान्त स्थापित किए। कर्म के विषय में भी अनेक सिद्धान्त स्थापित हैं। कुछ दार्शनिक केवल कर्म को जिम्मेदार मानते हैं। कुछ दार्शनिक कर्मवाद को मानते हैं पर ईश्वर के सहचारी के रूप में उसे स्वीकार करते हैं, केवल कर्मवाद को ही नहीं मानते। प्रश्न उठता है जगत् की व्यवस्था कैसे चलती है? यही बहुमत उत्पन्न हो जाता है। ईश्वर कर्त्ता के रूप में है या उपादान कारण के रूप में। वह कर्त्तव्य भोक्तृत्व के बंधन से मुक्त है। जैनदर्शन के अनुसार ऐसा कोई सर्वशक्तिमान अवयवी ईश्वर नहीं है जो जगत् के कर्त्ता और नियन्ता के रूप में हो। वहां परमात्मा शुद्ध बुद्ध मुक्त अनन्त दर्शन, ज्ञान और चरित्र से युक्त है। योग दर्शन में ईश्वर क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध अन्य पुरुषों से विशेष चेतन ईश्वर है— **क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुषविशेषईश्वर:**। योग दर्शन में स्वीकृत ईश्वर जगत् के कर्त्ता के रूप में सिद्ध नहीं होता। वहां भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति (सत्, रज, तमोगुण युक्त प्रवृत्ति) सृष्टि का आधार बनती है। भारतीय दर्शनों में न्याय दर्शन की ऐसी मान्यता है कि संसार के प्राणियों को इष्ट विषय में प्रयत्न करने पर भी उसकी कोई इच्छा पूर्ण नहीं होती, जिससे अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध होता है कि प्राणियों के किए कर्मों का फल प्राप्त होना दूसरे के अधीन है वही ईश्वर है, जो सम्पूर्ण जगत् के कार्यों का निमित्त कारण है— **'ईश्वर: कारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्'** अर्थात् लोगों के कर्मों के फल को परोक्ष रूप में कौन देता है? अत: कर्म फल का कारण ईश्वर है। वह विशिष्ट आत्मा जिसमें धर्म ज्ञान समाधि है अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राकाम्य, ईशित्व, प्राप्ति, वशित्व और ऐश्वर्य है वह ईश्वर है। परमाणु जगत् का उपादान कारण है और ईश्वर निमित्त। न्यायदर्शन ने ईश्वर को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण उपस्थित किए हैं— घट एक कार्य है, वह स्वयं नहीं होता। मिट्टी स्वयं घड़ा नहीं बनती, कुम्हार उस घड़े को रूप देता है। ईश्वर के सम्बंध में वैशेषिक दर्शन की मान्यताएं योग के समान ही हैं। वेदान्त का कहना है कि यह सही है, ईश्वर आप्तकाम है। उसकी सब इच्छाएं, कामनाएं पूर्ण हैं किंतु यह जगत् की किसी इच्छा या कामना का परिणाम नहीं है। जगत् की सृष्टि ईश्वर की मात्र एक लीला है, खेल है, उसके पीछे क्या प्रयोजन है?

इस सम्बंध में वादरायण का एक सूत्र है— **'लोकवत्तु लीलाकेवल्यम्'**। आचार्य शंकर ने इसका विश्लेषण करते हुए बतलाया है—ईश्वर के लिए कोई प्रयोजन अपेक्षित नहीं है। उनसे स्वभावत: लीला रूप में प्रवृत्ति होती है। इसके लिए ईश्वर का न श्रुत्यनुसार ही और न न्यायानुसार ही कोई उद्देश्य है। जो स्वभाव है उसे किसी प्रयोजन आदि से जोड़ा नहीं जा सकता। हमें यह जगत् रचना बड़ी गुरुत्तर प्रतीत होती है, पर ईश्वर की शक्ति अपरिमित है, उनके लिए मात्र यह एक साधारण-सा खेल है।

यह स्पष्ट है कि संसार में न्यूनतम और अधिकतम दो कोटियां हैं। जैसे वस्तु का सबसे छोटा रूप परमाणु है, सबसे बड़ा रूप आकाश है। ज्ञान की भी जैसे न्यून, न्यूनतर तथा न्यूनतम कोटियां हैं, वैसे उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम कोटियां भी होनी चाहिए। ज्ञान की उच्चतम कोटि ईश्वर है। वह ज्ञान का सर्वोत्तम सर्वातिशायी प्रतीक है।

सांख्य दर्शन ने प्रकृति, पुरुष के संयोग से जगत् की उत्पत्ति माना है। वियोग से प्रलय होता है। यह संयोग-वियोग कौन करता है? यह प्रश्न है। योग इसका उत्तर ईश्वर के अस्तित्व और कृतित्व में देता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसका ज्ञान सर्वग्राही है। वह पुरुष के कर्म एवं अदृश्य को साक्षात् जानता है, तदनुसार उनका संयोग घटित करता है। जीवों को उन द्वारा कृत कर्मों का फल भोगने को प्रेरित करता है।

योगदर्शन ने अपने साधनाक्रम के मध्य ईश्वर की बड़ी उपयोगिता बतलाई है। जहां समाधि का वर्णन है, कहा है ईश्वर के प्रणिधान से भी समाधि सिद्ध होती है। तन्मयता पूर्वक चित्त को ईश्वर में स्थापित करना, लगाना अथवा अपने कर्मफल ईश्वर को सौंप देना प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान से क्लेशों का क्षय होता है। प्रणिधान से ईश्वर प्रसन्न होते हैं। योगी की साधना में आने वाले विघ्नों को स्वयं मिटा देते हैं, प्रतिबंधों का अपनयन करते हैं। अन्तरायमूलक क्लेशों का परिहार कर समाधि का सम्यक् उद्बोधन देते हैं।

वैराग्य एवं अभ्यास द्वारा बहुत कठिनाई से प्राप्त समाधि अवस्था ईश्वरप्राणिधान द्वारा सरलता से प्राप्त हो जाती है। यहां यह जानना आवश्यक था कि ईश्वरवाद को ईश्वरवादी लोग किस रूप में समझते हैं। ईश्वरवाद की संक्षिप्त प्रस्तुति के बाद निरीश्वरवाद की संक्षिप्त प्रस्तुति यहां आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3 निरीश्वरवाद

भारतीय दर्शनों में बौद्ध, जैन, सांख्य तथा मीमांसा मुख्यत: निरीश्वरवादी दर्शन है। बौद्ध दर्शन जगत् के सर्जन, संचालन एवं धारण के लिए किसी अलौकिक सत्ता मे, ईश्वर में विश्वास नही करता। उसके अनुसार यह सारा जगत् प्रतीत्य समुत्पाद (द्वादस निदान) अविद्या→से→संस्कार→से→विज्ञान→से→नामरूप→ से→षडायतन→से→स्पर्श→ से→वेदना→ से→तृष्णा→ से→उपादान→से→भव→से→जाति→से→जरामरण। ये भवचक्र के बारह आरे हैं। इनमें से एक का भी निरोध हो जाता है, संपूर्ण चक्र रुक जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि सभी पदार्थ क्षणिकवाद—उत्पत्ति एवं विनाश के अनवरत क्रम के अन्तरवर्ती है। यह सब (कारण-कार्य) पूर्वक चल रहा है। इसमें किसी ईश्वर जैसी अलौकिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है। जगत् की दिखाई पड़ने वाली विचित्रता एवं विविधता कर्म जनित है। कर्म प्रयत्न एवं कार्य-कारण की श्रृंखला पर आधारित है, उसमें किसी अन्य का न कोई कर्त्तव्य ही है और न कोई हस्तक्षेप ही। सब कुछ अपने विधिक्रम एवं व्यवस्थाक्रम में चल रहा है। यह जगत् अनादि-अनन्त है।

बुद्ध की ईश्वरवाद मे तनिक भी आस्था नही थी क्योंकि ईश्वर में विश्वासी होना उनके अनुसार अकर्मण्य होना था, आत्मविश्वास से हाथ धोना था। भगवान् बुद्ध ने बताया कि निर्वाण, जो उत्पत्ति, स्थिति तथा विलय रहित है, अन्तरहित है, अत्यन्त आभामय ज्योतिर्मय है, में चारों भूतों का सर्वथा निरोध होता है। जैनदर्शन में अनेक ग्रंथों में ईश्वरवाद पर विस्तृत विश्लेषण हुआ।

5.3.1 ईश्वरवाद के सम्बंध में न्यायदर्शन की दार्शनिक समीक्षा

न्यायदर्शन में कुंभकार और घर का उदाहरण देते हुए जो यह कहा गया कि जो भी पदार्थ है, कार्यरूप है, यह आवश्यक है कि उसका कोई न कोई कर्त्ता हो, कर्त्ता के बिना कार्य हो नही सकता। जैनदर्शन का प्रश्न उपस्थित होता है, ईश्वर जगत् को शरीर द्वारा रचता है या बिना शरीर द्वारा? यदि शरीर द्वारा रचता है तो उसका शरीर दृश्य है या अदृश्य? यह स्पष्ट है शरीर दृश्य तो नहीं है क्योंकि हम वृक्ष, लता, मेघ आदि को उत्पन्न होते हुए देखते हैं। कोई उनका सृष्टा, निर्माता, दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि वह दृश्य शरीर के लिए होता तो अवश्य दिखाई देता। यदि वह अदृश्य शरीर द्वारा रचना करता है तो वैसा कैसे संभव है? यदि कहा जाए ईश्वर का माहात्म्य, अतिशय या वैशिष्ट्य है, जो उसके अदृश्य शरीर की संभाव्यता का कारण है, यह समाधान न्यायसंगत, तर्कसिद्ध नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ओर अदृश्य शरीर के आधार पर ईश्वर की गरिमा है तथा दूसरी ओर ईश्वर की गरिमा के कारण या आधार पर अदृश्य शरीर है। ऐसा मानने से अन्योन्याश्रय दोष आता है। अत: यह युक्ति नहीं है कि ईश्वर ने जगत् की रचना की तथा वैसा ईश्वर कोई है।

एक प्रश्न और उठता है कि शरीर तो पुण्य और पाप का फल है। हमारे शरीर तो हमारे पुण्य, पाप के फल हैं, किंतु ईश्वर का शरीर किसका फल है? वह तो पुण्य, पाप से अतीत है। ईश्वर की सृष्टि-रचना को लीला मात्र कहा जाना भी युक्ति संगत नहीं है। यदि ईश्वर लीला के लिए ही यह सब करे तो वह केवल बच्चों के खेल जैसा होगा, जबकि जगत् वैसा नहीं है। वह पुण्य, पाप, अदृष्ट, संस्कार आदि के अनुरूप एक वद्धानुबद्ध व्यवस्थित क्रम लिए हैं, जिसके अंतर्गत वह नियमित रूप में गतिशील है।

सारांश यह है कि जगत् किसी की भी रचना नही है और न कोई वैसा पुरुष विशेष ही है जो यह सब करे। यह अनादि-अनन्त प्रवाह रूप है।

मीमांसा यज्ञ-यागमूलक कर्म-काण्ड प्रधान दर्शन है। यज्ञों में देवताओं के नाम पर आहुतियां दी जाती हैं। मीमांसक ऐसा मानते हैं कि यज्ञानुष्ठान से आत्मा में एक विशिष्ट शक्ति का उद्भव होता है, उसे 'अपूर्व' कहा जाता है। उसके कारण यज्ञकर्त्ता को अपने अभीप्सित प्राप्त होते हैं। यज्ञों के अनुष्ठान से अभीप्सित (इच्छित फल) प्राप्त कराने में किसी देव या ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। न वैसी कोई आवश्यकता ही है। 'अपूर्व' यज्ञों का अभीष्ट समुचित फल प्राप्त कराने में समर्थ है। मीमांसा के अनुसार देवताओं का स्वीकार भी केवल आहुतिग्रहण तथा बलिग्रहण के लिए है, उपासना के लिए नहीं। उनके अनुसार जगत् स्रष्टा के रूप में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। सांख्य ईश्वर के अस्तित्व में आस्था नहीं रखता। उसके अनुसार ईश्वर ने जगत् की रचना नहीं की। इस जगत् का उपादान कारण प्रकृति है। पुरुष-आत्मा के पुण्य, पाप निमित्त कारण हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.2 ईश्वरवाद के तीन दृष्टिकोण

हमारे सामने ईश्वरवाद के तीन दृष्टिकोण है — दार्शनिक दृष्टिकोण, धार्मिक दृष्टिकोण, नैतिक दृष्टिकोण।

5.3.2.1 (क) दार्शनिक दृष्टिकोण

सृष्टि है परिवर्तनात्मक — जैनदर्शन कर्मवादी दर्शन है। उसे ईश्वर विषयक सिद्धान्त मान्य नहीं है। ईश्वर के लिए तीन कार्यों की कल्पना की गयी है — 1. सृष्टि का कर्त्ता होना चाहिए, 2. नियंता होना चाहिए, 3. अच्छे या बुरे कार्य का फल भुगतने वाला होना चाहिए। सृष्टिकर्त्ता, सृष्टि के नियंता और कर्मफल के भोग देने वाले, नियोजन करने वाले — ईश्वर की कल्पना के पीछे ये तीन मुख्य तत्त्व काम करते हैं। जैनदर्शन ने जगत् को अनादि माना, इसलिए उसे ईश्वर की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई।

(ख) सृष्टि का नियन्ता कोई नहीं

जैनदर्शन जगत् को भी मानता है और सृष्टि को भी मानता है। जगत् अनादि है, प्रत्येक पदार्थ अनादि है। प्रत्येक में परिणमन होता है, जीव और पुद्गल के संयोग से वैभाविक परिणमन होता है, जीव और पुद्गल के संयोग से वैभाविक परिवर्तन होता है। वह सृष्टि है। सृष्टि जीव और पुद्गल के द्वारा संपादित होती है। जीव और पुद्गल के अतिरिक्त किसी तीसरी सत्ता को मानने की कोई आवश्यकता नहीं।

दूसरा प्रश्न है नियमन का। जैनदर्शन के अनुसार सृष्टि का नियंता कोई नहीं है। अगर कोई नियंता है, सर्वशक्तिमान है तो सृष्टि इस प्रकार की नहीं होती। इस त्रुटिपूर्ण व्यवस्था वाली सृष्टि के लिए अगर ईश्वर को नियन्ता माने और साथ-साथ में सर्वशक्तिमान भी माने तो दोनों में अन्तर्विरोध जैसा उपस्थित हो जाता है। यदि सृष्टि का कर्त्ता सर्वशक्तिमान है तो व्यवस्था इतनी त्रुटिपूर्ण नहीं होगी। यदि वह सर्वशक्तिमान नहीं है तो वह सारी सृष्टि का अकेला नियमन नहीं कर सकता। यह नियन्ता वाली बात संगत प्रतीत नहीं होती।

(ग) सृष्टि का नियमन नियम के द्वारा

जैनदर्शन में नियन्ता की आवश्यकता अनुभव नहीं की उसका सिद्धान्त है नियम। सृष्टि का नियमन नियम के द्वारा होता है, नियंता के द्वारा नहीं होता है। जगत् की सृष्टि के कुछ सार्वभौम नियम है, जो प्राकृतिक है किसी के द्वारा बनाए हुए नहीं हैं। जीव पुद्गल के स्वयंभू नियम हैं और वे नियम अपना काम करते हैं।

एक जीव को मोक्ष जाना है तो वह अपने नियम से जायेगा। एक पुद्गल को, परमाणु को बदलना है तो वह अपने नियम से बदलेगा। एक परमाणु एक गुणा काला है और उसे अनन्त गुणा काला होना है तो वह अपने नियम से होगा। निर्धारित समय पर उसे निश्चित रूप से बदलना ही पड़ेगा। यह प्राकृतिक नियम है, सार्वभौम नियम है। इस नियम से सारा नियमन हो रहा है। यह सारी ऑटोमेटिक व्यवस्था है, स्वयंकृत व्यवस्था है। बाहर से कृत या आरोपित व्यवस्था नही है, इसलिए नियंता की आवश्यकता प्रतीक नही होती।

(घ) कर्त्तृत्व : भोक्तृत्व

तीसरा प्रश्न है — कर्म का फल कोई देने वाला होना चाहिए। जैसे चोरी करने वाला चोर अपने आप उसका फल नहीं भुगतता। कोई न्यायाधीश होता है, दंडनायक होता है, जो उसे दंडित करता है, फल देता है, वैसे ही सारे जगत् को अच्छे और बुरे कर्म का फल देने वाला भी कोई होना चाहिए। इस आधार पर कर्मफलदाता की आवश्यकता कुछ दार्शनिकों ने महसूस की। किंतु जैनदर्शन ने इस आवश्यकता का अनुभव नहीं किया। जैनदर्शन का मानना है — कर्म करने और उसका फल भोगने की शक्ति स्वयं जीव में निहित है। उसे बाहर कही से लाने की आवश्यकता नहो है। अपना स्वयं का कर्त्तृव्य और अपना स्वयं का भोक्तृत्व — दोनों उसमें समाहित हैं। इन तीन स्थितियों के आधार पर जैनदर्शन को ईश्वर की आवश्यकता दार्शनिक दृष्टि से अनुभव नहीं हुई। मनुष्य अपने कर्मों द्वारा कर्मों के योग्य परमाणुओं को आकर्षित करता है। विश्व में शुभ-अशुभ आदि असंख्यात परमाणु हैं। वे व्यक्ति के कर्मों के अनुरूप उसकी आत्मा में चिपकते हैं और जिस कर्म का जो फल नियत है वह मिलता ही है।

(ङ) प्रयोजनवादी दृष्टि

एक संदर्भ है प्रयोजन का। प्रयोजनवादी दृष्टि से भी कुछ प्रश्न उभरते हैं — ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण क्यों किया? वह क्यों जगत् के प्रपञ्च में आया और वह क्यों सबकी व्यवस्था और नियमन करता है। वह अच्छा करने वाले को अच्छे फल देता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है और बुरा करने वाले को बुरा फल देता है। वह ऐसा क्यों करता है? उसका क्या प्रयोजन है? यह बड़ा जटिल प्रश्न है ईश्वरवादी के सामने। प्रयोजनवादी तर्क जब सामने आता है तो उसका संतोषजनक समाधान नहीं मिलता। यदि करूणाप्रयोजन है तो प्रश्न होगा—यह प्रयोजन कब पैदा हुआ? यदि कहा जाए—जिस दिन ईश्वर जन्मा, उसी दिन प्रयोजन पैदा हो गया तो इसका अर्थ होगा—ईश्वर और जगत् का जन्म एक साथ हुआ। यदि ईश्वर पहले था और प्रयोजन कभी बाद में हुआ तो प्रश्न आयेगा—प्रयोजन बाद में क्यों पैदा हुआ, पहले क्यों नहीं हुआ? उसका प्रयोजन आखिर क्या है? उत्तर दिया गया—करूणा थी प्रयोजन। ईश्वर के मन में करूणा जागी और उसने सृष्टि का निर्माण कर दिया।

(च) एकोऽहं बहुस्याम्

यह करूणावादी प्रयोजन वाली सृष्टि नही है। जहां इतनी क्रूरता और इतना आतंक है वहां करूणावादी दृष्टिकोण सफल नहीं होता। करूणा की बात समझ में नहीं आती। दूसरे भी जितने प्रयोजन हैं उनकी कोई संगत व्याख्या सामने नहीं आती। इन सारे दार्शनिक बिन्दुओं के आधार पर जैनदर्शन ने ईश्वरवाद के अस्तित्व को नकार दिया। कहा जाता है—ईश्वर को अकेला रहना अच्छा नहीं लगा इसलिए उसने सोचा—**'एकोऽहं बहुस्यामि'** अर्थात् मैं बहुत हो जाऊं। इसलिए वह एक से बहुत हो गया। जिसप्रकार से ईश्वर की कल्पना है, उससे यह बात भी संगत नही लगती।

5.3.2.2 ईश्वरवाद: धार्मिक दृष्टिकोण

धार्मिक दृष्टि से मन में इस आस्था का बैठ जाना कि जो कुछ करता है ईश्वर करता है या इस आस्था में विश्वास करना कि अजगर किसी की नौकरी नहीं करता, पक्षी भी काम करने मे भार से मुक्त तो रहते ही हैं फिर भी दाता सबको देता है अर्थात् कोई भूखा नहीं रहता—

अजगर करै न चाकरी पंक्षी करै न काम।
दास मलूका कहि गये कि सबके दाता राम।।

ऐसी आस्था ने मनुष्य को दीन-हीन अकिंचित्कर बनाया है। जब प्रगति और परिवर्तन का अधिकार मनुष्य को नही है तो ईश्वर का अस्तित्व उसे संकट में डालने वाला है। मनुष्य न प्रगति कर सकता और न परिवर्तन कर सकता है। जैसा है वैसा ही रहे। ये दोनों जब मनुष्य के हाथ में नहीं हैं तो धार्मिक दृष्टिकोण से ईश्वर का अस्तित्व उसके लिए खतरनाक बन गया। इस धारणा ने रूढ़िवाद तथा निराशावाद को जन्म दिया और इसी निराशावादी दृष्टिकोण ने मनुष्य के उत्साह को प्रभावित किया है।

5.3.2.3 ईश्वरवाद नैतिक दृष्टिकोण

नैतिक दृष्टि से विचार करें—यदि मनुष्य का दृष्टिकोण स्वतंत्र नहीं है तो वह अपने द्वारा किए गये कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता, कृत के लिए वही स्वतंत्र हो सकता है, जिसका संकल्प स्वतंत्र है। व्यक्ति का संकल्प उसे कृत के लिए उत्तरदायी बनाता है। यदि कृत स्वतंत्र नहीं है, ईश्वर ने जैसा कराया, वैसा उसने कर लिया तो अच्छे और बुरे का उत्तरदायी वह क्यों बनेगा? ईश्वर ने अच्छा कराया तो अच्छा कर लिया और बुरा कराया तो बुरा कर लिया। उत्तरदायी कराने वाला है या करने वाला है?

एक यंत्र उत्तरदायी नहीं हो सकता। एक लौह-मानव (Robot) थोड़ी दूर चलता है और फिर गोली दागता है। प्रश्न प्रस्तुत होता है—उसका उत्तरदायी कौन है? क्या वह लौहमानव है, यंत्र-मानव है, रोबोट है? बिल्कुल नहीं। उत्तरदायी है चलाने वाला। मनुष्य जिस प्रकार चलाता है, यंत्र-मानव उसी प्रकार चलता है। यदि मनुष्य वैसा ही यंत्र-मानव या लौह-मानव है तो वह अपने कृत का उत्तरदायी नही हो सकता। नैतिक दृष्टि से यह एक बड़ी समस्या पैदा हो जाती है, नैतिकता की बात एक प्रकार से समाप्त हो जाती है। जैनदर्शन में कर्मवाद का सिद्धान्त है। जीव के पर्याय कौम के आधार पर बनते-बिगड़ते हैं, अतः जैनदर्शन के कर्मवाद को समझना अत्यावश्यक है।

5.4 कर्मवाद

ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी सभी भारतीय दर्शनों ने कर्मवाद का सिद्धान्त स्वीकार किया है। कर्म का स्वरूप, फल परिणाम, आदेयत्व, अनादेयत्व आदि अनेक पहलू हैं, जिन पर विभिन्न दर्शनों में विस्तार से विचार हुआ है। कर्मवाद के वैज्ञानिक स्वरूप को संक्षिप्त में बताने का प्रयास यहां किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर्म मूर्त्त हैं, पौद्‌गलिक हैं — अस्तित्व द्वारा — आत्मा की मानसिक, वाचिक, कायिक शुभ-अशुभ प्रवृत्ति द्वारा कर्म पुद्‌गल आकृष्ट होते हैं। वे आत्मा से चिपक जाते हैं, आत्मा के शुद्ध स्वरूप को आवृत्त करते जाते हैं। जिस प्रकार प्रकाश के आगे पर्दा डाल दिया जाये तो वह (प्रकाश) अवरूद्ध हो जाता है, उसी प्रकार कर्मों के आवरण द्वारा आत्मा की ज्योति शक्ति आवृत्त हो जाती है। शुभ प्रवृत्ति द्वारा पुण्य-बंध तथा अशुभ प्रवृत्ति द्वारा पाप-बंध होता है।

कर्म की परिभाषा है — **'जीवं परतंत्री कुर्वन्तीति कर्मणि आत्मप्रवृत्याकृष्टास्तद् प्रायोगय पुद्‌गल:कर्म:'** आत्मा की प्रवृत्ति से आकृष्ट हुए तथा जीव को कर्म में परतंत्र करने वाले पुद्‌गल कर्म कहलाते हैं।

कर्म-बंधन के परिणामों की तीव्रता एवं मन्दता की दृष्टि से कर्म दो प्रकार के होते हैं — निकाचित, अनिकाचित। निकाचित कर्म तीव्र-गाढ़ बन्ध युक्त होते हैं। अनिकाचित कर्म निर्जरा द्वारा समयावधि से पूर्व ही निर्जीर्ण हो सकते हैं।

आत्मा के गुणों पर आवरण डालने की दृष्टि से कर्मों के आठ भेद किए गये हैं — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय।

आत्मा के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्यशक्ति आदि गुणों को ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और मोहनीय आदि कर्म आवृत्त करते हैं।

कर्मों के आवरण को मिटाना, उसे सर्वथा अपगत करना जैनदर्शन का मुख्यलक्ष्य है, जिससे आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाती है।

कर्मवाद के प्रसंग में यहां गीता के अनासक्त कर्मयोग की चर्चा भी अपेक्षित है। गीता में यह माना गया है कि कर्त्तव्यकर्म द्वारा मनुष्य भगवान् को प्राप्त कर सकता है, परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है, यदि वे कर्म आसक्ति रहित हों कर्त्ता फलभिकांक्षा से एकदम विरत रहते हुए उन्हें करे यही गीता का अनासक्त कर्मयोग है।

5.4.1 कर्मवाद के तीन सिद्धान्त

जैनदर्शन ने इस पर समग्रता से विचार किया। उसने पहला सूत्र दिया कर्मवाद का। हर आत्मा की स्वतंत्रता कर्मवाद का पहला आधार है। यदि व्यक्ति का संकल्प स्वतंत्र नहीं है तो वह अपने कृत के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता। संकल्प करने में वह स्वतंत्र है इसलिए कृत के प्रति उत्तरदायी है। वह अच्छा करता है तो उसका फल अच्छा होता है और बुरा करता है तो बुरा होता है। अच्छे और बुरे का जिम्मेवार वह स्वयं है। यह संकल्प की स्वतंत्रता कर्मवाद का पहला सिद्धांत है।

कर्मवाद का दूसरा सिद्धांत है — कृत का नैतिक जिम्मेवार व्यक्ति स्वयं है। वह अपने कृत के लिए नैतिक दायित्व से अलग नहीं हो सकता। कोई भी काम करता है तो उसे यह उत्तरदायित्व लेना होगा कि इसके लिए मैं स्वयं जिम्मेवार हूं।

कर्मवाद का तीसरा सिद्धांत है — व्यक्ति को प्रगति और परिवर्तन का अधिकार है। छोटे से छोटे प्राणी को भी ये दोनों अधिकार उपलब्ध हैं। एक एकेन्द्रिय प्राणी अपना विकास करते-करते पंचेन्द्रिय तक पहुंच जाता है, मनुष्य तक पहुंच जाता है, मुनि बन जाता है। आध्यात्मिक उत्क्रांति के पथ पर चलते-चलते वह वीतराग बन जाता है, केवली बन जाता है, मुक्त आत्मा भी बन जाता है। यह आध्यात्मिक उत्क्रांति का अधिकार प्रत्येक आत्मा को उपलब्ध है। प्रत्येक आत्मा इस उत्क्रांति के आधार पर आत्मा से परमात्मा बन सकती है।

5.4.2 अधिकार है परिवर्तन एवं प्रगति का

प्रश्न होता है — आज मनुष्य जैसा है, क्या वह वैसा ही रहे? या अपने आपको बदल सके? जैनदर्शन ने व्यक्ति को परिवर्तन का अधिकार दिया है। उसने कहा — हर आदमी बदल सकता है, परिवर्तन कर सकता है। अगर परिवर्तन हो तो व्यक्ति की सारी साधना, तपस्या व्यर्थ बन जाए। इस बात में विश्वास नहीं किया जा सकता कि जो जैसा है वैसा ही रहेगा। जिसका स्वभाव जैसा है वैसा ही रहेगा। ऐसा वह मान सकता है, जिसने परिवर्तन को अस्वीकार किया है।

जैनदर्शन परिवर्तन और प्रगति को स्वीकार करता है इसलिए उसमें तपस्या और साधना का मूल्य है। यदि उन्हें अस्वीकार किया जाए तो तपस्या और साधना का मूल्य समाप्त हो जाता है। क्रोध, अहंकार, लोभ, अभिमान, माया, भय, कामवासना आदि-आदि जितने मोहकर्म के विकार हैं उन सबको बदला जा सकता है, उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। यह व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता है। इसी आधार पर साधना की पद्धति का विकास हुआ। तपस्या, ध्यान, स्वाध्याय — इनका विकास परिवर्तन के सिद्धांत के आधार पर हुआ है। यह परिवर्तन का सिद्धांत नहीं होता तो साधना और तपस्या का कोई अर्थ नहीं होता। ध्यान, स्वाध्याय और तपस्या — इन सबका विकास परिवर्तन के सिद्धांत के आधार पर हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.4.3 परिवर्तन का आधार

परिवर्तन का आधार है—संकल्प की स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता ने ऐसा मार्ग दिया है, जिसमें न रूढ़िवाद के पनपने की जरूरत है, न निराशावाद के पनपने की जरूरत है और न पलायन की जरूरत है।

जैन धर्म निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया है। स्वयं को बदला जा सकता है, प्रत्येक क्षण बदला जा सकता है। इसी आधार पर स्वतंत्रता का सिद्धांत सार्थक बनता है।

5.4.4 एकांगी धारणा

जैनदर्शन ने कर्मवाद के सिद्धांत को स्वीकार किया, किंतु कर्मवाद ईश्वरवाद का स्थान नही ले सकता। ईश्वरवादी कहते हैं—ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता, एक पत्ता भी नहीं हिलता। यदि जैनदर्शन यह मान ले कि कर्म के बिना कुछ भी नहीं होता तो ईश्वरवाद और कर्म के सिद्धांत में कोई अंतर नहीं रह पाता। कर्म स्वयं ईश्वर के स्थान पर बैठ जाता है।

जो कुछ होता है वह सब कर्म से होता है। यह बिल्कुल एकांगी धारणा है। जैनदर्शन के अनुसार यह सही नहीं है, उचित नही है। कर्मवाद से सब कुछ नहीं होता। कर्म का स्थान सीमित है। एक सीमित स्थान में कर्म से कुछ होता है, किंतु सब कुछ नही होता।

5.4.5 कर्म का कर्तृत्व नहीं है

कर्म हमारी कृति है किंतु कर्त्तृत्व उसका नही है। कर्त्तृत्व है आत्मा का। कृति का प्रभुत्व नहीं हो सकता। प्रभुत्व कर्त्तृत्व का हो सकता है। यदि व्यक्ति द्वारा किया हुआ कर्म सब कुछ बन जाए तो कर्त्ता गौण बन जाए। कर्त्ता का तो कोई अर्थ ही नहीं रहे। कर्म में कर्त्तृत्व नहीं है। कर्त्तृत्व व्यक्ति के भीतर उसके संकल्प में है। यदि कृति और कर्त्ता का भेद स्पष्ट होता है तो कर्म को उतना ही मूल्य मिलेगा, जितना कि उसका मूल्य है।

5.4.6 मिथ्या अवधारणाएं

भगवान् महावीर ने कर्म को बहुत लचीला माना है। कहा गया—**'सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला भवंति दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला भवंति'**। अच्छे काम का अच्छा फल होता है और बुरे कर्म का बुरा फल होता है—यह एक सामान्य बात है। किंतु इसके अपवाद बहुत हैं। कृत् कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता, यह भी एक सामान्य सिद्धांत है। जब तक कर्म से सारे अपवादों को, विशेष नियमों को नहीं जाना जाता तब तक कर्म की बात पूरी समझ में नहीं आती। कर्म को सब कुछ मान लेने पर एक निराशावादी धारणा, भाग्यवादी धारणा बन जाती है और आदमी अकर्मण्य होकर बैठ जाता है। यह मिथ्या धारणा है। वह सोचता है—मैं क्या करूं? कर्म का फल ऐसा ही था, कर्म का योग ऐसा ही था। मेरे कर्म में ऐसा ही लिखा है।

5.4.7 कर्मवाद में पुरुषार्थ का मूल्य

पुरुषार्थ और कर्मवाद को कभी अलग नहीं किया जा सकता। ईश्वरवादी धारणा में यदि पुरुषार्थ नहीं होता है तो आश्चर्य की बात नहीं है किंतु यदि कर्मवादी धारणा में पुरुषार्थ नहीं होता है तो इससे बड़ा कोई आश्चर्य नहीं। यह बहुत बड़ा आश्चर्य है। पुरुषार्थ और कर्मवाद का जोड़ा है। इन्हें कभी अलग नहीं किया जा सकता। किंतु कर्मवाद को सही न समझने के कारण पुरुषार्थवादी दर्शन भी अकर्मण्य दर्शन जैसा बन जाता है।

5.4.8 महावीर पुरुषार्थवाद के सशक्त प्रवक्ता

भगवान् महावीर ने कर्म के विषय में अनेक सिद्धांत दिये। पुरुषार्थ के द्वारा कर्म को भी बदला जा सकता है। एक व्यक्ति ने बहुत अच्छा कर्म किया, क्षयोपशम भी हुआ और पुण्य का बन्ध भी हो गया। किंतु कुछ समय बाद उसने बहुत बुरे कर्म किए और उसका परिणाम हुआ—उसने जो अच्छा किया, वह बुरे में संक्रांत हो गया। एक व्यक्ति ने बहुत बुरा किया, किंतु उसने बाद में बहुत अच्छे कार्य किए, यह सम्भव है कि उसका बुरा कर्म अच्छे में संक्रांत हो जाए। यह संक्रमण का सिद्धांत है।

यह संक्रमण का सिद्धांत है। कर्म के विषय में यह एक अपवाद है और यह पुरुषार्थ से सम्भव बना है। जैनदर्शन ने निरन्तर पुरुषार्थ पर बल दिया। भगवान् महावीर ने कहा—पुरुष! तू पराक्रम कर! यह परम पुरुषार्थ की प्रेरणा भाग्यवाद को चकनाचूर कर देने वाली प्रेरणा है। भारतीय चिंतन और दर्शन में पुरुषार्थवाद पर जितना बल महावीर ने दिया, उतना किसी दूसरे ने दिया या नहीं, यह खोज का विषय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.4.9 नियामक कौन?

कर्मवाद और पुरुषार्थवाद — इन दोनों का अस्वीकार है ईश्वरवाद। जहां ईश्वरवाद है वहां न कर्मवाद की आवश्यकता है और न पुरुषार्थ की आवश्यकता है। जब ईश्वरवाद में ईश्वर के द्वारा सही व्यवस्था नहीं बैठी तो कर्मवाद को भी बीच में लाना पड़ा। पूछा गया — अच्छा और बुरा फल आदमी कैसे भुगतता है? उत्तर दिया गया — ईश्वर भुगताता है। पुन: प्रश्न उभरा — ईश्वर किसी को अच्छा या बुरा फल क्यों देता है? उत्तर दिया गया — व्यक्ति जैसा कर्म करता है, ईश्वर उसको वैसा ही फल देता है।

कर्मवाद के बिना व्यवस्था संगत हो ही नही सकती। इसलिए ईश्वरवाद में भी कर्मवाद को मानना पड़ा। आखिर सब कुछ कर्मवाद से ही होना है। अच्छे और बुरे का नियामक कर्म है तो उसके लिए किसी ईश्वर को बीच में लाने की आवश्यकता नहीं है। कर्मवाद से जो हो जाता है उसके लिए किसी ईश्वर की और अपेक्षा करना प्रक्रिया-गौरव है। तर्कशास्त्र में कहा गया —

प्रक्रियागौरवं यत्र, तं पक्षं न सहामहे।
प्रक्रियालाघवं यत्र, तं पक्षं रोचयामहे।।

जिसमें प्रक्रिया का गौरव होता है, उस पक्ष को सहन नहीं किया जा सकता। जिसमें प्रक्रिया का लाघव होता है, वही पक्ष रूचिकर हो सकता है।

विज्ञान भी प्रक्रिया-गौरव को स्वीकार करता है। न्यूनतम नियमों से किसी प्रक्रिया की व्याख्या करना वैज्ञानिक सिद्धांत है।

5.4.10 वास्तविक सच्चाई : व्यावहारिक सच्चाई

'सब जीव समान है' यह निश्चयनय की बात है, वास्तविक सच्चाई है, व्यावहारिक सच्चाई नहीं है। व्यवहारनय की दृष्टि से सब जीव समान नहीं है। उनमें भेद है और वह भेद कर्मकृत है — कर्म के द्वारा वह भेद किया गया है। एक एकेन्द्रिय जीव है, एक पंचेन्द्रिय जीव है। एक समनस्क है। एक बहुत विकासशील है, एक बहुत अवरुद्ध विकास वाला है। यह जो विकास का तारतम्य है, भेद है वह सारा कर्म के द्वारा होता है। प्रत्येक आत्मा की स्वभावगत समानता और कर्मकृत विविधता — निश्चयनय और व्यवहारनय की दृष्टि से ये दोनों सच्चाइयां मान्य हैं। आचारांग सूत्र में कहा गया है — कोई आत्मा हीन नहीं है, कोई आत्मा अतिरिक्त नहीं है। इसका अर्थ है — वास्तविक दृष्टि में कोई आत्मा हीन नहीं, कोई अतिरिक्त नहीं। व्यवहार दृष्टि से हीन भी है और अतिरिक्त भी है। ये सारी सच्चाइयां कर्मवाद के संदर्भ में ही स्पष्ट हो पाती हैं। इसलिए कर्मवाद जैनदर्शन का एक प्रमुख सिद्धांत बन गया। उसका सहचारी सिद्धांत है पुरुषार्थवाद। कर्मवाद और पुरुषार्थवाद के आधार पर उसने ईश्वरवाद के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया।

5.4.11 आधुनिक विज्ञान

आधुनिक विज्ञान में ईश्वर-कर्त्तृत्ववाद के स्थान में प्रकृति के नियमों को प्रतिष्ठित किया गया है। प्रकृति के सारे रहस्यों के उद्घाटन का दावा विज्ञान नहीं करता। अभी आत्मा, कर्म (पुद्गल) आदि के विषय में विज्ञान का अनुसंधान जारी है।

5.4.12 कर्मबंधन के कारण

कर्मबंधन सभी भारतीय दर्शनों की प्रमुख मान्यता है। जैनदर्शन में कर्मबंधन का कारण आश्रव है। विशेषत: पांच कारणों से आत्मा कर्म में बंधती है। मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ये बंध के हेतु हैं — **'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाबंध्‍ाहेतव:'**।

5.4.13 कर्म के प्रकार

जैनदर्शन के अनुसार कर्म के दो प्रकार हैं — 1. द्रव्य कर्म, 2. भाव कर्म।

स्वभाव एवं शक्ति की अपेक्षा से कर्म के आठ प्रकार बताए हैं — **ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीया- युष्कनामगोत्रान्तराया:**। कर्म मूलत: एक प्रकार का ही है। ये आठ प्रकार कर्मों के कार्य की अपेक्षा से हैं।

1. ज्ञानावरणीय — आत्मा की ज्ञानचेतना को आवृत्त करने वाले कर्म।
2. दर्शनावरणीय — आत्मा की दर्शनचेतना को आवृत्त करने वाले कर्म।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. वेदनीय — सांसारिक सुख-दु:ख की संवेदना वाले कर्म। इनके दो भेद हैं — 1. सातावेदनीय, 2. असाता वेदनीय।

4. मोहनीय — चेतना को विकृत करने वाला कर्म।

5. आयुष्य — जिससे अब धारण हो वह कर्म।

6. नामकर्म — जिससे विशिष्ट गति जाति आदि की प्राप्ति हो वह कर्म।

7. गोत्र कर्म — ऊंचपन, नीचपन देने वाला कर्म।

8. अन्तराय — दान के लेने-देन में विघ्न डालने वाला कर्म।

5.4.14 कर्म की दस अवस्थाएं

कर्म की निम्नलिखित दस अस्थाएं हैं, जिनकी संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है —

1. बंध — आत्मा और कर्मों के एकीभूत होने की अवस्था बंध है।

2. सत्ता — बंध के बाद जब तक कर्म फल नहीं देते तथा अस्तित्व में रहते हैं उसका नाम सत्ता है।

3. उदय — आत्मा के साथ एकीभूत कर्म जब फलदान में प्रवृत्त हो जाता है तो उसे उदय कहते हैं।

5. उद्वर्तना — कर्मों की स्थिति व अनुभाग में वृद्धि करना उद्वर्तन है।

6. अपवर्तना — कर्मों की स्थिति व अनुभाग में हानि करना अपवर्तना है।

7. संक्रमण — संक्रमण का अर्थ है एक का दूसरे में परिवर्तन। आयुष्य व मोह को छोड़कर कर्मों का परस्पर में परिवर्तन हो जाना संक्रमण है।

8. उपशम — मोहनीय कर्म के प्रदेशोदय व विपाकोदय दोनों को रोकना उपशम है।

9. निधत्ति — आत्मा और कर्म के सम्बंध को गाढ़ बनाने का काम निधत्ति है।

10. निकाचना — आत्मा और कर्म के सम्बंध बना देना जहां स्थिति आदि में न्यूनता अधिकता हो ही न सके वह निकाचना है।

5.4.15 कर्म के कार्य

अर्थक्रिया कारित्व पदार्थ का लक्षण है। प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई क्रिया प्रतिक्षण होती रहती है। कर्म के चार कार्य बताए हैं — 1. आवरण — आत्मा के मूल गुणों को विकृत करना। 2. विकार — आत्मा के मूल गुणों को विकृत करना। 3. अवरोध — आत्मा के विकास में बाधा डालना। 4. शुभाशुभ का संयोग — आत्मा के शुभ-अशुभ के संयोग में निमित्त बनना।

5.4.16 आत्मा और कर्म का सम्बंध

आत्मा और कर्म दोनों विजातीय हैं फिर भी इनका घनिष्ट सम्बंध है। कोई भी संसारी आत्मा कर्म रहित नहीं होती। इनका सम्बंध अनादि है।

5.4.17 जगत् वैचित्र्य का हेतु है कर्म

जगत् में जो विचित्रता दिखाई देती है वह कर्मकृत है। आचाराङ्ग में कहा है — **''कम्मुणा उवाही जायद''** अर्थात् कर्म बीज के कारण ही जीव की नाना उपाधियां होती हैं।

5.5 अनेकान्तवाद

अनेकान्त शब्द अनेक और अन्त के योग से बना है। अनेक का अर्थ एक से अधिक है और यह अधिकता दो से लेकर अन्त तक पहुंचती है। अन्त का अर्थ धर्म, गुण या स्वरूप है। अनेक अविरूद्ध धर्म व अनेक विरूद्ध धर्म एक ही वस्तु में अविरोध ात्मक रूप में रहते हैं। जैसे ज्ञान, दर्शन, सुख आदि आत्मा के अविरूद्ध धर्म हैं। इनमें परस्पर कोई विरोध नही है। नित्यत्व-अनित्यत्व, एकत्व-अनेकत्व, सत्त्व-असत्त्व, भिन्नत्व-अभिन्नत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म हैं।

सामान्यत: ऐसा समझा जाता है, जो परस्पर विरूद्ध हैं, वे साथ रह पाएं, यह कैसे सम्भव है? इसका जैनदर्शन में बड़ा युक्तिसंगत समाधान है। आचार्य उमास्वाति ने लिखा है — प्रत्येक वस्तु की अनन्त धर्मात्मकता अर्पिता और अनर्पिता से सिद्ध होती है। अर्पिता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का अर्थ अपेक्षा-विशेष है और अनर्पिता का अर्थ अपेक्षान्तर है। अपेक्षा भेद या अपेक्षान्तर के आधार पर एक ही वस्तु में विरोधी धर्मों के अस्तित्व में कोई असंगति नहीं होती। इसका सूत्र है 'अर्पितानर्पितासिद्धेः' (त.सू. 5/31)।

नित्यत्व आत्मा का एक धर्म है। आत्मा नित्य है। त्रि-काल-शाश्वत है। न कभी वह मिटी, न मिटती है और न मिटेगी। वह सदा रहेगी। इस शाश्वतता का आधार उसका स्वरूप है। अतः अपने स्वरूप की दृष्टि से परिवर्तन होता रहता है। यह तो सूक्ष्म परिणमन की बात है, स्थूल रूप से भी आत्मा अपने कर्मवश अनेक योनियों में जन्म लेती है, अनेक रूपों में परिणत होती है। इस अपेक्षा से आत्मा में नित्यत्व के साथ-साथ अनित्यत्व भी है।

उत्पन्न होना, मिटना, सदा स्थित रहना—यह सत् का स्वरूप है। उत्पन्न होना और मिटना पर्यायात्मक दृष्टि से आत्मा के अनित्यत्व का बोधक है। स्वरूपात्मक दृष्टि से सदा स्थिर रहना उसके नित्यत्व का बोधक है।

हम पर्याय को जानते हैं, द्रव्य को नहीं जानते। हमारा सारा दृष्टिकोण पर्यायवाची है। हम मनुष्य को जानते हैं, आत्मा को नहीं जानते। हम पशु को जानते हैं आत्मा को नहीं जानते। हम कीड़े-मकोड़ों को जानते हैं, आत्मा को नहीं जानते। हम पेड़-पौधों को जानते हैं, आत्मा को नहीं जानते। पेड़-पौधों, कीड़े-मकोड़ों, गाय-भैंस और आदमी मूल वस्तु नहीं हैं, मूल द्रव्य नहीं हैं, ये सब पर्याय हैं। मूल द्रव्य सदा पर्दे के पीछे रहता है। जो सामने आता है, वह उसका एक कण या एक पर्याय होता है। हम पर्याय को देखते हैं, द्रव्य को नहीं देखते। इसीलिए हमारा आग्रह पर्याय में आबद्ध हो जाता है। वस्तुतः अनेकान्तिक दृष्टि उसे सम्यक् दृष्टि मानता है जहां द्रव्य और पर्याय के सम्मिलित रूप को देखा जाए किंतु दृश्यजगत् में पर्याय का दर्शन बहुत सरल है। इसीलिए पर्यायवादी दर्शन बहुत वैज्ञानिक दर्शन लगता है। पर्यायवादी दर्शन जो सामने है, उसका निरूपण करता है और जो सामने नहीं है, उसको अस्वीकार कर देता है। यह बहुत सीधा मार्ग है। जो सामने था, उसको व्याकृत कर दिया गया और जो सामने नहीं था उसको अव्याकृत कर दिया गया। यह पर्यायवादी दर्शन है। मनुष्य एक पर्याय है किंतु क्या वह पर्याय ही है? पर्यायवादी के आधार पर पहले और पीछे की बात नहीं सोची जा सकती, केवल वर्तमान की बात सोची जा सकती है। मनुष्य पर्याय है। उसके पहले क्या था और बाद में क्या होगा, पर्यायवाद के आधार पर इसका निर्धारण नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति अभी है, वह बाद में क्या होगा और पहले क्या था, यह पर्यायवादी दृष्टिकोण में नहीं सोचा जा सकता।

5.5.1 अनेकान्त दर्शन में है दो दृष्टिकोणों का सम्मिलन

एक दर्शन का दृष्टिकोण है—जो दृश्य है, वह सच्चाई नहीं है। उस दर्शन का स्वर इस रूप प्रकट हुआ—**''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या''** अर्थात् ब्रह्म सत्य है और यह जगत् मिथ्या है। जो दिख रहा है, वह असार है, मिथ्या है। दूसरे दर्शन का दृष्टिकोण है—प्रत्येक पर्याय वर्तमान है, क्षणिक है। समाप्त होने के बाद कुछ भी नहीं होता। यह सिद्धांत पर्याय के आधार पर चलता है। जितने पर्याय हैं, वे सब मिथ्या हैं। एक दृष्टि से विचार करें तो पर्याय मिथ्या है, यह कहना भी असंगत नहीं है। पर्याय को मिथ्या कहा जा सकता है। जो अभी है वह बाद में नहीं भी हो सकता है। उसे मिथ्या, झूठ, माया या धोखा मान लें तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं लगती।

हमारे सामने दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण पर्याय को सत्य बतला रहा है और दूसरा दृष्टिकोण पर्याय को मिथ्या बतला रहा है। एक ओर जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य का घोष है तो दूसरी ओर जगत् सत्य और ब्रह्म अव्याकृत का उद्घोष है। ब्रह्म का कोई पता नहीं है, आत्मा का कोई पता नहीं है, जो दृश्य नहीं है, वह सत्य नहीं है। जो दृश्य है, वह सत्य है। पर्याय दृश्य है, द्रव्य दृश्य नहीं है।

द्रव्य और पर्याय—इन दो आधार पर सारे विचारों का विकास हुआ है, सारे दर्शनों का विकास हुआ है। जितने भी दर्शन हैं वे या तो द्रव्यवादी हैं या पर्यायवादी। द्रव्यवादी दर्शन द्रव्य की व्याख्या कर रहे हैं, नित्य और शाश्वत की व्याख्या कर रहे हैं। पर्यायवादी दर्शन अनित्यवादी दर्शन है। तीसरा कोई दर्शन नहीं है। द्रव्यवादी दर्शनों ने द्रव्य की व्याख्या की और प्रत्येक द्रव्य को कूटस्थ नित्य बताया। द्रव्य नित्य है। नित्य ही सत्य है, जो अनित्य है, वह सत्य नहीं है। एक सूत्र बन गया—शाश्वत सत्य और अशाश्वत मिथ्या। पर्यायवादी दर्शनों ने पर्याय की व्याख्या की। उनके लिए परिवर्तन सत्य है और जो नहीं बदलता है, वह असत्य होता है।

जैन आचार्यों ने इस समस्या का विचार किया। उन्हें लगा—दोनों दृष्टियां ठीक नहीं हैं। दोनों में कमियां हैं। ज्ञेय पदार्थ दो हैं—द्रव्य और पर्याय। इनके सिवाय जानने का कोई विषय ही नहीं है। सारा ज्ञेय विषय इन दो भागों में ही विभक्त होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषय दो हैं तो जानने की दृष्टियां भी दो ही होंगी। द्रव्य को जानने वाली दृष्टि द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय को जानने वाली दृष्टि पर्यायार्थिक नय है।

5.5.2 अनेकान्त और सम्यक् दर्शन

प्रश्न होता है—सम्यक् दर्शन क्या है? द्रव्य को जानने वाली दृष्टि द्रव्य में अटक जाती है तो वह मिथ्या दर्शन है और पर्याय को जानने वाली दृष्टि पर्याय में अटक जाती है तो वह भी मिथ्या दर्शन है। द्रव्य को जानने वाली दृष्टि द्रव्य का प्रतिपादन करती है किंतु पर्याय को अस्वीकार नहीं करती और पर्याय को जानने वाली दृष्टि पर्याय का प्रतिपादन करती है किंतु द्रव्य को अस्वीकार नहीं करती। दोनों दृष्टियां परस्पर सापेक्ष हो जाती हैं। इसका नाम है सम्यक् दर्शन। निरपेक्ष दृष्टि है—मिथ्यादर्शन और सापेक्ष दृष्टि है—सम्यक् दर्शन।

अनेकांत और सम्यक् दर्शन—दोनो समान अर्थ वाले बन जाते हैं। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—दोनों दृष्टियां अलग-अलग होती हैं तो एकांतवाद होता है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—दोनों दृष्टियां सापेक्ष होती हैं, संयुक्त हो जाती हैं तो अनेकांतवाद प्रस्तुत हो जाता है। दोनों दृष्टियां का अलग होना मिथ्या दर्शन है और दोनों दृष्टियों का संयुक्त होना सम्यक् दर्शन है।

5.5.3 अनेकान्त के निष्कर्ष

जैनदर्शन ने द्रव्य और पर्याय की व्याख्या अनेकांत के आधार पर की। इसलिए जैनदर्शन न द्रव्यवादी है और न पर्यायवादी है। वह द्रव्य को भी स्वीकार करता है और पर्याय को भी स्वीकार करता है। इसी आधार पर जैनदर्शन के संदर्भ में कहा गया—वह न नित्यवादी है और न अनित्यवादी है किंतु नित्यानित्यवादी है। वह न सामान्यवादी है और न विशेषवादी है किंतु सामान्यविशेषवादी है। न एकवादी है और न अनेकवादी है, किंतु एकानेकवादी है। वह न अस्तिवादी है और न नास्तिवादी है, किंतु अस्तिनास्तिवादी है। ये सारे निष्कर्ष अनेकांत के आधार पर फलित हुए हैं।

5.5.4 नय और अनेकान्त

मूल दृष्टियां दो हैं—द्रव्यनय और पर्यायनय। जितना नित्यता का अंश है, जितना शाश्वत है, उसका प्रतिपादन करने वाली दृष्टि द्रव्य दृष्टि है, द्रव्यार्थिक दृष्टि है। जितना परिवर्तन का अंश है, जितना अनित्य है, उसका प्रतिपादन करने वाली दृष्टि पर्यायार्थिक दृष्टि या पर्यायार्थिक नय है। दो ही तत्त्व प्रत्येक दर्शन के सामने हैं—नित्य और अनित्य, शाश्वत और अशाश्वत। जैनदर्शन शाश्वतवादी नहीं है। शाश्वतवादी को कुछ करने की जरूरत नहीं होती। साधना का विधान बनाने की जरूरत नहीं होती। आत्मा शाश्वत है, नित्य है, जैसा है वैसा रहेगा तो साधना की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति साधना किसलिए करे? यदि आत्मा में परिवर्तन नहीं होता है तो साधना व्यर्थ है। यदि परिवर्तन होता है तो शाश्वतता का सिद्धांत खंडित हो जाता है। दोनों ओर से विरोध प्रस्तुत हो जाता है। एकांगी दृष्टिकोण में दोनों ओर से समस्या आती है। केवल द्रव्यार्थिक नय एकान्त की ओर ले जाती है और केवल पर्यायार्थिक नय एकान्त की ओर ले जाती है जबकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय का समन्वय ही अनेकान्तिक मार्ग को प्रस्तुत करता है और वही सम्यक्त्व है।

जैनाचार्यों ने एक तर्क प्रस्तुत किया—

नैकांतवादे सुखदु:खभोगो न पुण्य-पापे न च बंधमोक्षौ।

एकांतवाद में सुख और दु:ख का भोग नही हो सकता, बंध और मोक्ष नहीं हो सकता, पुण्य और पाप नहीं हो सकता। अगर आत्मा बदलता नहीं है तो यहनहीं माना जा सकता कि वह पहले दु:खी था और अब सुखी बन गया। पहले दु:खी था और अबसुखी बन गया। इसका अर्थ है कि आत्मा पहले एक अवस्था में था और अब दूसरी अवस्था में आ गया, परिवर्तन हो गया। अगर आत्मा परिवर्तित नहीं होता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि पहले दु:खी था, बाद में सुखी बन गया। पहले सुखी और बाद में दु:खी, यह स्थिति परिवर्तनशील पदार्थ में ही घटित हो सकती है। इसीलिए जैनदर्शन ने आत्मा को न सर्वथा शाश्वत माना और न सर्वथा अशाश्वत माना। आत्मा शाश्वत भी है और आत्मा अशाश्वत भी है। आत्मा शाश्वत है, इसलिए अनादिकाल से उसका अस्तित्व बना रहता है। आत्मा अशाश्वत है, इसलिए उसका अस्तित्व नाना पर्यायों में परिवर्तित होता रहता है। वह कभी सुखी बनता है और कभी दु:खी बनता है। वह कभी मनुष्य बनता है और कभी पशु बनता है। द्रव्यार्थिक नय से आत्मा शाश्वत है। पर्यायार्थिक नय से अशाश्वत।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यदि आत्मा शाश्वत ही है तो पुण्य और पाप की व्यवस्था घटित नहीं हो सकती। यदि शाश्वत ही है तो मानना होगा कि सारे संसार की हत्या करके भी आत्मा उसमें लिप्त नहीं हो सकती। क्योंकि वह शाश्वत है, जैसा है, वैसा ही रहता है, उसमें एक राई का भी फर्क नहीं पड़ता। इस स्थिति में न पुण्य की बात हो सकती है और न पाप की। व्यक्ति कुछ भी करे, न पुण्य होगा और न पाप होगा। यदि आत्मा शाश्वत है तो बंध और मोक्ष की व्यवस्था भी घटित नहीं हो सकती। प्रश्न होगा—आत्मा शाश्वत है तो बंध किसका और मोक्ष किसका? ये सारे परिवर्तनशील पदार्थों में ही घटित हो सकते हैं।

5.5.5 एकान्तवादी दृष्टिकोण की जैनदर्शन के आधार पर समीक्षा

जैनदर्शन के अनुसार जैसी एक आत्मा है, वैसा ही एक परमाणु है। बहुत बार कहा जाता है—आत्मा अमर है, शरीर मरता है, यह जैनदर्शन की भाषा नहीं है। आत्मा अमर है, यह सर्वथा सही नहीं है। एक परमाणु भी अमर है। कोई फर्क नहीं है। अगर परमाणु मरता है, शरीर मरता है तो आत्मा भी मरता है। प्रश्न होता है—शरीर क्या है? शरीर मूल द्रव्यनहीं है। शरीर एक पर्याय है। मूल द्रव्य है परमाणु। शरीर नहीं रहा, हम कहते हैं—अमुक व्यक्ति मर गया। वस्तुत: नष्ट कुछ भी नहीं हुआ। केवल रूपान्तरण हुआ। जो परमाणु शरीर में थे, वे शरीर के रूप में समाप्त हो गए और दूसरे रूप में बदल गए। एक सार्वभौम सिद्धांत है—जितने द्रव्य इस संसार में हैं, उतने ही हैं, उतने ही थे और उतने ही रहेंगे। एक भी परमाणु न अधिक होगा और न न्यून होगा। कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन का सिद्धांत अपरिवर्तन के सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। समस्या यह है—जो केवल द्रव्यार्थिक नय को मानकर चलते हैं, वे कभी परिवर्तन की व्याख्या नहीं कर सकते और जो केवल परिवर्तन को मानकर चलते हैं, वे मूल स्रोत की व्याख्या नहीं कर सकते।

5.5.6 अनेकान्तवाद में द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नय का समन्वय

बौद्धदर्शन पर्यायवाची दर्शन है। जब उसके सामने आत्मा आदि के प्रश्न आए तो उन्हें अव्याकृत कहकर टाल दिया गया। क्योंकि एकांतवाद के द्वारा उनकी सम्यक् व्याख्या हो नहीं सकती। जैनदर्शन ने इन दोनों दृष्टियों—द्रव्यार्थिक दृष्टि को पारमार्थिक दृष्टि का समन्वय किया। जैनदर्शन ने कहा—मूल तत्त्व भी है और पर्याय भी है। इसलिए उसने द्रव्य की व्याख्या भी की और पर्याय की व्याख्या भी की। उसने शाश्वत और अशाश्वत—दोनों का समन्वय साधा। आज के विचारक और विद्वान कहते हैं—जैनदर्शन मौलिक दर्शन नहीं है। यह दूसरे दर्शनों का समुच्चय है। दूसरे दर्शनों के विचारों का पुलिन्दा है। यह धारणा क्यों बनी है? इसका आधार बना—जैन आचार्यों की समन्वय-दृष्टि। जैन आचार्यों ने समन्वय किया नयों के आधार पर। यह उनका समन्वयपरक दृष्टिकोण था। समन्वय का दृष्टिकोण जिन दृष्टियों से किया, वे उनकी अपनी मौलिक थी। किंतु जब समन्वय साधा तो दूसरों को लगा—सांख्य आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है। नित्यवाद वेदांत का सिद्धांत भी है। अनित्यवाद बौद्धों का सिद्धांत है। जैनों ने नित्यवाद सांख्य और वेदांत से ले लिया और अनित्यवाद—पर्यायवाद बौद्धों से ले लिया। पर यह लेने का प्रश्न नहीं था। यह प्रश्न था समन्वय का।

आचार्य सिद्धसेन ने लिखा—द्रव्यार्थिक नय बिलकुल सही है। यदि द्रव्यार्थिक नय बिलकुल सही है तो सांख्य का कूटस्थ नित्य भी बिलकुल सही है। पर्यायार्थिक नय बिलकुल सही है और यदि पर्यायार्थिक नय सही है तो बौद्ध का क्षणभंगुरवाद बिलकुल सही है। यदि एकांत नित्यवाद निरपेक्ष है और वह कहता है—केवल कूटस्थ नित्य ही सही है, परिवर्तन सही नहीं है, तो वह सम्यक् नहीं है। यदि एकांत अनित्यवाद निरपेक्ष है और वह कहता है—केवल परिवर्तन ही सम्यक् है, अपरिवर्तन सही नहीं है, तो वह भी सम्यक् नहीं है। परिवर्तन और अपरिवर्तन—दोनों का समन्वय करो, दोनों को एक साथ जोड़ दो तो दोनों सही हो जाएंगे।

5.5.7 अनेकान्तवाद और सातभङ्ग

अनेकान्त अनेकान्त रूप है। वह एकान्त और अनेकान्त दोनों का समन्वय है। इसे युक्ति से समझाते हुए बताया गया है—यदि अनेकान्त को अनेकान्त रूप माना जाए तथा एकान्त का सर्वथा लोप मान लिया जाए तो सम्यग् एकान्त के अभाव में एकान्त समूह अनेकान्त का अभाव उसी प्रकार हो जाएगा, जिस प्रकार शाखाओं के अभाव में वृक्ष का। यदि अनेकान्त को एकान्तरूप ही माना जाए तो उसके अविनाभावी धर्मों का लोप होने पर शेष सभी धर्मों का लोप होने से सर्वलोप का प्रसंग आ जाएगा। अत: अनेकान्त में अनेकान्त और एकान्त दोनों ही युक्तिसंगत हैं। आचार्य अकलंक ने अनेकान्त के संदर्भ में सात भंगों की योजना की है। वह इस प्रकार है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. कथंचिद् एकान्त है।
2. कथंचिद् अनेकान्त है।
3. कथंचिद् एकान्त और कथंचित् अनेकान्त है।
4. कथंचिद् अवक्तव्य है।
5. कथंचिद् एकान्त है और कथंचिद् अवक्तव्य है।
7. कथंचिद् एकान्त है, कथंचिद् अनेकान्त है और कथंचिद् अवक्तव्य है।

अनेकान्त को प्रस्तुत कराने वाले ये सातों भेद वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं तथा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोनों नयों को प्रस्तुत करते हैं। ये वस्तु का अनेकान्त की दृष्टि से देखने के सात विभेद हैं।

समाधान है अनेकान्त

जैन समाज को विरासत में जो एक महान् दर्शन मिलता है, जगत् को देखने का एक सम्यक् और व्यापक दृष्टिकोण मिला है। यदि उसका सम्यक् प्रयोग किया जाए तो शायद अनेकांतवाद पूरे संसार को एक नया दृष्टिकोण और एक नया दर्शन दे सकता है। अनेकांत का यह दृष्टिकोण अनेक मिथ्या अभिनिवेशों, आग्रहों को मिटाने और एक सामंजस्यपूर्ण समाज की संरचना करने में बहुत सहयोगी बन सकता है, उपयोगी हो सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–5

(ख) जैनदर्शन और विज्ञान में परमाणु

जैनदर्शन में परमाणुवाद के सिद्धान्त पर विस्तृत चर्चा हुई है। परमाणुओं के परस्पर मिलने का, उनके संयोग से भौतिक पदार्थों के विकास का जैनदर्शन में विशद विवेचन है।

5.6 जैन परमाणुवाद

जैनदर्शन में प्रतिपादित परमाणुवाद प्राचीनता और मौलिकता दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। जैन परमाणुवाद का सम्बन्ध भगवान् पार्श्व (ई.पू. 850) से माना जाये तो इससे अधिक प्राचीन परमाणुवाद का कोई रूप उपलब्ध नहीं होता। भगवान् महावीर (ई.पू. 599) से माना जाये तो भी वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद और ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रिट्स से जैन परमाणुवाद प्राचीनतर सिद्ध होता है। इतना ही नहीं, जिस विस्तार के साथ परमाणु के स्वरूप, गुणधर्म आदि पर जैनदर्शन में प्रकाश डाला गया है, उतना कणादीय या डेमोक्रिट्स के परमाणुवाद में उपलब्ध नहीं होता। कुछ विषय तो ऐसे हैं जहां तक आधुनिक विज्ञान भी अभी तक नहीं पहुंच सका है। हम यहां जैन परमाणुवाद के मुख्य सिद्धांतों की चर्चा करेंगे तथा यथासंभव आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में उनकी समीक्षा भी करेंगे।

5.6.1 चार प्रकार के परमाणु

भगवती सूत्र में परमाणु चार प्रकार का कहा गया है—

1. द्रव्य परमाणु—पुद्‌गल द्रव्य का अविभाज्य अंश। इसे हम भौतिक विश्व की प्राथमिक इकाई (Primary unit of the physical world) के रूप में कह सकते हैं। हमारे प्रस्तुत विषय का संबंध इसी द्रव्य परमाणु से है।

2. क्षेत्र परमाणु—आकाश का अविभाज्य अंश या प्रदेश। इसे आकाश-द्रव्य की प्राथमिक इकाई (Primary unit of space of spacepoint) कहा जा सकता है।

3. काल परमाणु—काल का अविभाज्य अंश या 'समय'। यह काल की प्राथमिक इकाई (Primary unit of time) है।

4. भाव परमाणु—स्पर्श आदि गुणों की अविभाज्य मात्रा या क्वांटम (अविभाज्य राशि) यह भी पौद्‌गलिक गुणों की प्राथमिक इकाई है। गुणों के तारतम्य की अनन्तता के कारण ये अनन्त होते हैं।

5.6.2 परमाणु की परिभाषा

परमाणु को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है।

1. परमाणु समस्त भौतिक अस्तित्व का मूल आधार है—जिसे अन्तिम उपादान (Ultimate building block) कहा जा सकता है।

2. अछेद्य, अभेद्य, अग्राह्य, अदाह्य और निर्विभागी पुद्‌गल-खण्ड को परमाणु कहते हैं। परम+अणु= परमाणु का तात्पर्य है—वस्तु का अन्तिम अविभाज्य अंश। वह दो प्रकार का है—निश्चय-परमाणु (Absolute ultimate atom) और व्यवहार परमाणु (Empirical atom)। वास्तविक सूक्ष्मतम परमाणु निश्चय-परमाणु है; व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्मतम परमाणुओं का समुदय है। आधुनिक विज्ञान जिसे अणु (Atom) की संज्ञा देता है, वह विभाज्य है; अत: उसे केवल व्यावहारिक परमाणु की कोटि में रखा जा सकता है। व्यावहारिक परमाणु साधारण दृष्टि से अग्राह्य, अछेद्य, अभेद्य आदि रूप है, अत: साधारण शक्ति या बल (Force) या अस्त्र-शस्त्र से वह तोड़ा नहीं जा सकता। उसकी परिणति सूक्ष्म होती है। जो नैश्चयिक परमाणु है, वह इन्द्रियातीत ज्ञान का ही विषय बन सकता है, इन्द्रिय ज्ञान का नहीं।

3. परमाणु को एक विशुद्ध ज्यामितिक बिन्दु के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि वह अनर्ध (जिसका कोई मध्य-बिन्दु न हो) और अप्रदेशी है। उसमें न लम्बाई है, न चौड़ाई है, न गहराई—वह अविम (Dimensionless) है। वह अंतिम और शाश्वत इकाई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. परमाणु वह है जिसका क्षेत्र की दृष्टि से आदि, मध्य, अन्त एक है—या जो अनादि, अमध्य, अनन्त है। उसमें स्पर्श आदि गुणों की विद्यमानता होने पर भी इन्द्रियां उसे ग्रहण नहीं कर सकती।

5. परमाणु वह है जिसमें 5 वर्णों में से एक वर्ण है; 2 गंधों मेंसे एक गंध है; 5 रसों में से एक रस है; 8 स्पर्शों में से केवल 2 स्पर्श हैं—स्निग्ध या रूक्ष, शीत या उष्ण। वह शब्द का कारण है, पर स्वयं शब्द नहीं है। जो स्कन्धों का निर्माण करता है, पर स्कन्ध नहीं है। परमाणु के स्वरूप को इस प्रकार समझाया गया है—

1. परमाणु समस्त भौतिक जगत् का मूल कारण है।

2. वह भौतिक जगत् की अंतिम परिणति है।

3. वह सूक्ष्म है—इन्द्रियग्राह्य नहीं है।

4. वह नित्य है—उसका अस्तित्व सदा बना रहता है; स्कन्ध में मिलने पर भी परमाणु का अस्तित्व समाप्त नहीं होता।

5. उसमें एक रस, एक गंध और एक वर्ण होता है।

6. उसमें दो स्पर्श होते हैं। वह स्निग्ध-शीत, स्निगध-उष्ण, रूक्ष-शीत या रूक्ष-उष्ण होता है। उसमें गुरुत्व, लघुत्व, कठोरत्व, कोमलत्व नहीं होता।

7. वह कार्यलिंङ्ग है—परमाणु के अस्तित्व का अनुमान उसके कार्य यानी सामूहिक क्रिया से होता है। परमाणु के गुणों का ज्ञान भी सामूहिक गुणों से ही किया जा सकता है। एक अकेले परमाणु को सीधे नहीं जाना जा सकता।

5.6.3 परमाणु के गुणधर्म

परमाणु पुद्गल है; अत: पुद्गल के मूल गुणधर्म परमाणु में भी होते हैं, जैसे—

1. परमाणु सत् है, द्रव्य है।

2. परमाणु नित्य, अवस्थित, शाश्वत, अविनाशी है।

3. परमाणु अचेतन है।

4. परमाणु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श होते हैं; संस्थान नहीं होता; लम्बाई, चौड़ाई, गहराई नहीं होती।

5. परमाणु परिणामी है; वह स्वयं अगुरुलघु-परिणामी है। परिणमन स्पर्श आदि गुणों की पर्याय में होता है।

6. परमाणु क्रियावान् है। जब वह गति करता है, तब वह गति स्पन्दनात्मक भी हो सकती है, स्थानांतरणात्मक भी हो सकती है। परमाणु अगुरुलघु यानी संहतिशून्य होने से उसका वेग (Velocity) इतना तीव्र होता है कि वह एक समय में पूरे लोक की दूरी पार कर सकता है।

7. परमाणु मिलन-स्वभाव वाला है, पर उसका भेद नहीं होता। मिलन-स्वभाव के कारण परमाणु अन्य परमाणु या स्कन्ध के साथ मिल सकता है, पर अभेद्य होने के कारण उसका विखण्डन नही हो सकता।

8. जीव द्वारा अकेले परमाणु का ग्रहण नहीं हो सकता, इसलिए वह अग्राह्य है।

5.6.4 परमाणु की विस्तृत व्याख्या

1. नामकरण—परमाणु शब्द परम+अणु से बना है। अणु का अर्थ है—किसी भी पदार्थ का छोटा भाग। परम का अर्थ है अन्तिम। अन्तिम छोटे-से-छोटा हिस्सा परमाणु है।

2. द्रव्य की दृष्टि से—परमाणु पुद्गलास्तिकाय द्रव्य है। उसमें गुण और पर्याय दोनों होते हैं। संख्या की दृष्टि से परमाणु अनन्त है।

3. क्षेत्र की दृष्टि से—एक परमाणु आकाश के एक प्रदेश का अवगाहन करता है, एक से अधिक प्रदेशों का अवगाहन नहीं कर सकता। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर परमाणु का अस्तित्व है। अलोकाकाश में परमाणु का अभाव है।

4. काल की दृष्टि से—प्रत्येक परमाणु अनादि कालसे अस्तित्व में था और अनन्तकाल तक उसका अस्तित्व रहेगा। अत: परमाणु का अस्तित्व सदा बना रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. गुण की दृष्टि से — एक परमाणु में केवल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श ही होते हैं। इस आधार पर 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस में से एक-एक वर्ण, गंध और रस तथा चार स्पर्शों में से दो-दो स्पर्श होने से मूलत: 5x2x5x4=200 प्रकार के परमाणु हो सकते हैं। परन्तु वर्ण आदि की मात्रा या गुण (Unit) की तरतमता के कारण उसके अनन्त प्रकार हो जाते हैं।

6. रूपत्व — परमाणु वर्ण आदि गुण-युक्त हैं; इसलिए मूर्त्त या रूपी हैं; पर सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं हैं।

7. संख्या — लोक में जितने परमाणु हैं, उतने ही सदा रहते हैं। न एक नया परमाणु बन सकता है और न एक विद्यमान परमाणु नष्ट हो सकता है।

8. तत्त्व-मीमांसा की दृष्टि से — परमाणु सत् हैं; उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। उसका वस्तु सापेक्ष (Objective) अस्तित्व है। वह केवल काल्पनिक या ज्ञाता-सापेक्ष नहीं है।

9. भूमिति की दृष्टि से — परमाणु अविम (Dimensionless) है, पर अरूपी नहीं। वह भूमितिक बिन्दु है। एक आकाश प्रदेश का अवगाहन करता है।

10. परिणमन की दृष्टि से — परमाणु सत् है, इसलिए परिणमनशील है, उसके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणों में परिणमन होता है। अकेले परमाणु के सारे परिणमन वैस्रसिक ही होते हैं, प्रायोगिक नहीं। जब तक परमाणु स्वतंत्र दशा में होता है, परिणमन केवल स्पर्श आदि गुणों की मात्रा में होता है, गुण का प्रकारान्तरण नहीं होता। जैसे — काला वर्ण अन्य वर्ण में नहीं बदलता, पर एक गुण (Unit) काला दो गुण काला यावत् अनन्त गुण काला हो सकता है। स्कन्ध के साथ प्रतिक्रिया होने के पश्चात् उसके गुणों का प्रकारांतरण भी संभव हो जाता है। अर्थात् उसका वर्ण अन्य किसी वर्ण में बदल सकता है।

11. शाश्वतता की दृष्टि से — परमाणु अविनाशी है, शाश्वत है। स्वतंत्र अवस्था में या स्कन्ध में या स्कन्ध के साथ वह सदा अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। इसीलिए विश्व (लोक) में परमाणु जितने हैं उतने के उतने सदा बने रहते हैं। न नए परमाणु का जन्म होता है, न विद्यमान परमाणु का विनाश।

12. अगुरुलघुत्व — परमाणु अगुरुलघु है। गुरुत्व या लघुत्व स्पर्श के प्रकार हैं, जो केवल स्थूल पुद्‌गलों में होते हैं। वैज्ञानिक शब्दावली में कहें तो परमाणु संहति-शून्य (Massless) है।

13. परिणामीनित्य — परमाणु द्रव्य की दृष्टि से नित्य है, पर्याय की दृष्टि से परिणामी है। इसलिए उसे परिणामीनित्य या नित्यानित्य कहा गया है।

14. अग्राह्य — परमाणु जीव द्वारा अग्राह्य है। सूक्ष्म होने के कारण जीव अकेले (स्वतंत्र) परमाणु को ग्रहण नहीं कर सकता। जीव केवल अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध को ही काम में ले सकता है।

15. एकत्व-अनेकत्व — मूलभूत द्रव्य के रूप में परमाणु एक है — अकेला है। वह एक स्वतंत्र इकाई है। वह एक अविभाज्य सत्ता है, पर वह अनेक गुण एवं पर्यायों को धारण करने वाला है, इसलिए अनेकत्व का आधार है। क्षेत्र की दृष्टि से वह केवल एक प्रदेशावगाही है।

16. गति और क्रिया — परमाणु में स्वभावत: गतिशीलता और सक्रियता की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि सभी परमाणु सदा और सर्वत्र सभी स्थितियों में सक्रिय या गतिमान बने रहते हैं। पर उनका झुकाव इस ओर रहता है। किसी भी परमाणु के चंचल बनने के विषय में एक प्रकार की अनियतता (Uncertainity) होती है। वे कब चंचल बनेंगे — इस विषय में पूर्ण नियत कथन नहीं किया जा सकता।

एक परमाणु सीमित समय तक ही एक आकाश-प्रदेश पर स्थिरावस्था में टिक सकता है। अक्रियता का यह काल 'असंख्यात समय' से अधिक नहीं होता। उसके पश्चात् वह निश्चित ही गति करेगा।

दूसरी ओर सक्रियता या चंचल व्यवस्था में भी परमाणु सीमित समय रह सकता है। एक अवधि के बाद वह परमाणु निश्चित ही स्थिरता को प्राप्त होगा। सक्रियता की अधिकतम कालावधि आवलिका का असंख्यातवां हिस्सा या असंख्यातांश है। सक्रियता और अक्रियता का न्यूनतम कालमान एक समय है। इस प्रकार परमाणु की सक्रियता सतत न होकर खण्डित रूप में होती है। इस अवधारणा की तुलना आधुनिक विज्ञान के क्वांटम सिद्धांत के साथ की जा सकती है। परमाणु क्वचित् स्थिर, क्वचित् चंचल — इस प्रकार बारी-बारी से होता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भगवती सूत्र में परमाणु की गति को इस प्रकार वर्णित किया गया है—परमाणु कभी एजन करता है, कभी वेजन करता है, कभी चलायमान होता है, कभी स्पन्दन करता है, कभी क्षुब्ध होता है, कभी गति में प्रेरित होता है, आदि। इस शब्दावली से स्पष्ट होता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार से गति करता है। यह गति सरल कम्पन, सरल स्थानांतरण, जटिल कम्पन, जटिल स्थानांतरण, दोलन, प्रसारण, ग्रहण, घूर्णन, घर्षण, फिरकन (Spin) या तरंग-प्रसार आदि रूप में हो सकती है। 'आदि' शब्द का प्रयोग यह सूचन करता है कि अन्य भी अनेक प्रकार की गति के रूप की संभावना है।

5.6.5 परमाणु की गति के नियम

परमाणु की गति कुछ संदर्भों में नियमों से नियत है, तो कुछ हद तक अनियतता के सिद्धांत का अनुसरण करती है। जैसे—

1. यदि बाहर का प्रभाव न हो, तो परमाणु की गति सदा अनुश्रेणी (अर्थात् सीधी रेखा में) होगी।

2. यदि बाह्य प्रभाव हो, तो परमाणु की दिशा और वेग में अन्तर आ सकता है।

3. जीव का परमाणु की गति पर कोई प्रभाव नहीं होता।

4. परमाणु का न्यूनतम वेग आकाश के एक प्रदेश से दूसरे पर एक समय में होगा और अधिकतम काल 'आवलिका के असंख्यातवें अंश' जितना होगा।

5. अक्रिय अवस्था का अधिकतम काल 'असंख्यात समय' होगा तथा सक्रिय अवस्था का अधिकतम काल 'आवलिका के असंख्यातवें अंश' जितना होगा।

दूसरी ओर परमाणु की अनियतता से सम्बद्ध कुछ नियम हैं—

1. स्थिर परमाणु कब चलायमान होगा, यह अनियत है। इसका तात्पर्य हुआ कि परमाणु द्वारा कितने काल के पश्चात् ऊर्जा का प्रसारण होगा यह नियत नहीं है। यह काल एक समय से लेकर असंख्यात समय तक हो सकता है। असंख्यात समय के पश्चात् तो वह निश्चित सक्रिय होगा ही।

2. सक्रिय परमाणु कितने काल तक सक्रिय रहेगा यह अनियत है। यह काल एक समय से लेकर 'आवलिका के असंख्यातवें अंश' जितना हो सकता है। पर इस अधिकतम कालावधि के पश्चात् तो वह निश्चित स्थिर होगा ही।

3. परमाणु अपनी गति किस दिशा में प्रारंभ करेगा, यह अनियत है। वह किसी भी दिशा में गति कर सकता है।

4. अक्रिय (स्थिर) दशा वाला परमाणु किस प्रकार की क्रिया प्रारंभ करेगा, यह अनियत है। वह केवल एजन (कम्पन) कर सकता है या घूर्णन (Rotation) या स्थानांतरण या युगपत् एकाधिक क्रियाएं भी कर सकता है।

5. सक्रिय होने पर, उसकी गति का वेग कितना होगा, यह भी अनियत है। वह न्यूनतम, मध्यम या अधिकतम वेग से गति करेगा—यह अनियत है।

5.6.6 परमाणु की प्रतिघाती और अप्रतिघाती गति

1. परमाणु की गति सामान्यत: अप्रतिघाती होती है अर्थात् विशेष अपवादों को छोड़कर परमाणु की गति का अवरोध न अन्य पुद्गल द्वारा हो सकता है और न जीव द्वारा। मार्ग में आने वाले किसी भी पदार्थ के भीतर से वह आर-पार निकल सकता है।

2. जिस आकाश-प्रदेश पर अन्य पुद्गल हैं, वहां पर परमाणु की अवस्थिति अप्रतिघाती रूप से हो सकती है। अर्थात् परमाणु वहां अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रख सकता है।

3. परमाणु को अपनी गति को प्रारंभ करने में या चालू रखने में उस आकाश-प्रदेश पर स्थित अन्य पुद्गलों द्वारा कोई प्रतिघात नहीं होता।

जिन अपवादों के कारण प्रतिघात हो सकता है, वे हैं—

1. उपकाराभाव प्रतिघात—लोक की सीमा से परे गति-स्थित माध्यम के अभाव से परमाणु की गति प्रतिहत होती है।

2. बन्धन-परिणाम-प्रतिघात—जब परमाणु किसी पुद्गल स्कन्ध के साथ बंधा हुआ है, तब उसकी गति स्वतंत्र रूप से नहीं होती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. अति-वेग-प्रतिघात — अति तीव्र वेग वाले दो परमाणुओं के संघटन या टक्कर होने पर दोनों की गति में प्रतिघात पैदा हो जाता है।

5.6.7 परमाणु की तीव्रतम वेग

परमाणु एक 'समय' में पूरे लोक की ऊंचाई को पार कर सकता है। इसका तात्पर्य हुआ कि उसका उत्कृष्टतम वेग है — 14 रज्जु/समय। एक रज्जु का मान असंख्यात योजन है। 'असंख्यात' का मान जैनदर्शन में प्रदत गणितीय आधारों पर निकालने से इस प्रकार प्राप्त है —

आधुनिक X से कम नहीं है जहां

$$X=y^{y^{\cdot^{\cdot^{\cdot^{y}}}}}$$ (10^{134} बार)

है तथा जहां y का मूल्य

$$10^{10^{10^{143}}}$$

माना गया है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसर विश्व में उत्कृष्टतम् वेग प्रकाश का है जो 3 लाख किलोमीटर/सैकिण्ड है। आइंस्टीन के आपेक्षिकता के सिद्धांत के अनुसार इससे अधिक वेग किसी भी पदार्थ का होना सम्भव नहीं है। पर यदि संहित (Mass) को शून्यमाना जाये तो प्रकाश से अधिक वेग की संभावना की जाती है। आइन्स्टीन के पश्चात् आधुनिक विज्ञान में ऐसे सूक्ष्म कणों की संभवना की गई है जिनका वेग प्रकाश से भी अधिक हो। संहितशून्य (Massless) कणों की अवधारणा विशुद्ध गणितीय क्षेत्र से सम्बद्ध है। जैनदर्शन के परमाणु को भी संहति-शून्य मानना होगा तथा इस आधार पर उसके उपर्युक्त उत्कृष्टतम वेग की संभावना की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.7 आधुनिक विज्ञान में परमाणु-सिद्धांत

5.7.1 विकास-वृत्त

पदार्थ का मूलभूत कण क्या है? सन् 1803 में डाल्टन ने घोषणा की कि यह मूलभूत कण एटम (परमाणु) है; क्योंकि इसका रासायनिक क्रियाओं द्वारा और अधिक विभाजन नहीं किया जा सकता तथा यह रासायनिक तत्त्वों का सूक्ष्मतम भाग है। इलेक्ट्रॉन की खोज से पहले तक परमाणु (एटम) को ही पदार्थ का मूलभूत कण माना जाता था।

सन् 1897 में जे.जे. थॉमसन ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि एटम ही पदार्थ का मूलभूत कण नहीं है अपितु वह दो प्रकार के कणों द्वारा बना हुआ है, जिस पर विपरीत लेकिन समान मात्रा में आवेश होते हैं। जिन कणों पर ऋणात्मक आवेश होता है, वे 'इलेक्ट्रॉन' कहलाते हैं तथा जिन पर धनात्मक आवेश होता है वे 'प्रोटॉन' कहलाते हैं। इलेक्ट्रॉन पर न्यूनतम संभव ऋणात्मक आवेश होता है जो कि ($-4.8X10^{-10}$) ई.एस.यू. (इलेक्ट्रो-स्टेटिक यूनिट) के बराबर है। इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान 1. $9X10.28^{-30}$ ग्राम होता है। इसी प्रकार प्रोटॉन पर न्यूनतम संभव धनात्मक आवेश होता है तथा वह ($+4.8X10^{-10}$) ई.एस.यू. के बराबर है। प्रोटॉन का द्रव्य इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान से लगभग 1837 गुना होता है।

फिर यह खोज हुई कि एटम में न केवल आवेशित कण (इलेक्ट्रॉन तथा प्रोटॉन) ही होते हैं, बल्कि आवेश-रहित कण भी होते हैं। इन कणों का नाम 'न्यूट्रॉन' रखा गया। न्यूट्रॉन का द्रव्यमान प्रोटॉन के द्रव्यमान के बराबर होता है।

एटम की आकृति को प्रस्तुत करने के लिए समय-समय पर विभिन्न वैज्ञानिकों ने अलग-अलग मॉडल तैयार किए। सन् 1904 में जे.जे. थॉमसन ने एटम की आकृति तरबूत के अनुरूप बतलायी। उसके अनुसार जिस तरह तरबूत में बीज होते हैं उसी प्रकार एटम में इलेक्ट्रॉन बिखरे रहते हैं तथा प्रोटॉन तरबूत के गुद्दे की तरह होते हैं, लेकिन रदरफोर्ड ने थॉमसन के इस मॉडल को गलत साबित कर दिया तथा उसने सन् 1991 में एक नया मॉडल प्रस्तुत किया। अपने प्रयोगों के आधार पर उसने यह सिद्ध किया कि एटम का पूरा धनात्मक आवेश एटम के नाभिक (केन्द्र) में स्थित होता है तथा ऋणात्मक आवेश उस नाभिक के चारों ओर समान रूप से वितरित होता है। एटम के नाभिक में न्यूट्रॉन भी स्थित रहते हैं। कुछ समय पश्चात् बोर (Bohr) नामक वैज्ञानिक ने रदरफोर्ड के मॉडल में संशोधन किया कि इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर समान रूप से व्यवस्थित नहीं होते, बल्कि वे अपनी निश्चित कक्षाओं में केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करते रहते हैं। विभिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन की एक निश्चित गतिज ऊर्जा होती है।

यदि तांबे के परमाणुओं को एक-के-बाद-एक-एक सीधी पंक्ति में रख दिया जाए तो एक इंच के लिए दस करोड़ परमाणुओं की आवश्यकता पड़ेगी।

वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया कि एक पिन के माथे पर दस करोड़ से भी अधिक परमाणु फैले होते हैं।

5.7.2 अल्फा, बीटा तथा गामा का क्षय (रेडियोधर्मिता)

भारी एटम के नाभिक अस्थायी होते हैं। ऐसा पाया गया है कि इन नाभिकों में से निरन्तर कुछ-न-कुछ तब तक क्षय होता रहता है, जब तक कि ये एक स्थिर/स्थायी नाभिक को प्राप्त नहीं कर लेते। इस क्षयीकरण को 'रेडियोधर्मिता' के नाम से जाना जाता है। इस क्रिया के दौरान नाभिक में से अल्फा, बीटा या गामा का उत्सर्जन होता रहता है। अल्फा कण दो प्रोटॉन के बराबर होते हैं। बीटा कण इलेक्ट्रॉन के बराबर होते हैं तथा गामा किरणों (ऊर्जा) के रूप में उत्सर्जित होते हैं। ये किरणें प्रकृति से विद्युत-चुम्बकीय होती हैं। गामा किरणों में कोई द्रव्यमान नहीं होता, लेकिन कुछ निश्चित ऊर्जा उनमें अवश्य होती है।

इस क्षयीकरण की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धांत दिए गये। वैज्ञानिक गामा ने अल्फा-क्षय का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार अल्फा कण भारी एटम के नाभिकों में पहले से ही स्थित रहते हैं। दूसरी ओर फरमी नामक वैज्ञानिक ने बीटा कणों के क्षय का कारण बताने के लिए अपना सिद्धांत प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार बीटा कण नाभिक में पहले से नहीं रहते बल्कि उनकी उत्पत्ति उत्सर्जन की क्रिया के समय ही होती है। जब नाभिक के अन्दर न्यूट्रॉन प्रोटॉन में अथवा प्रोटॉन न्यूट्रॉन में परिवर्तित होता है, तब क्रमश: ऋणात्मक बीटा कण (इलेक्ट्रॉन) तथा धनात्मक बीटा कण (पोजीट्रॉन) उत्पन्न होते हैं।

सन् 1827 में पौली (Pauli) नामक वैज्ञानिक ने बीटा कणों के उत्सर्जन के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की। उसने कहा कि बीटा कणों के साथ-साथ अन्य कणों का भी उत्सर्जन होता है, जिन्हें 'न्यूट्रीनो' के नाम से जाना जाता है। जब प्रोटॉन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न्यूट्रॉन में परिवर्तित होता है, तब धनात्मक बीटा कणों के साथ न्यूट्रीनो उत्पन्न होता है और जब न्यूट्रॉन प्रोटॉन में परिवर्तित होता है, तब प्रति-न्यूट्रीनो उत्पन्न होता है।

न्यूट्रीनो इतने सूक्ष्म परिमाण के होते हैं कि वे दूसरे कणों से प्रभावित नहीं होते हैं। वे विद्युत् आवेश-रहित तथा संहति-रहित (Massless) होते हैं, लेकिन उनमें एक निश्चित ऊर्जा होती है।

5.7.3 क्वाण्टम सिद्धान्त (Quantum Theory)

भारी नाभिकों से निकलने वाली गामा किरणें अधिक ऊर्जा-सम्पन्न विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें होती हैं। पाया गया है कि सभी विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा का वितरण नियमित नहीं होता है, बल्कि अनियमित होता है। इसकी व्याख्या मैक्स प्लैंक नामक वैज्ञानिक ने क्वाण्टम सिद्धांत की सहायता से की। इसके अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा का स्थानांतरण क्वाण्टम के पक्ष में होता है। क्वाण्टम ऊर्जा की छोटी-से-छोटी इकाई है। फोटॉन विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा के क्वाण्टम का संवाहक (वाहन के समान) है। फोटॉन का एक निश्चित् संवेग होता है, लेकिन उसमें न तो संहति होती है और न ही विद्युत्-आवेश। फोटॉन की ऊर्जा $E=hv$ से प्रदर्शित की जाती है जहां h प्लैंक का नियतांक है। V विद्युत-चुम्बकीय तरंगों की आवृत्ति (फ्रिक्वेंसी) है।

फोटॉन की तरह ही 'फोनोन' यांत्रिकीय तरंगों की ऊर्जा का वाहक है। इस प्रकार ऊर्जा पदार्थ का ही दूसरा रूप है। वैसे भी आन्स्टीन के ऊर्जा द्रव्यमान सम्बन्ध के सिद्धांत से ऊर्जा तथा द्रव्यमान एक ही वस्तु/पदार्थ के दो पहलू हैं।

5.7.4 प्रारंभिक कण (Elementary Particles)

अब हम एटम से संबंधित सभी प्रारंभिक (मौलिक) कणों की सूची बना सकते हैं। इन कणों को हम इस प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं—

1. इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन।
2. न्यूट्रीनो, बीटा कण तथा पोजीट्रॉन।
3. फोटोन, फोनॉन।
4. प्रतिकण (एन्टी-पार्टिकल्स)।

इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य कण भी एटम से संबंधित हैं, जैसे—मैसॉन, ग्लुओन, बैरिऑन तथा अन्य स्ट्रेंज कण। एटम से संबंधित इस प्रकार के कणों की संख्या सौ से भी अधिक है।

प्रारंभिक कण पदार्थ तथा विकिरणों के सरलतम कण हैं। इनमें-से बहुत से कणों का जीवन-काल बहुत ही अल्प है तथा समान्यतया ये अस्तित्वहीन हैं। पहले उन सभी कणों को प्रारंभिक कण कहा जाता था, जिनका पुन: विभाजन न हो सके, लेकिन आजकल इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, मैसॉन, म्यूओन, बैरीऑन, स्ट्रेंज कण तथा प्रतिकणों के लिए तथा फोटॉन के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, लेकिन अल्फा कणों तथा ड्यूट्रोन के लिए इसका प्रयोग नहीं करते हैं।

5.7.5 क्वार्क : पदार्थ का मूलभूत कण

समझा जाता था कि विभिन्न प्रारंभिक कणों की खोज से वैज्ञानिक की पदार्थ के मूलभूत (अंतिम) कणों की खोज-जिज्ञासा समाप्त हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। आज भी बहुत से वैज्ञानिक मूलभूत कणों की खोज में लगे हुए हैं। पाया गया है कि न्यूट्रॉन एक स्थित कण नहीं है तथा इसका अर्द्ध जीवनकाल लगभग 12.8 मिनिट ही है। न्यूट्रॉन एक प्रोटॉन, एक इलेक्ट्रॉन तथा एक न्यूट्रीनो में टूट जाता है। प्रोटॉन भी एक अस्थिर कण है तथा इसका अर्द्ध जीवन-काल लगभग 10^{-25} वर्ष है, अन्तत: न्यूट्रॉन तथा प्रोटॉन को हम एटम के मूलभूत कण नहीं मान सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि 'क्वार्क' पदार्थ का मूलभूत (अंतिम) कण है तथा इसका और विभाजन नहीं किया जा सकता। सैद्धांतिक रूप से यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्रोटॉन तीन क्वार्कों से मिलकर बना हुआ है। वैज्ञानिक अभी प्रायोगिक तौर पर इसके अस्तित्व को सिद्ध करने में लगे हुए हैं।

5.7.6 मूलभूत कण का वेग

बहुत से वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रकाश का वेग $3X10^{10}$ से.मी./सेकंड होता है। माइकल्सन तथा मोर्ले ने सिद्ध किया कि प्रकाश का वेग किसी भी स्थिति में इससे अधिक नहीं हो सकता है। प्रकाश का वेग नियत है। अब प्रश्न यह है कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्या किसी वस्तु का वेग प्रकाश के वेग से अधिक हो सकता है? आइंस्टीन ने इस प्रश्न का उत्तर 'सापेक्षतावाद के सिद्धांत' को प्रतिपादित करके दिया। उन्होंने कहा कि किसी भी वस्तु का वेग प्रकाश से आिक नहीं हो सकता। बहुतसमय तक यही माना जाता रहा; लेकिन रूस के वैज्ञानिक कैरेनोव ने साबित किया कि कुछ विशिष्ट माध्यम में स्वयं प्रकाश का वेग भी $3X10^{10}$ से.मी./सेकंड से अधिक हो सकता है, लेकिन निर्वात में प्रकाश का वेग इतना ही होगा।

5.7.7 आकर्षण के बल

आकर्षण के बल तीन प्रकार के होते हैं—कूलम्ब बल, विद्युतचुम्बकीय बल तथा नाभिकीय (न्यूक्लीय) बल। सभी प्रारंभिक कणों को एक साथ एक ही नाभिक में रखने के लिए जिम्मेदार नाभिकीय बल है। नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन को एक साथ एटम में रखने के लिए जिम्मेदार विद्युत-चुम्बकीय बल है। कूलम्ब बल एटम के लिए कार्य नहीं करते।

5.8 जैनदर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

5.8.1 मूलभूत कण और परमाणु

मूलभूत (अंतिम) कण की परिकल्पना परमाणु की परिकल्पना से मिलती-जुलती है कि यह एक अविभाज्य इकाई है। 1. अब तक लगभग सौ से ऊपर प्रारंभिक कणों को खोजा जा चुका है। इनमें से कुछ कण मूलभूत (अंतिम या अल्टीमेट) कण नहीं हैं, जैसे—न्यूट्रॉन तथा प्रोटॉन, क्योंकि ये अन्य छोटे कणों में पुन: विभक्त हो जाते हैं। जैनदर्शन के अनुसार, परमाणुओं के दो सौ भेद होते हैं तथा इन सब परमाणुओं के अलग-अलग विशिष्ट गुण होते हैं। यहां यह स्पष्ट है कि अभी इन परमाणुओं को पाने के लिए और अधिक खोज की आवश्यकता है। 2. 'परमाणु' पदार्थ (पुद्गल) का एक द्रव्यमान- रहित (संहति-रहित) कण है। यहां एक सामान्य प्रश्न यह उठ सकता है कि जब परमाणु में द्रव्यमान हो नहीं होता तब वह पदार्थ कैसे हो सकता है? कोई भी भौतिक पिण्ड विभिन्न परमाणुओं से मिल कर बना होता है, लेकिन जब परमाणु का कोई द्रव्यमान नहीं होता तब उस भौतिक पिण्ड में द्रव्यमान कहां से आ जाता है? इस कथन की व्याख्या वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर की जा सकती है।

'न्यूट्रीनो' एक मूलभूत कण है तथा यह बीटा कणों के क्षय के समय उत्पन्न होता है। यह द्रव्यमान-रहित होता है तथा अन्य कणों के साथ इसका पारस्परिक संबंध नहीं होता, लेकिन इसकी एक निश्चित ऊर्जा ही होती है। इसी प्रकार बहुत से अन्य कणों के साथ भी होता है।

हम परमाणु के बारे में भी कह सकते हैं कि वह द्रव्यमान-रहित है, क्योंकि परमाणु हमेशा गतिशील रहता है, अत: उसकी कुछ निश्चित ऊर्जा अवश्य होती है। वैसे भी आइन्स्टीन के अनुसार ऊर्जा तथा द्रव्यमान पदार्थ के ही गुण हैं। ऊर्जा को द्रव्यमान में तथा द्रव्मान को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है, अत: परमाणु के बारे में यह कहना कि वह द्रव्यमान-रहित है, सही है। 3. जैसाकि हमने पहले कहा, परमाणुओं के दो सौ भेद होते हैं, लेकिन परमाणु के गुण स्पर्श, रस, गंध तथा वर्ण की तीव्रता के आधार पर परमाणुओं के अनन्त भेद हो सकते हैं। न्यूट्रीनो की धारणा भी कुछ ऐसी ही है। विभिन्न न्यूट्रीनो की अलग-अलग ऊर्जाएं होती हैं, इनकी यह ऊर्जा इस बात पर निर्भर करती है कि उस समय हुए विकिरण में बीटा कणों की ऊर्जा कितनी है? इसी प्रकार अन्य कणों के साथ भी होता है। 4. विभिन्न नाभिकीय कणों को एक ही नाभिक में रखने के लिए नाभिकीय बल जिम्मेदार है तथा नाभिक और इलेक्ट्रॉनों को एक ही एटम में रखे रखने के लिए जिम्मेदार विद्युत-चुम्बकीय बल है। जबकि परमाणुओं के स्निग्ध तथा रूक्ष गुण इन्हें एक ही पिण्ड (स्कन्ध) में बनाये रखने के लिए जिम्मेदार हैं। ये दोनों दृष्टिकोण समान प्रतीत होते हैं। 5. किसी भी पिण्ड का वेग चाहे वह बड़ा हो या छोटा, प्रकाश के वेग से अधिक नहीं हो सकता अर्थात् $3X10^{10}$ से.मी./सेकंड से अधिक नहीं हो सकता। विज्ञान का यह एक आधारभूत सिद्धांत है। परमाणु का वेग प्रकाश के वेग से अधिकतम तक हो सकता है। यहां हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अभी वैज्ञानिकों के पास ऐसे उपकरण का अभाव है जो इतने अधिक वेग को नाप सकें। इतना अवश्य है कि प्रकाश का वेग $3X10^{10}$ से.मी./सेकंड से अधिक हो सकता है, जैसाकि वैज्ञानिक कैरेनोव ने सिद्ध किया है। 6. प्रकाश बहुत सारे फोटॉनों से मिलकर बना होता है। अब प्रश्न यह है कि क्या फोटॉन को मूलभूत (अंतिम) कण माना जा सकता है? जैनदर्शन के अनुसार प्रकाश बहुत सारे परमाणुओं का समुदाय है। प्रकाश स्कन्ध के अंतर्गत आता है, अत: प्रकाशकणों (फॉटोनों) को परमाणु नहीं माना जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.8.2 द्रव्याक्षरत्ववाद

पुद्‌गल उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है। अपनी जाति का त्याग किये बिना नवीन पर्याय की प्राप्ति उत्पाद है,पूर्व-पर्याय का त्याग व्यय है, द्रव्य के मूल तत्त्वों का ज्यों-का-त्यों रहना ध्रौव्य है। बर्फ गल कर पानी बनता है। इस प्रक्रिया में बर्फ-रूपी पर्याय का व्यय होता है, जल-रूपी पर्याय का उत्पाद होता है, किंतु दोनों अवस्थाओं में पुद्‌गल द्रव्य अवशिष्ट बना रहता है। इस क्रिया में दो हाइड्रोजन अणुओं (हाइड्रोजन एटम) और एक ऑक्सीजन अणु से बने पानी के अणुगुच्छ (मॉलीक्यूल) नहीं बदलते। पानी के भाप बनने की क्रिया में भी उसके अणुगुच्छ यथापूर्व रहते हैं।

उक्त परिभाषा से दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जो आधुनिक विज्ञान-सम्मत हैं :एक पुद्‌गल (एवं अन्य द्रव्यों) की नित्यता (ध्रौव्य) का सिद्धान्त विज्ञान का पदार्थ की अनावश्यकता का नियम (लॉ ऑफ इनडिस्ट्रक्टिबिलिटी ऑफ मैटर) है। इस नियम को प्रसिद्ध वैज्ञानिक लैव्हाइजियर ने 18वीं शती में इन शब्दों में प्रस्तुत किया था :'कुछ भी निर्मेय नहीं है और प्रत्येक क्रिया के अन्त में पदार्थ की उतनी ही मात्रा रहती है, जितनी उस क्रिया के आरंभ में रहती है। पदार्थों का केवल रूपान्तर (मॉडीफिकेशन) हो जाता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ (मैटर) और ऊर्जा (एनर्जी) एक ही द्रव्य के दो रूप हैं, फलत: आजकल पदार्थ की अनावश्यकता के नियम के बदले पदार्थ और ऊर्जा के स्थिरण (कन्जर्वेशन ऑफ मैटर एण्ड एनर्जी) का नियम लागू होता है।

दूसरा निष्कर्ष यह है कि पुद्‌गल (पदार्थ एवं ऊर्जा) तथा अन्य द्रव्यों को न तो शून्य में विलुप्त किया जा सकता है और न शून्य से बनाया जा सकता है। आधुनिक विज्ञान की भी विश्व (यूनिवर्स) के संबंध में यह धारणा है।

5.8.3 पदार्थ एवं ऊर्जा (मैटर एण्ड एनर्जी)

आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत के पूर्व विज्ञान पदार्थ (मैटर) और (एनर्जी) को दो विभिन्न द्रव्य मानता था। साथ ही यह धारणा थी कि न तो पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है और न ऊर्जा को पदार्थ में। सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त (स्पेशल थिअरी ऑफ रिलेटिविटी) के $E=mc^2$ / ऊर्जा=ऊर्जा (पदार्थ की मात्रा) X (प्रकाश की गति) सूत्र के अनुसार पदार्थ को ऊर्जा एवं ऊर्जा को पदार्थ में रूपान्तरित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में पदार्थ और ऊर्जा एक ही द्रव्य के दो रूप हैं। एक किलोग्राम पदार्थ को पूर्णत: रूपान्तरित करके $9X10^{16}$ जूल (एक माप इकाई) ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इतनी ऊर्जा से एक छोटे शहर का बिजलीघर कई महीनों तक चलाया जा सकता है। इस प्रकार के पदार्थ और ऊर्जा के परस्पर रूपान्तरण प्रकृति में और प्रायोगशाला में, अणु-भट्टियों में और अणु-शस्त्रों में होते रहते हैं।

विशिष्ट महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सापेक्षतावाद के सिद्धांत प्रवर्तन के सदियों पूर्व से ही जैनदर्शन पदार्थ और ऊर्जा को पुद्‌गल की पर्यायें मानता है।

सारे पदार्थ मॉलीक्यूलों से बनते हैं, प्रत्येक मॉलीक्यूल परमाणुओं (एटम्स) के संयोग से बनता है, प्रत्येक परमाणु में एक केन्द्रकण (न्यूक्लिअस) और कई इलेक्ट्रॉन होते हैं। प्रत्येक केन्द्रकण में प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन होते हैं। धनात्मक (पॉजीटिव्ह) और ऋणात्मक (निगेटिव्ह) विद्युतें एक दूसरे को आकर्षित करती है। केन्द्रकण (न्यूक्लियस) में धनात्मक विद्युत आवेश और इलेक्ट्रॉन में ऋणात्मक विद्युत् आवेश होता है, इसलिए परमाणु (एटम) में केन्द्रकण से इलेक्ट्रॉन बंधे रहते हैं। उदाहरण के लिए हाइड्रोजन अणु का केन्द्रकण केवल एक होता है और इलेक्ट्रॉन उसके चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। कार्बन परमाणु के केन्द्र-कण में 3 प्रोटॉन एवं 3 न्यूट्रॉन होते हैं और छह इलेक्ट्रॉन उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। परमाणुओं के सम्मिलन से मॉलीक्यूल, क्रिस्टल इत्यादि के बनने में भी धनात्मक एवं ऋणात्मक विद्युत् आवेश उत्तरदायी हैं।

जैनदर्शन में स्निग्ध गुणवाले कणों के बंधने से स्कन्ध बनने का भी वर्णन है। केन्द्रकण (न्यूक्लियस) में जो प्रोटॉन बंधे रहते हैं वे धनात्मक विद्युत आवेश युक्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि दो धनात्मक विद्युत् आवेश युक्त कणों (पार्टिकल्स) के बीच भी आकर्षण एवं बन्धन संभव है।

जैनदर्शन का परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं है। इन्द्रियग्राह्य (पर्सेप्टिबिल) का तात्पर्य यदि यह समझा जाए कि परमाणु किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला के यंत्रों से ग्राह्य (डिजेक्टेबल) नहीं है तो निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक विज्ञान ने जो मौलिक कण (एलीमेंट्री पार्टिकल्स) खोज निकाले हैं, जैनदर्शन के अनुसार वे सब कई परमाणुओं के संयोग से बने स्कन्ध हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैनदर्शन के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब पदार्थ परमाणुओं से निर्मित हैं। साथ ही, विभिन्न प्रकार की ऊर्जा, आतप (हीट), प्रकाश (लाइट), विद्युत (इलेक्ट्रीसिटी) आदि पुद्गल की पर्याय हैं, इसलिए ऊर्जा में भी परमाणु होने चाहिए जैसे कि जल, स्वर्ण, वायु आदि के स्कंधों में हैं। आधुनिक प्रयोगशालाओं में ऊर्जा (एनर्जी) को पदार्थ (मैटर) के रूप में और पदार्थ को ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रियाएं होती रहती हैं। इससे तात्पर्य है कि ऊर्जा और पदार्थ दोनों में एक ही मौलिक तत्त्व है तथापि आधुनिक विज्ञान पदार्थ को कणात्मक (पार्टिकल आस्पेक्ट) और ऊर्जा को तरंगात्मक (वेव्ह आस्पेक्ट) मानता है, साथ ही ऊर्जा की तरंगें किसी स्थिति (वातावरण) में कणात्मक रूप दर्शाती हैं और पदार्थ के कण समुचित स्थिति में तरंगात्मक रूप दर्शाते हैं।

जहां तक मौलिक कणों (एलीमेंट्री पार्टिकल्स) का प्रश्न है, आज का वैज्ञानिक प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेकट्रॉन, कई प्रकार के मैसॉन, न्यूट्रिनो, क्वार्क इत्यादि कणों के अनुसंधान में रत हैं। यदि जैनदर्शन का परमाणु इन्द्रियग्राह्य के साथ-साथ यंत्र-ग्राह्य भी नहीं है तो इन सब मौलिक कणों में से कोई भी कण जैनदर्शन का परमाणु नहीं हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामान्यत: जैनदर्शन की पुद्गल की धारणा आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं से मूल रूप से मेल खाती है। सूक्ष्म रूप से दोनों की तुलना कठिन है। लगभग पिछले सौ वर्षों में विज्ञान ने जो प्रगति की है उसमें नि:संदेह पदार्थ और ऊर्जा के विषय में अनगिनत सूक्ष्मतर विवरणों और मौलिक धारणाओं का प्रादुर्भाव हुआ है, जो प्रयोग-सिद्ध है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया आज भी अनवरत चालू है, रुकी नहीं है। लगता है, भविष्य में गहन अध्ययन और अनुसंधान के परिणामस्वरूप आधुनिक विज्ञान और जैनदर्शन की पुद्गल-संबंधी धारणाओं में कुछ और तालमेल स्थापित करना संभव होगा।

5.8.4 परमाणु के मूल गुणधर्म

परमाणु के गुणों में जैन दार्शनिकों ने गुरुत्व (भारीपन) और लघुत्व (हलकेपन) को भी मौलिक स्वभाव नहीं माना है, ये भी विभिन्न परमाणुओं के संयोगज परिणाम हैं। अन्वेषण की दृष्टि से यह संकल्पना भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आधुनिक विज्ञान भी यह मानने लगा है कि स्थूलत्व से सूक्ष्मत्व की ओर जाते हुए तथाकथित परमाणु के छोटे-छोटे कण भार आदि गुणों से रहित हो जाते हैं; जैसे—फोटॉन, न्युट्रिनो आदि।

जैनदर्शनकारों ने स्निग्धत्व और रूक्षत्व को परमाणुओं के परस्पर बंधन का कारण माना।

वैज्ञानिकों ने भी परमाणुओं के परस्पर बंधन का कारण धनविद्युत् (पॉजीटिव चार्ज)—स्निग्धत्व और ऋणविद्युत् (निगेटिव चार्ज)—रूक्षत्व को माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ने शब्दभेद से एक ही बात कह दी है। इससे स्पष्ट है कि स्निग्धत्व और रूक्षत्व इन दो गुणों से धन और ऋण विद्युत् पैदा होती है। डॉ. बी.एल. शील ने भी अपनी पुस्तक 'पॉजीटिव साइंस ऑफ एन्सिएण्ट हिन्दूज' में इस बात का समर्थन किया है।

जैनदर्शन के अनुसार रूक्ष परमाणु रूक्ष के साथ और स्निग्ध परमाणु स्निग्ध के साथ दो से लेकर अनन्त गुणांशों की तरतमता से बंधन को प्राप्त होते हैं। भारी ऋणाणु या 'नेगेट्रॉन' इस बात की पुष्टि करता है, क्योंकि यह केवल ऋणाणुओं का ही समुदाय है। इसी प्रकार डॉ. गेलमान के 'क्वार्क-सिद्धांत' के अनुसार एक प्रोटॉन तीन क्वार्क से मिलकर बना है, जिसमें से एक का आवेश धन 1/3 तथा दो क्वार्क प्रत्येक धन 2/3 आवेश के होंगे और इस प्रकार प्रोटॉन का कुल आवेश धन एक के बराबर होगा।

न्यूट्रॉन भी तीन क्वार्कों से मिलकर बना है, दो ऋण 1/3 आवेश वाले और एक धन 2/3 आवेश वाला, जिसमें कुल आवेश शून्य होगा। 'मैसॉन' दो क्वार्कों से मिलकर बना है। डॉ. गेलमान के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि ये कण स्वतंत्र रूप में ही पाये जाएं। ये केवल बल (फोर्स), ऊर्जा (एनर्जी) अथवा धारा (करेंट) के रूप में भी हो सकते हैं, जो नाभिकीय कणों के भीतर तेजी से घूमते रहते हैं या जिनका अस्तित्व स्थिर कणों के रूप में केवल नाभिक के भीतर ही संभव है और इसलिए इन्हें बाहर से शायद कभी नही देखा जा सकता। उनकी यह बात जैनदर्शन के परमाणु-सिद्धांत से कुछ मेल खाती प्रतीत होती है। 'नेगेट्रॉन्स' या 'भारी ऋणाणु' रूक्ष के साथ रूक्ष का संबंध चरितार्थ करते हैं। 'प्रोटॉन' का 'क्वार्क' स्निग्ध का स्निग्ध के साथ बंधन है। जैनदर्शनकार भी यही कहते हैं कि रूक्ष परमाणु रूक्ष के साथ और स्निग्ध परमाणु स्निग्ध के साथ दो से लेकर यावत् अनन्त गुणांशों की तरतमता से बन्धन को प्राप्त होते हैं। स्निग्ध और रूक्ष परमाणु तो बिना किसी शर्त के बन्ध जाते हैं, पर एक गुण रूक्ष और एक गुण स्निग्ध परमाणु कभी बन्धन को प्राप्त नहीं होते।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.8.5 सूक्ष्म परिणमन

आधुनिक भौतिकी की 'क्वाण्टम गतिकी', जिसे वैज्ञानिक मैक्सप्लांक, नील्स बोहर, लुइस दे ब्रोगली, श्रोडिंगर, हाइजनबर्ग, बोर्न तथा पौली ने विकसित किया, उनके अनुसार एक गतिशील कण किन्हीं परिस्थितियों में एक कण की भांति व्यवहार करता है तथा किन्हीं परिस्थितियों में एक तरंग की भांति। किसी गतिशील कण की सही स्थिति तथा सही वेग का हमएक साथ पता नहीं कर सकते, इनमें से यदि एक का मान ठीक से ज्ञात कर भी लिया जाए तो दूसरे के मान में कुछ अनिश्चितता रहती है। किसी गतिशील कण की सही स्थिति तथा वेग को हम एक साथनहीं जान सकते, उसकी प्रायिकता (प्राबेबिलिटि) ही ज्ञात की जा सकती है। जैनदर्शन के अनुसार परमाणु की स्वाभाविक गति सरल रेखा में है और वैभाविक गति वक्र रेखा में। परमाणु कम से कम एक समय में एक आकाश-प्रदेश का अवगाहन कर सकता है और अधिक से अधिक उसी समय में चतुर्दश रज्ज्वात्मक समूचे विश्व का। स्पष्ट है कि अणु-परमाणु कण के गति संबंधी विचारों में दर्शन और विज्ञान में समानता भी है और असमानता भी, क्योंकि आधुनिक विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रॉन की गति गोलाकार है।

जैनदर्शन बताता है कि थोड़े से परमाणु विस्तृत आकश-खंड को घेर लेते हैं जिसे परमाणुओं का व्यायत्तीकरण कहते हैं और कभी-कभी वे परमाणु घनीभूत होकर बहुत छोटे-से आकाश देश में समा जाते हैं, जिसे परमाणुओं का समासीकरण कहते हैं। आधुनिक विज्ञान इस बात की पुष्टि करता है। हाल ही में खोजे गये सब से छोटे तारे के एक क्यूबिक इंच में 16749 मन भार आंका गया है।

यह सूक्ष्म परिणमन क्रिया विज्ञान से मेल खाती है। अणु के दो अंग होते हैं — एक मध्यवर्ती नाभिक (न्यूक्लीयस) जिसमें धनाणु (प्रोटॉन्स) और न्यूट्रॉन्स होते हैं और दूसरा बाह्य कक्षीय कवच (ऑर्बिटल शेल) जिसमें ऋणाणु चक्कर लगाते हैं। नाभिक का धनफल पूरे अणु के घनफल से बहुत ही कम होता है और जब कुछ कक्षीय कवच अणु से विच्छिन्न हो जाते हैं तो अणु का घनफल कम हो जाता है। ये अणु विच्छिन्न अणु कहलाते हैं। ज्योतिष संबंधी अनुसंधानों से पता चलता है कि कुछ तारे ऐसे हैं जिनका घनत्व हमारी दुनिया की घनतम वस्तुओं से भी 200 गुणित है। एडिंग्टन ने एक स्थान पर लिखा है कि एक टन (28 मन) नाभिकीय (न्यूक्लीअर) पुद्गल हमारे वेस्ट कोट की जेब में समा सकता है। कुछ ही समय पूर्व एक ऐसे तारे का अनुसंधान हुआ है जिसका घनत्व 620 टन (17360 मन) प्रति घन इंच है। इतने अधिक घनत्व का कारण यही है कि वह तारा विच्छिन्न अणुओं से निर्मित है। उसके अणुओं में केवल नाभिक कण ही है, कक्षीय कवच नहीं। जैन सिद्धांत की भाषा में इसका कारण अणुओं का सूक्ष्म परिणमन है।

5.8.6 परमाणु ऊर्जा और तेजोलेश्या

परमाणु शक्ति (न्यूक्लीयर एनर्जी) और तेजोलेश्या में यत्-किंचित् साम्य है। भगवती सूत्र शतक 15 में तेजोलेश्या की प्रक्रिया प्रतिपादित है। ''जो व्यक्ति छह महीने तक बेले का तप करे, ऊर्ध्वबाहु रह कर हमेशा सूर्य की आतापना ले और पारणे में एक मुट्ठि उड़द और चुल्लू भर गरम पानी ग्रहण करें, वह तेजोलेश्या को प्राप्त करता है।''

तेजोलेश्या परमाणु शक्ति की भांति ध्वंसकारी बन सकती है। तेजोलेश्या पौद्गलिक है और वह विस्तृत भाव को प्राप्त हो कर अंग, बंग, मगध, मलय, मालव — जैसे 16 देशों को एक साथ भस्म कर देती है।

क्रुद्ध अनगार में से तेजोलेश्या निकल कर दूर गयी हुई दूर गिरती है, पास गयी हुई पास गिरती है। वह जहां गिरती है, वहां उसके अचित्त पुद्गल प्रकाश करते यावत् तपते हैं।

आधुनिक परमाणु ऊर्जा तो केवल उष्मा के रूप में ही प्रकट होती है, पर तेजोलेश्या में उष्णता और शीतलता दोनों गुण विद्यमान हैं। भगवती सूत्र शतक 15 में तेजोलेश्या के दो भेद बताये गये हैं — 1. उष्ण तेजोलेश्या (न्यूक्लीयर एनर्जी), 2. शीतल तेजोलेश्या (एंटीन्यूक्लीयर एनर्जी)।

शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजोलेश्या के प्रभाव को तत्क्षण नष्ट कर सकती है। वैज्ञानिक अभी तक उष्ण तेजोलेश्या अणुबम और उद्जन बम का ही अविष्कार कर पाये हैं। किंतु अणु-आयुधों का प्रतिकार अस्त्र उन्हें अभी तक नहीं मिला है।

परमाणु-शक्ति दो तरह से उत्पन्न होती है — गलन (परमाणु-विखंडन या परमाणु-विगलन, फिसन) से, पूरण (परमाणु-संलयन, न्यूक्लीअर फ्यूजन) से।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यह परमाणु-विगलन तथा परमाणु-संलयन के सिद्धांत जैनदर्शन की 'पूरण-गलन धर्मत्वात् पुद्गल:' संकल्पना को परिपुष्ट करते हैं। पूरण अर्थात् मिलन या संयोग, गलन अर्थात् वियोग या पार्थक्य।

5.8.7 भावी संभावना

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक जिस परमाणु (एटम) में अनुसंधान में रत हैं, जैनदर्शन के अनुसार वह अनेक परमाणुओं से संघटित कोई स्कन्ध (मॉलीक्यूल) है, क्योंकि जैन शास्त्रों में परमाणु की सूक्ष्मता के विषय में कहा गया है—परमाणु इंन्द्रियों का एवं प्रयोग का विषय नहीं है अत: वह मनुष्यकृत नाना प्रक्रियाओं से प्रभावित नहीं होता है। जैनदर्शन की परिभाषा के अनुसार इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, फोटॉन, क्वार्क, न्यूट्रिनो आदि में से कोई भी कण परमाणु नहीं है। परमाणु के उदस्थ जितने भी कण हैं, जैनदर्शन मानता है कि वे सूक्ष्मतम, या परमाणु या मौलिक कण कहलाने के उपयुक्त नही हैं। जैनदर्शनकारों ने परमाणु के दो भेद किये हैं—निश्चय परमाणु और व्यवहार परमाणु। अविभाज्य और सूक्ष्मतम कण निश्चित परमाणु है और सूक्ष्मतम स्कंध जो इन्द्रिय-व्यवहार में सूक्ष्मतम से लगते हैं, व्यवहार परमाणु हैं। विज्ञान का परमाणु वास्तव में व्यवहार परमाणु ही है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जी.ओ. जॉन्स, जे. रोटब्लेट तथा जी.जे. विटरो ने 'परमाणु और विश्व' (एटम एण्ड यूनीवर्स) नामक पुस्तक में, जो 1956 ई. में लंदन से प्रकाशित है, स्पष्ट किया है कि ''...... प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन—ये तीन मूलभूत कण माने गये और अब वह संख्या बीस तक पहुंच गयी है ...... मौलिक अणुओं की यह अप्रत्याशित बढ़ बहुत असंतोष का विषय है .... क्या वास्तव में पदार्थ के इतने टुकड़ों की आवश्यकता है या मूलभूत अणुओं की यह बढ़त पदार्थ-मूल संबंधी हमारे अज्ञान की सूचक है? सही तो यह है कि मौलिक कण अर्थात् परम+अणु या परमाणु क्या है? यह पहेली अब तक सुलझ नहीं पायी है।'' आशा है भविष्य में विज्ञान और दर्शन के समन्वय से प्राथमिक कण की पहेली को सुलझा कर सत्य के सन्निकट पहुंचा जा सकेगा।

5.9 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. ईश्वरवाद से आप क्या समझते हैं? जैनदर्शन ईश्वरवाद के खण्डन में क्या तर्क प्रस्तुत करता है?
2. जैनदर्शन में कर्मवाद की अवधारणा का क्या वैशिष्ट्य है तथा पुरुषार्थ का क्या मूल्य है?
3. अनेकान्तवाद का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए उसमें समन्वय की मौलिक दृष्टियां स्पष्ट कीजिए।
4. परमाणु की परिभाषा देते हुए परमाणु की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. आधुनिक विज्ञान में परमाणु-सिद्धान्त के विकासवृत्त पर प्रकाश डालिए।
6. जैनदर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. सृष्टि का नियमन नियम द्वारा कैसे होता है?
2. ईश्वरवाद का धार्मिक व नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कीजिए।
3. कर्मवाद के तीन सिद्धान्त कौन-से हैं?
4. कर्मवाद की व्यवस्था नियामक कैसे सिद्ध होती है?
5. अनेकान्तवाद और सम्यक्दर्शन पर प्रकाश डालिए।
6. अनेकान्तवाद के निष्कर्ष पर प्रकाश डालिए।
7. जैनदर्शन में परमाणु के गुणधर्मों को कैसे बताया गया है?
8. परमाणु की गति के नियमों पर प्रकाश डालिए।
9. परमाणु की प्रतिघाती और अप्रतिघाती गति को बताइए।
10. पदार्थ एवं ऊर्जा (मैटर एण्ड एनर्जी) का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
11. परमाणु और तेजोलेश्या पर प्रकाश डालिए।

संदर्भ पुस्तक:

1. जैनदर्शन और विज्ञान—मुनि महेन्द्रकुमार जेठालाल एस झवेरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) तृतीय वर्ष

विषय - जैन विद्या

द्वितीय पत्र - जैन दर्शन और विज्ञान

संवर्ग

संवर्ग–1	:	अध्यात्म और विज्ञान
संवर्ग–2	:	जैन दर्शन और परामनोविज्ञान
संवर्ग–3	:	विज्ञान के संदर्भ में जैन जीवन शैली
संवर्ग–4	:	तम्बाकू वर्जन, मद्यपान वर्जन
संवर्ग–5	:	ईश्वरवाद, कर्मवाद, अनेकान्तवाद; जैन दर्शन और विज्ञान में परमाणु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. प्रो. दयानन्द भार्गव
पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)

2. प्रो. अरूण मुखर्जी
पूर्व विभागध्यक्ष, दर्शन
जादवपुर विश्वविद्यालय
कोलकाता

3. प्रो. कुसुम जैन
विभागाध्यक्ष, दर्शन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

4. डॉ. विमला भण्डारी
पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)

5. प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ (राजस्थान)

6. प्रो. समणी चैतन्यप्रज्ञा
आचार्या एवं विभागाध्यक्ष
जैन विद्या विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ (राजस्थान)

7. प्रो. ऋजुप्रज्ञा
आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ (राजस्थान)

8. डॉ. शुभ प्रज्ञा
सहायक आचार्य
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ (राजस्थान)

लेखक
प्रो. मुनि महेन्द्र कुमार

संपादक
डॉ. प्रद्युम्न शाह

कापीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राजस्थान)

संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 1400

प्रकाशक
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ – 341 306 (राजस्थान)

Printed at
M/s Nalanda Offset,
G1/232, RIICO Industrial Area, Heerawala Ext., Konota, Jaipur (Raj.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ का नाम	पृष्ठ सं.
इकाई–1	अध्यात्म और विज्ञान	01–15
इकाई–2	जैन दर्शन और परामनोविज्ञान	16–39
इकाई–3	विज्ञान के संदर्भ में जैन जीवन शैली	40–52
इकाई–4	(क) तम्बाकू वर्जन	53–59
	(ख) मद्यपान वर्जन	60–66
इकाई–5	(क) ईश्वरवाद, कर्मवाद, अनेकान्तवाद	67–80
	(ख) जैन दर्शन और विज्ञान में परमाणु	81–92

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun